

NORTHERN REGION

■ **BAREILLY:** • Lal Bahadur Shastri Institute of Management & Technology • Rakshapal Bahadur Management Institute ■ **DEHRADUN:** • Academy of Management Studies • Institute of Management Studies ■ **DELHI:** • Jagan Institute of Management Studies • Rukmini Devi Institute of Advanced Studies ■ **GHAZIABAD:** • Institute of Management Studies • Institute of Productivity & Management • Institute of Professional Excellence & Management • Institute of Technology & Science • Integrated Academy of Management & Technology • Jaipuria Institute of Management • NIMT • Shiva Institute of Management Studies ■ **GREATER NOIDA:** • Centre for Management Technology • Graduate School of Business & Administration • Mangalmay University • Vishveshwarya Institute of Engineering & Technology ■ **HALDWANI:** • Amrapali Institute ■ **KANPUR:** • Dr Gaur Hari Singhania Institute of Management & Research • Institute of Productivity & Management ■ **LUCKNOW:** • Institute of Productivity & Management • Lal Bahadur Shastri Institute of Management & Development Studies ■ **MANDI GOBINDGARH:** • Regional Institute of Management & Computer Technology ■ **MEERUT:** • IIMT College • Institute of Informatics & Management Sciences • Institute of Productivity & Management • Master School of Management ■ **MODINAGAR:** • Centre for Management Development ■ **MULTI-LOCATION:** • AIMA-Centre for Management Education ■ **NEW DELHI:** • AIM University • Apeejay Institute of Management & Information Technology • Apeejay School of Marketing • Asia Pacific Institute of Management • Bharatiya Vidya Bhavan • Birla Institute of Management Technology • DPC Institute of Management • EMPI Business School • Fortune Institute of International Business • Guru Nanak Institute of Management • Indian Institute of Finance • Institute of Marketing & Management • International Management Centre • Ishan Institute of Management & Technology • Jagannath International Management School • Networked University • New Delhi Institute of Management • New Institute of Advertising • NIILM University • Rai University • Skyline Business School • Sri Sringeri Sharada Institute of Management • The Delhi School of Communication • The NIS Academy ■ **NOIDA:** • Amity Business School • Institute of Management Studies • Maharishi Institute of Management

EASTERN REGION

■ **AGARPARA:** • Narula Institute of Technology ■ **BALASORE:** • Academy of Business Administration

MAT Bulletin with Form ...
Last Date for Submission of filled-in MA...
MAT Score Cards will be despatched by last week of ...

... & Research, Jaykaylon Colony, ... (ITS), Mohan Nagar, Tel: ... College of ... ■ NOIDA: Sector 28, ... Indian Institute ... Road, Alleenguni ... Enclav... Institute of Finance & ...ment • INTECH Institute of Business ...
Kristu Jayanti College of Management & ...
...MATS School of Business • MP Birla Institute of ...nagement • MS Ramaiah Institute of ...
• Surana College • T John College ...
• Asan Memorial Institute of Management ...gineering College • Easwari Engineering ...raj College for Women • Jaya Engineering ... Sai Ram Institute of Management Studies ...ollege of Management & Computer Studies ... Rajagiri College of Social Sciences • School ...ation & Management Studies • SCMS School ...y & Management • Sree Narayana Guru ...ience & Technology ■ COIMBATORE: • CBM ... CMS Institute of Management Studies ...ore Institute of Management & Technology ...my for Managerial Excellence • GRD Institute ...ement • GRG School of Management ... Guruvayurappan Institute of ... School of Business ... • PSG College ...
Training • Institute of Management ...
• Rajdhani College of Engineering ...
• Royal School of Management ...
Academy of Management ...
Professional Studies & R...
College of Engi...
Institute of ...

Konica CENTURIA SUPER
with Multi Coated Crystal Technology

...र जीत सकते हैं, जिसके लिए आपको बस यह करना है:
...ा सेंचुरिया सुपर पैक
...ाली कोनिका सेंचुरिया सुपर पैक के साथ, पहले से खर्च अदा ...
...) विजेता विजेता लिफ़ाफ़े में डालकर

...NATION
...A.M.S
10+2 With PHYSICS, CHEMIS...
...es 25,000/- Per Se...
Hospital O.P.D. & I.P.D., Hostel Facility (Sepa...
COUN...

"भ्रष्ट समाज में, नागरि...
इज़्ज़त से जी सक...
ना ही इज़्ज़त से ...
मर सकता है ..."

...र हम समाधान का हिस्सा नहीं हैं, तो हम ...

...ICA MINO...



मानस सिद्धान्तसार संग्रह

अद्वैतामृतवर्षिणी भाषा टीका सहित

अनन्त श्री विभूषित परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ
योगीन्द्र भक्त वाञ्छाकल्प तरु आशुतोष श्रीमद्दण्डी स्वामी
सच्चिदानन्दाश्रम जी महाराज के एक निष्ठ शिष्य
श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य मानस राजहंस
श्रीमद्दण्डी स्वामी सदा शिवाश्रम जी महाराज
द्वारा संग्रहीत

दीक्षित प्रकाशन

प्राप्ति स्थान—
वैद्य ओमप्रकाश दीक्षित
एम० ए० हिन्दी, संस्कृत
साहित्याचार्य, आयुर्वेदाचार्य
हरनाथपुरा, सहारनपुर

संवत् २०३२ :: मूल्य ७)२५

॥ श्रीः ॥

शुभ-सम्मतियां

"मानस सिद्धान्त सार संग्रह" की
अद्वैतामृत वर्षिणी" टोका के सम्बन्ध में माननीय सम्मतियाँ



श्री १००८ श्री अनन्त श्री विभूषित श्रीमद्गराडी स्वामी सदाशिवाश्रम जी महाराज रचित मानस सिद्धान्त सार संग्रह को देखने का सुअवसर प्राप्त हुआ। इस संक्षिप्त रचना में पूज्यपाद स्वामी जी ने निगमागम सागर को गागर में भर दिया है अद्वैतवेदान्त के रहस्य के साथ २ कर्म, भक्ति और ज्ञान के समन्वय को ऐसी सरल भाषा में दर्शा दिया है कि इस के श्रवण मनन निदिध्यासन से अपने जीवन को सफल कर सकते हैं।

दुर्गादत्त उप्रेती शास्त्री
संस्थापक तथा प्रधानाचार्य
श्री गीता सत्सङ्ग भवन
७९ गौतम बुद्ध मार्ग
लखनऊ

✽ ॐ ✽

परमपूज्य श्री दण्डी स्वामी सदाशिव द्वारा लिखित मानस सिद्धान्त संग्रह देखने का सुअवसर प्राप्त हुआ, बड़ी विद्वतापूर्ण एवं सुन्दर ढङ्ग से भगवान की महिमा की विवेचना की गई है जो मानस की चौपाईयों के आधार पर लिखा गया यह संग्रह वास्तव में बड़ा सुन्दर है। बुद्धजीवी विवेकशील तथा ईश्वर भक्त इससे लाभ उठावेंगे, ऐसी मैं आशा करता हूँ।

अच्छा हो कि गीता प्रेस द्वारा इसका प्रकाशन हो जाये तो इस जनभक्त की पुस्तकें प्रकाश में आ जाने से लोगों को बड़ा लाभ होगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

(रा० कृ० गोस्वामी)
राज्य मंत्री, गृह, शिक्षा एवं विद्युत,
उत्तर प्रदेश।

श्री १०८ श्रीमद्दण्डी स्वामी सदाशिवाश्रम जी महाराज के मानस सिध्दांतसार संग्रह को मैंने देखा। श्री दण्डी जी ने एक नई शैली ग्रहण की है। वैसे तो यह नई नहीं है क्योंकि मूल रामायण इसी ढंग से लिखी है—प्रश्नोत्तर। शिव–पार्वती, काकभुशुन्ड–गरूड़, याज्ञवल्क्य–भारद्वाज की भी यही शैली है। बड़ी सरल भाषा में दण्डी महाराज ने कुछ शब्दों तथा वाक्यों की व्याख्या की है जिससे कि पढ़ने वालों को भारतीय शास्त्र, परम्परा तथा सामाजिक मर्यादाओं का अच्छा ज्ञान हो जावे। यदि यह पुस्तक छप जाये तो बहुत लोगों का कल्याण होगा।

(जे०डी०शुक्ल)
आई०सी०एस
राजस्व परिषद उत्तर प्रदेश
लखनऊ

श्री स्वामी सच्चिदानन्दाश्रम जी महाराज के अत्यन्त प्रिय शिष्य द. स्वामी श्री सदाशिवाश्रम जी महाराज द्वारा गोस्वामी तुलसीदास जी की अपूर्व कृति "रामचरित मानस" का बड़ी विद्वत्ता से मन्थन किया गया है।

श्रीमद्रामायण जैसे महान् ग्रन्थ का जितना अवलोकन किया जाये थोड़ा हैं। समुद्र से रत्न निकालने के पश्चात् भी वह रत्नाकर रहता ही है और उसकी रत्न राशी में कोई न्यूनता नहीं आती, ठीक इसी प्रकार मानस मर्मज्ञ श्रीमद्रामचरित मानस से अपनी प्रखर बुद्धि और तीव्रतर प्रयत्न से नानार्थ रूप रत्नावलि को निकाल कर रसिक जनों के सामने प्रस्तुत करते हैं। इस पर भी रामायण की गम्भीरता अनाथ और अतलस्पर्शी होती चली जा रही है।

सतपञ्च चौपाईयों को विभिन्न विभिन्न भांति से कई व्याख्याताओं ने उपस्थित किया है पर ये कोई भी सतपञ्च चौपाई हों, वास्तविक रूप से श्रीमद्रामायण के महासागर के अमूल्य रत्न हैं, जो उपादेय हैं और जीवन की महाग्रन्थी को सुलझा कर जीव को कल्याण की ओर प्रेरित करते हैं।

गोस्वामी जी का मुख्य ध्येय श्रीमद्रामचरित वर्णन के माध्यम से अद्वैत निष्ठा का प्रतिपादन करता है। वैसे प्रायः सभी सिद्धान्तों का वर्णन किया है, पर द्वैत के स्वतः सिद्ध होने के कारण द्वैत-सिद्धि के लिये परम पुरुषार्थ की उपादेयता नही होती इसीलिये उन्होंने अपने उपास्य देवराम को—

"एक अनीह अरूप अनामा, अज सच्चिदानन्द परधामा, कह कर "एकमेवा द्वितीयम्" का स्मरण कराया है। इस प्रकार अद्वितीय तत्व में निष्ठा करना, श्रवण, मनन और निदिध्यायन द्वारा उसी निष्ठा के सतत् प्रवाह को प्रवाहित कर परम शान्ति और निःश्रेयस का मूल माना है। यदि जीवन में इस प्रकार की स्थिति का सुअवसर प्राप्त नहीं हुआ तो "तस्यामृतं क्षरति हस्त गतं प्रमादात्" की उक्ति ही सामने रह जाती है।

इस प्रकार स्वामी जी ने सत-पञ्च चौपाइयों का संकलन कर श्रुति स्मृति आदि के प्रभावों से पुष्ट कर अद्वैत-निष्ठा की ओर रामायण के पाठकों को पथप्रदर्शन कराकर एक उत्तम कार्य किया है। पाठकों को इस से पूर्ण लाभान्वित होना चाहिए।

अनन्त श्री विभूषित ज्योतिष्पीठाधीश्वर
जगद्गुरू शङ्कराचार्य
स्वामीं श्री कृष्ण बोधाश्रम जी महाराज
ज्योतिर्मठ, बदरिकाश्रम

श्री महाराज के आदेश से
आचार्य श्यामलाल शर्मा, एम० ए०

श्रीमद्दण्डी स्वामी सदा शिवाश्रम जी ने जो यह मानस सिद्धान्त सार संग्रह नामक अज्ञान विध्वंसक पथ की रचना श्री तुलसीदास कृत श्री रामायण की शतपञ्च चौपाइयों द्वारा जन कल्याण के निमित्त की है, इस का अवलोकन हमने आद्योपान्त किया, जिस से हमको अवभासित हुआ कि यह स्वामी जी द्वारा निर्मित, पथ अवश्यमेव सर्व कल्याण गुण स्वरूप और सर्व साधक है, क्योंकि इस ज्ञानमय पथ द्वारा एकमात्र दाशरथी श्रीराम जी की ब्रह्मरूपता का ही समर्थन किया गया है । श्रीराम जी की ब्रह्मरूपता का प्रदर्शन तो भक्त शिरोमणि तुलसीदास जी ने अपनी सुरचित अद्वैतवादीय निर्गुणमयी चौपाइयों द्वारा ही कर दिया है, किन्तु वह प्रदर्शन सूक्ष्मवत् है, जिस कारण से सर्व साधारण जनों के दृष्टि गोचर होना असम्भव है ।

अतएव सर्वसाधारण जनों की इस शंका की निवृत्ति के निमित्त श्री स्वामी जी ने पूर्वोक्त ज्ञानमय पथ द्वारा स्पष्टतः दर्शाया है कि श्रीराम जी अयोध्यापुरी के राजा दशरथ के सुपुत्र नहीं, अपितु श्रीरामजी साक्षात् परब्रह्म परमात्मा ही हैं । श्री स्वामी जी की इस सुहृदयता पर जन समुदाय को दृष्टिपात करना चाहिये कि इस द्वैतवादीय प्रपंच में पड़ने की लेशमात्र भी आवश्यकता नहीं थी केवल हम जनसमुदाय के कल्याणार्थ ही स्वामी जी ने अपने अद्वैत चिंतनीय अमूल्य समय में से जो कुछ समय हम जनसमुदाय के कल्याणार्थ समर्पित की है उस समय को इस अज्ञान विध्वंसक ज्ञानमय पथ का हम जनसमुदाय अनुसरण करके सार्थक बनावें निरर्थक न जाने दें ।

दण्डी स्वामी आत्मदेव तीर्थ मौनी हरिद्वार
आधुनिक निवास सदन शामली

अनन्त श्री विभूषित श्रीमद्दण्डी स्वामी सदाशिवाश्रम जी महाराज द्वारा विरचित "मानस सिद्धान्त सार संग्रह" के अवलोकन का सुअवसर प्राप्त हुआ, यह रचना रूपी मुक्त हार है जो विचार सूत्र में पिरोया गया है, यह हार इतना निर्मल और विशद है कि अज्ञान रूपी अन्धकार को दूर करने वाला है । इस हार को भद्र पुरुष ही पहनते हैं, और सदा सन्तुष्ट रहते हैं । इसमें अद्वैतवाद के साथ-साथ कर्म, उपासना, ज्ञान का सुन्दर विवेचन किया गया है जो पूज्य स्वामी जी की तपस्या का अपूर्व प्रकाश है ।

इस प्रकाश से सन्मार्ग दर्शन होगा तथा इसके अवलोकन से मानव अपने स्वरूप को प्राप्त होकर सुख सागर में निमग्न होंगे ऐसा हमारा विश्वास है ।

वैद्य ओमप्रकाश दीक्षित
एम०ए० (हिन्दी, संस्कृत)
साहित्याचार्य, आयुर्वेदाचार्य
सहारनपुर

मानस सिद्धान्त सार संग्रह की अनुक्रमणिका

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध—शुद्ध
१४	५	नमः—तमः
१५	११	चः—च
११	१	तामूलम—ताम्बूलम्
६१	५	१/१०१—१/१०८
७४	२७	और—अधिक छपा
७५	२०	तिटटति—तिष्ठति
८१	५	प्रग्य—अग्य
९०	१२	पृ २०—पृ-५४
९०	१२	पृ-६७—पृ-९९,१००
९०	०	उतका—उनका
९१	१४	का—को
९२	१८	वयय—अधिक छपा
९३	२३	आँख—जिह्वा
९७	२	स्वप्रा—स्वप्ना
९७	२	कुरु—पुरु
	१५	वन्धहुरः—वन्धहर
९८	७	वहाँ—वह
	८	जिघा—जिह्वा
	२०	जनने—जानते
१००	२२	पृ-२०—पृ-५४
		नृ-५६—पृ-९०
१०	६	धर्मों—धर्म
	१५	ब्रह्मा—ब्रह्म
	२४	की—को
१००	१८	द्वग्रं—द्वयं
११०	१३	लल—जल
१११	९	छाती—जानी
११३	२१	सावना—उपासना
११८	१७	अनूप्रा—अनूग
११९	३०	लोगी—लेगी
१२७	७	ताना—ताता
	१२	परम-त्मा—परमात्मा
	१८	ह्योतद्—ह्यैतद्
१२८	२	वैश्वर—वैश्वानर
	?	को—की
	२०	पूर्णतन—पूर्णतम
	२७	सनस्त—समस्त
१२९	६	सुषुवित्र—सुषुप्ति
	१३	अतियन्ति—अनियन्त्रित
	१९	एकीभूद—एकीभून
	?०	परिचाक—परिचायक
	२५	एव—एप
	२७	पे—ये
१३०	१०	मकान—मकार

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध—शुद्ध
	३२	रायण—नारायण
	१६	सदानन्द—सदानन्दो
	७	प्रभा—प्रमाण
	३	ननुकूल—अनुकूल
	१४	अगोह—अयोध्या
१३	३	णेद—णैत्र
	२७	तो—ही
१३५	१	तृतीय—चतुर्थ
	२	१/५८—२/५८
	३	अधत—अधम
	१९	स्वप्र—स्वप्न
१३६	९	परिपच्क—परिपक्व
		मनश्चितन्तन-मनश्चिन्तन
	२५	व—ही
	२९	नित्य नित्य–नित्यानित्य
		तित्य—नित्य
३७	२७	आदर—आदि
८	३	गतभेद—गतभेदा
	२३	स्वागत—स्वगत
२	१	सो० १/१६४–१/१२६
०	२०	जानूने—जानने
	१३	वृणते—वृणुते
	८	जीवन—जीव
	८	भक्ति व–भक्ति के
	१२	माण—प्रमाण
	२६	मुनिश्वर—मुनिवर
	२८	शान्ती—शान्ति
	३०	नरद—नारद
	१४	कहा भगवन–न भगवन
	३०	गुरु जी—गरुड जी
	४	उ० १६/२०-उ० ४, १६,२०
	१४	मह·उ·४/७०–मह·उ ४/७२
	५	क्रमानुपार–कर्मानुसार
	११	वाधा—वाध
	१०	चराचर—सचराचर

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध—शुद्ध
	१०	आमा—आत्मा
	२१	ज्ञानकीं—ज्ञानकि
	२४	पृ०१४२–पृ०१७१
	२५	पृ०१८४–पृ०२०९
१५४	२३	शंकरेणमिहित, शंकरेणामिहितं
१५५	१८	दो १/१८—१/११८
१५८	१९	प्रमु—प्रभु
१६०	२९	सम्पूणं-सम्पूर्ण
१६१	१७	पाष्णि—पार्ष्णि
	२९	देष्ट्र-दंष्ट्र
	३०	यांग—पांग
१६४	९	२/१/३–२/१/३३
१६६	१६	३१/१४–३१/१३
१७०	१७	चहित–चरित
१७१	१५	भजन—भजत
	२१	पृ०१८४–पृ०२०९
	२३	अस्ह्याः—अस्थाः
१७२	६	सर्वमिद—अधिक है
१७३	९	चौ०८०—चौ०८१
१७५	२७	ते—तं
१७७	१	चौ०८१—चौ०८३
	९	उमड—उयउ
१७८	६	त्यास—प्यास
१८०	१५	जातु—जानु
१८१	६	(१ —(६)
१८३	२०	करण—वरण
१८६	३	यत्त्रनो—यत्नतो
१८८	८	उन—अधिक है
	१७	दो.८७-८—दो.८७-८८
१९१	१८	वाव–वार
१९३	१६	विव्वंसने–विध्वंसने
१९४	५	विवर्जिमम्–विवर्जितम्
१९५	१४	से—ने
१९६	१२	निरस्तरा विद्या-निरस्ता विद्या

पृष्ठ		अशुद्ध—शुद्ध
१९७	[illegible]	[illegible]ों
२०१	१८	[illegible]—अविद्या
	२५	ग—[illegible]
२०३	२४	अपते-अपने
	३१	सुगढ़ि—सुगाढ़ि
२०७	३	सर्वांभीष्ठात्—सर्वाभीष्ठान्
	२३	सवग्य—सर्वग्य
	२३	धम धाम
	२४	जाप—ध्यान
२०८	१२	पावन पवन
	२६	प्रेन —प्रेम
२०९	९	आकार—अकार
	१३	ने—न
	१५	सम्यवो—संभवो
२१०	१०	हितृ—पितृ
२१२	१८	प्रांभप्राय—अभिप्राय
२१४	७	भगवन—भगवान्

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध—शुद्ध
	३२	सव्—सर्व
२१५	२३	जिससे—जिसने
२१६	१५	झाते—जाने
२१९	२३	वाशित्व—वशित्व
२२२	६	हलाद—ह्लाद
२२३	२१	सम्बन्ध-साधन
२२५	१९	लाक लोक
२२७	१०	निरुरण—निरुपण
२२९	३	अनामल—अनामय
२३१	३०	करना—करनी
२३१	६	१/३१/३—१/३३/२
२३५	२७	सुनन—सुनत
२३६	२६	स—सुर
२३८	५	जाई—जोई
२४०	१०	श्रुनियों—श्रुतिया
२४७	१७	लखउ—लेखउँ

॥ श्री हरिः ॥

श्री परमपूज्य गोस्वामी महात्मा तुलसीदास जी ने श्री रामचरित मानस नाकर अत्यन्त लोक-कल्याण किया है। यह ग्रन्थ, वेद, शास्त्र, स्मृति एवं ों का सार है, गागर में सागर का दृष्टान्त इसमें चरितार्थ होता है। अनेक टीकायें हैं, अनेक भाषाओं में इसका अनुवाद हो गया है। जन- की अभिरुचि इस ग्रन्थ की ओर दिन पर दिन बढ़ती जाती है।

इसकी शतपंच चौपाइयों पर अनेक महानुभावों ने अपनी अपनी सम्मतियाँ र) प्रकट किये। सब ही विचारकों ने अपना अपना विचार अपने ाय के अनुकूल प्रकट किया है, सुन्दर है।

इन्हीं शतपञ्च चौपाइयों पर परमादरणीय अनन्त विभूषित श्री स्वामी दानन्द आश्रम जी महाराज के परम योग्य तथा परम प्रिय शिष्य अनन्त भूषित सदाशिव आश्रम जी महाराज ने अपने विचार प्रकट किये हैं, वेद, शास्त्र, स्मृति एवं पुराणों के प्रमाण अति उपयुक्त दिये हैं।

अस्तु सङ्गत अर्थ सयुक्ति श्री गोस्वामी जी के सिद्धान्त के अनुकूल यह चौपाइयाँ बैठती हैं। मैंने इनका अवलोकन किया है तथा विचार भी हैं—इनके श्रवण, मननादि से अवश्य जिज्ञासुओं का कल्याण होगा। के द्वारा पंच क्लेशों की निवृत्ति एवं परमानन्द की प्राप्ति हो सकती है ग्रन्थ का उद्देश्य है, ऐसा मेरा विचार है। विचारक विद्वानों को यह अवश्य ही सुखदायी होगा तथा वह अवश्य ही इसे अपनायेंगे।

—भगवदाश्रम
सद्गुरुसदन, मायाकुण्ड
हृषीकेश (देहरादून)

हमने शतपंच चौपाइयों के इस सङ्कलन को आद्योपान्त अवलोकन किया। चौपाई का सम्बन्ध अग्रिम चौपाई के साथ अत्युत्तम विधि से किया । जिसका शास्त्र प्रमाणित एवं सयुक्तिक तात्पर्य्य अद्वैतवादात्मक है। सङ्कलन में एक ही नहीं अनेक दिव्य विचित्रताएँ विलक्षण प्रतीत होती न्हें विज्ञ पाठक स्वयं अनुभव करेंगे।

हमारा पूर्ण विश्वास है कि जो जिज्ञासुअधिकारी पाठक इसको सादर श्वास से पठन श्रवणादि से ज्ञान करके हृदय में धारण करेंगे, उन्हें अवश्य लसकथित फलश्रुति अनुसार फल प्राप्त होंगे अर्थात् भवसागर का उल्लङ्घन परमपद के भागी बनेंगे। इसके लिये हमारा भी शुभाशीर्वाद है।

अतः मानस मर्मज्ञ स्वामी जी के इस सङ्कलन को अपनाकर अपना कल्याण करें।

कल्याणाकांक्षी :—
सच्चिदानन्द
सद्गुरु सदन, हृषीकेश
(देहरादून)

जिनकी

दया - दृष्टि द्वारा

मूक वाणी - विशारद

सकल कला और गुणों का धाम

एवं

नर से नारायण हो जाता है .

उन परम तत्त्वज्ञ श्री गुरुदेव

के

पावन चरणारविन्दों में

सादर समर्पित

द्धति से मनुष्य
सभी आपरेशन
में एलोपैथिक
का होना अति

संत महात्माओं
ान तरीकों को
ल्दी निदान पा
यह चिकित्सा
ानी चाहिए ।

ाए तो कारगर
ीमारी का ठीक
सफलता प्राप्त

क है क्योंकि जो
का होना अत्यन्त
ज्योतिष चिकित्स
पद्धति से इलाज
ए जिसमें सुरक्षित
पकरणों का होन

आने पर उसक
के लिए हर स्त
चाहिए सबसे बड़
को इसके विरुद्ध

में बनाने का बीड़
सऐशन पंजाब
पतपाल अग्रवाल
र मिशन", नाभा इक

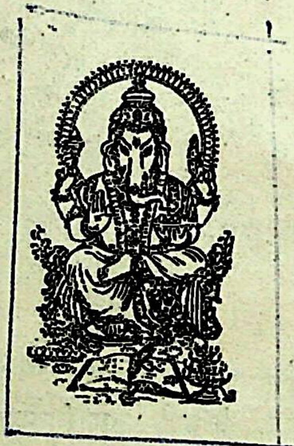


नमस्ते शारदे देवि काश्मीरपुरवासिनी ।
त्वामहं प्रार्थये नित्यं विद्यादानं च देहि मे ॥१॥
अक्षसूत्रांकुशधरा पाशपुस्तक धारिणी ।
मुक्ताहार समायुक्ता वाचि तिष्ठतु मे सदा ॥२॥
कम्बुकण्ठी सुताम्रोष्ठी सर्वाभरणभूषिता ।
महासरस्वती देवी जिह्वाग्रे संनिविश्यताम् ॥३॥
या श्रद्धा धारणा मेधा वाग्देवी विधि वल्लभा ।
भक्त जिह्वाग्रे सदना शमादिगुणदायिनी ॥४॥
नमामि यामिनीनाथ लेखालंकृत कुन्तलाम् ।
भवानीं भवसंतापनिर्वापणसुधानदीम् ॥५॥
यः कवित्वं निरातङ्कं भुक्तिमुक्ति च वाञ्छति ।
सोऽभ्यर्च्यैनां दशश्लोका नित्यं स्तौति सरस्वतीम् ॥६॥
तस्यैवं स्तुवतो नित्यं समभ्यर्च्य सरस्वतीम् ।
भक्तिश्रद्धाभियुक्तस्त षण्मासात्प्रत्ययो भवेत् ॥७॥
ततः प्रवर्तते वाणी स्वेच्छया ललिताक्षरा ।
गद्यपद्यात्मकैः शब्दैरप्रमेयैर्विवक्षितैः ॥८॥
अश्रुतो बुध्यते ग्रन्थः प्रायः सारस्वतः कवि ।
इत्येवं निश्चयं विप्राः सा होवाच सरस्वतीः ॥९॥
आत्मविद्या मया लब्धा ब्रह्मणैव सनातनी ।
ब्रह्मत्वं मे सदा नित्यं सच्चिदानन्द रूपतः ॥१०॥

(सरस्वती रहस्योपनिषत्)

❋ श्री गणेशाय नमः ❋

गजाननं भूतगणादि सेवितं कपित्थ जम्बूफल चारु भक्षणम् ।
उमासुतं शोक विनाश कारकं नमामि विघ्नेश्वर पादपङ्कजम् ॥



एकदन्तं चतुर्हस्तं पाशमंकुश धारिणम् ।
अभयं वरदं हस्तैर्बिभ्राणं मूषकध्वजम् ॥

रक्तं लम्बोदरं शूर्पकर्णकं रक्तवाससम् ।
रक्तगन्धानुलिप्ताङ्गं रक्तपुष्पैः सुपूजितम् ॥

भक्तानुकम्पिनं देवं जगत्कारणमच्युतम् ।
आविर्भूतं च सृष्ट्यादौ प्रकृतेः पुरुषात्परम् ॥

एवं ध्यायति यो नित्यं स योगी योगिनां वरः ।

नमो व्रातपतये नमो गणपतये नमः प्रमथपतये नमस्तेऽस्तु लम्बोदरायैकदन्ताय विघ्नविनाशने शिवसुताय श्री वरदमूर्तये नमो नमः ।

(गणपत्युपनिषत्)

* नमः शिवाय *



देवादिदेव सर्वज्ञ सच्चिदानन्द लक्षण।
उमारमण भूतेश प्रसीद करुणानिधे ॥

(शुकरहस्य उ० १/६)

सर्वाभय प्रदानं च सर्वानुग्रहणं तथा।
सर्वोपकार करणं शिवस्याराधनं विदुः ॥

(शिव पुराण)

वन्दे देवमुमापतिं सुरगुरुं, वन्दे जगत्कारणम्।
वन्दे पन्नगभूषणं मृगधरं वन्दे पशूनां पतिम् ॥
वन्दे सूर्यशशाङ्कवह्नि नयनं वन्दे मुकन्दप्रियम्।
वन्दे भक्तजनाश्रयं च वरदं वन्दे शिवं शङ्करम् ॥
यस्याज्ञया जगत्सृष्टा विरंचि पालको हरिः।
संहर्ता कालरुद्राख्यो नमस्तस्मै पिनाकिने ॥

(स्कन्द पु० केदार खण्ड)

श्री रुद्र रुद्र रुद्रेति यस्तं ब्रूयाद्विचक्षणः।
कीर्तनात्सर्वदेवस्य सर्वं पापैः प्रमुच्यते ॥

(रुद्रहृदय उ० १६)

कर्पूरगौरं करुणावतारं संसारसारं भुजगेन्द्रहारम्।
सदावसन्तं हृदयारविन्दे भवंभवानी सहितं नमामि ॥

❊ श्री दुर्गा देव्यै नमः ❊



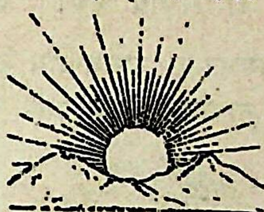
नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः ।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम् ॥१॥
तामग्निवर्णा तपसा ज्वलन्तीं, वैरोचनीं कर्मफलेषु जुष्टाम् ।
दुर्गां देवीं शरणमहं प्रपद्ये सुतरां नाशयते नमः ॥
देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति
सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना धेनुर्वागस्मानुप सुष्टुतैतु ॥
कालरात्रि ब्रह्मस्तुतां वैष्णवीं स्कन्दमातरम् ।
सरस्वतीमदितिं दक्षदुहितरं नमामः पावनां शिवाम् ॥
महालक्ष्मीश्च विद्महे सर्वसिद्धिश्च धीमहि
तन्नो देवी प्रचोदयात् ।

(देव्युपनिषत्)

एषाऽऽत्मशक्तिः । एषा विश्व मोहिनी । पाशांकुश धनुर्बाणधरा । एषा श्रीमहाविद्या । य एवं वेद स शोकं तरति ।

नमस्ते अस्तु भगवति मातरस्मान् पाहि सर्वतः ।

* श्री सूर्यदेवाय नमः *



सूर्याष्टकम्

आदि देव नमस्तुभ्यं प्रसीद मम भास्कर ।
दिवाकर नमस्तुभ्यं प्रभाकर नमोऽस्तुते ॥१॥
सप्ताश्वरथमारूढं प्रचण्डं कश्यपात्मजम् ।
श्वेत पद्मधरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहं ॥२॥
लोहितं रथमारूढं सर्वलोक पितामहम् ।
महापाप हरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम् ॥३॥
त्रिगुण्यं च महाशूरं ब्रह्म विष्णु महेश्वरम् ।
महापापहरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम् ॥४॥
बृहितं तेजः पुञ्जं चः वायुराकाश मेव च ।
प्रभुस्त्वं सर्व लोकानां तं सूर्यं प्रणमाम्यहम् ॥५॥
बन्धूक पुष्प संकाशं हार कुण्डल भूषितम् ।
एकचक्रधरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम् ॥६॥
तं सूर्यं जगत्कर्तारं महातेजः प्रदीपनम् ।
महापापहरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम् ॥७॥
तं सूर्यं जगतां नाथं ज्ञान विज्ञान मोक्षदम् !
महापापहरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम् !!८!!

चाक्षुषी विद्या

ॐ चक्षुः चक्षुः चक्षुः तेजः स्थिरो भव । मां पाहि पाहि । त्वरितं चक्षूरोगान शमय शमय । मम जातरूपं तेजो दर्शय दर्शय । यथाहम् अन्धो न स्यां तथा कल्पय कल्पय । कल्याणं कुरु कुरु । यानि मम पूर्वजन्मोपार्जितानि चक्षुः पति रोधक दुष्कृतानि सर्वाणि निर्मूलय निर्मूलय । ॐ नमः चक्षुस्तेजो दात्रे दिव्याय भास्कराय । ॐ नमः करुणाकरायामृताय । ॐ नमः सूर्याय । ॐ नमो भगवते श्रीसूर्यायाक्षितेजसे नमः । ॐ खेचराय नमः । ॐ महासेनाय नमः । ॐ तमसे नमः । ॐ रजसे नमः । ॐ सत्त्वाय नमः । ॐ असतो मा सद्गमय । तमसो मा ज्योतिर्गमय । मृत्योर्माऽमृतं गमय । उष्णो भगवाञ्छुचिरूपः प्रतिरूपः । य इमां चाक्षुष्मती विद्यां ब्राह्मणो यो नित्यमधीते न तस्याक्षिरोगो भवति । न तस्य कुले अन्धो भवति । अष्टो ब्राह्मणान् ग्राहयित्वाऽथ विद्या सिद्धिर्भवति । य एवं वेद स महान्भवति ।

* रां रामाय नमः *

रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे ।
रघुनाथाय नाथाय सीताया पतये नमः ॥



ॐ कामरूपाय रामाय नमो मायामयाय च ।
नमो वेदादि रूपाय ओङ्काराय नमो नमः ॥

रामाधराय रामाय श्री रामायात्ममूर्तये ।
जानकीदेहभूषाय रक्षोघ्नाय शुभाङ्गने ॥

भद्राय रघुवीराय दशास्यान्तक रूपिणे ।
रामभद्र महेश्वास रघुवीर नरोत्तमः ॥

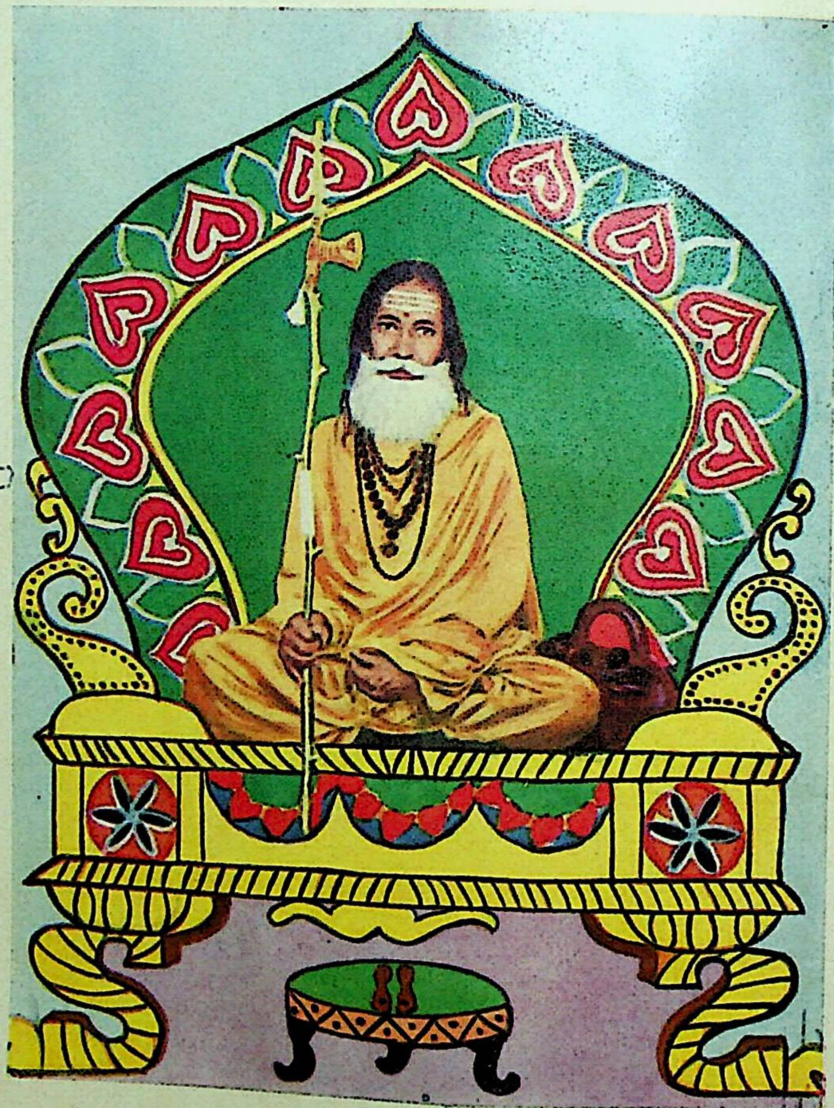
भो दशास्यान्तकास्माकं रक्षां देहि श्रियञ्चते !

(श्रीराम० पू० उ० ४/२ से ५ तक)

धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं पुण्योऽहं पुरुषोत्तम ।
अद्य मे सफलं जन्म जीवितं सफलं च मे ॥

सदोज्वलोऽविद्यातत्कार्यहीनः स्वात्मबन्धहरः सर्वदा द्वैतरहित आनन्दरूपः सर्वाधिष्ठानसन्मात्रो निरस्ताविद्यातमोमोहोऽहमेवाहमों तद्यत्परं ब्रह्म रामचन्द्रश्चिदात्मकः सोऽहमों तद्रामभद्रः परं ज्योतीरसोऽहमोम् । तत्परः परमपुरुषः पुराणपुरुषोत्तमो नित्य शुद्धमुक्त सत्य परमानन्दानन्ताद्वयपरिपूर्णः परमात्मा ब्रह्मैवाहं रामोऽस्मि ।

(रामोत्तर ता० उ० १)



श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य अनन्त श्री विभूषित
श्रीमद्दण्डी स्वामी सदाशिवाश्रम जी महाराज
हृषीकेश (देहरादून)

विभूति भूषितंदेवं साक्षात्ब्रह्मसनातनम् ।
नमामि सच्चिदानन्दं गुरुं प्रत्यक्सदाशिवम् ॥

अथ षोडशोपचार गुरुपूजनम्

१-आवाहन : आगच्छ गुरुदेवेश सदाशिव महात्मने ।
ब्रह्मस्वरूपमारूढ मम पूजां गृहाण भोः ॥

२-आसन : काशाय वस्त्र संयुक्तम् मृगछाला विभूषितम् ।
आसनं सदाशिवेश गृहाण गुरुत्तम् ॥

३-पादोदकम् : अकाल मृत्यु हरणं सर्वं व्याधि विनाशनम् ।
गुरुपादोदकम् पीत्वा शिरसा धारयाम्यहम् ॥

४-अर्घ्यम् : दिव्यौषधि रसोपेतं दिव्यसौरभ संयुतम् ।
तुलसी पुष्प दर्भाढियमर्घ्यं मे प्रतिगृह्यताम् ॥

५-आचमनम् : सुगन्ध वासितं दिव्यं सुनिर्मलम् गङ्गोदकम् ।
गृहाणाचमनं नाथ दण्डिस्वामि सदाशिव ॥

६-स्नानम् : पंचामृतं मयानीतं पयोदधि घृतं मधु ।
शर्करामिश्रितं देव गृहाण श्रीसदाशिव ॥

७-वस्त्रम् : काशाय वस्त्र सुन्दरम् इदम् वासः समर्पितम् ।
संगृहाण जगन्नाथ सदाशिव नमोऽस्तुते ॥

८-गन्धम् : श्रीखण्ड चन्दनं दिव्यं गंधाढ्य् सुमनोहरम् ।
विलेपनं श्रीसद्गुरु प्रीत्यर्थं प्रति गृह्यताम् ॥

९-अक्षतम् : अक्षतांस्तु गुरु श्रेष्ठ कुंकुमाक्तान्-सुशोभितान् ।
मयानिवेदितान् भक्तया गृहाण सद्गुरुप्रभो ॥



१०-पुष्पम् : माल्यादीनि सुगन्धीनि नाना पुष्प हृतानि च ।
सौरभाणि सुमाल्यानि गृह्यतां श्रीसदाशिव ॥

११-धूपम् : वनस्पति रसोत्पन्नः सुगन्धाढ्यः मनोहरः ।
आघ्रेयः गुरुदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥

१२-दीपम् : घृतवर्ति समायुक्तम् कर्पूरादि समन्वितम् ।
दीपं गृहाण देवेश ममसिद्धि प्रदोभव ॥

१३-नैवेद्यम् : पूपमोदकसंयाव पयः पक्वादिकं वरम् ।
निर्मितं बहु संस्कारैर्नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥

१४–ताम्बूलम् : ताम्मूल पूगसंयुक्तं लवंगेलादिभिर्युतम् ।
जगद्गुरो नमस्तुभ्यं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम् ॥

१५–नीराजनं (आरती) : कर्पूर वर्त्ति संयुक्तं गोघृतेन सुपूरितम् ।
नीराजनं गृहाणेदं कृपया भक्तवत्सल ॥

१६–पुष्पांजलि नमस्कार : पुष्पाञ्जलि संगृहाण त्रैलोक्यमभयंकुरु ।
सदाशिव नमस्तुभ्यं त्वामहं शरणागत ॥

प्रदक्षिणा : यानि कानि च पापानि जन्मान्तर कृतानि च ।
तानि तानि प्रणश्यन्ति प्रदक्षिण पदे पदे ॥
य इदं पठति स्तोत्रमेकाग्र मनसां शुचि ।
वांछितं फलं प्राप्य शिवलोकेमहीयते ॥

आरती

आरती सत् गुरु की कीजै, धूप दीप हाथों में लीजै ।

गुरु जी दीनदयाल कहावें, करें कृपा अज्ञान नसावें ।
चरणन चित्त दीजै ॥ आरती सद्गुरु की कीजे, धूप……

सद्गुरु शरण चलो सब भाई, भव बन्धन जासे मिट जाई ।
वचनामृत पीजै ॥ आरती०…………

भव विच नाव पड़ी प्रभु कबकी, करिके कृपा बचा लो अबकी ।
दया दृष्टि कीजै ॥ आरती०……………

करी कृपा निज रूप लखायौ, जन्म मरण से अमर बनायौ ।
परमानन्द लीजै ॥ आरती०……………

श्री गणेशाय नमः

विज्ञान वारिधं बन्दे सर्वतापापहारकम् ।
गुरुं विज्ञान दातारं स्वामिसदाशिवं भजे ॥

(अनन्त श्रीविभूषित ब्रह्मस्वरूप दण्डीस्वामी सदाशिवाश्रम गायत्री छन्दाक्षर स्तोत्रम्)

अ– अनुत्तमो . दुराधर्षः कृतज्ञः कृतिरात्मवान् ।
अनघो विजयो जेता अकाराय नमो नमः ॥ १

न– निमिषोऽनिमिषः स्रग्वी वाचस्पतिरुदारधीः ।
नू– न्यायो नेता समीरणः नंकाराय नमो नमः ॥ २

त– तत्त्वं तत्त्वविदेकात्मा जन्ममृत्युजरातिगः ।
तुर्यातुर्यः परानन्दो तकाराय नमो नमः ॥ ३
श्री– श्रीदः श्रीशः श्रीनिवासः श्रीनिधिः श्रीविभावनः ।
श्रीधरः श्रीकरः श्रेयः श्रीकाराय नमो नमः ॥ ४
वि– विजितात्मा विधेयात्मा सत्कीर्तिश्छिन्न संशयः ।
विश्वेश्वराय विश्वाय विकाराय नमो नमः ॥ ५
भू– भूतकृद्भूतभृद्भावो भूतात्मा भूतभावनः ।
भूतभव्यभवन्नाथः भूकाराय नमो नमः ॥ ६
षि– षडूर्मि वर्जितं पंचकोशातीतमरूपकम् ।
षड्भावविकार शून्यं षकाराय नमो नमः ॥ ७
त– तपोमूर्ति तपोधाम सर्वशास्त्रभृतां वरः ।
तुष्टः पुष्टः शुभेक्षणः तकाराय नमो नमः ॥ ८
ब्र– ब्रह्मभूतः प्रशान्तात्मा ब्रह्मानन्दमयः सुखी ।
ब्रह्मज्ञो ब्राह्मणप्रियः ब्रकाराय नमो नमः ॥ ९
ह्म– महर्षिः कपिलाचार्यः कृतज्ञो मेदिनीपतिः ।
महोत्साहो महाबलः मकाराय नमो नमः ॥ १०
स्व– स्वक्षः स्वंगः शतानन्दो नन्दिर्ज्योतिर्गणेश्वरः ।
स्वयम्भूः शम्भुरादित्यः स्वकाराय नमो नमः ॥ ११
रू– रूपनामविवर्जितः प्रपंचोपशमं शान्तम् ।
अद्वैतपरमानन्दो रूकाराय नमो नमः ॥ १२
प– परमशान्ति निर्द्वन्द्वः परिपूर्णः परात्परः ।
परापर विवर्जितः पकाराय नमो नमः ॥ १३
द– दण्डो दमयिता दमः दुर्जयो दुरतिक्रमः ।
दनुजवन कृशानुं दकाराय नमो नमः ॥ १४
ण्डी– डमरू त्रिशूल हस्ते भक्तानामभयंकर ।
डिमडिमघोषं वेद डकाराय नमो नमः ॥ १५
स्वा– स्वानुभूत्यैकमानं च यत्तत्त्वं तदसौस्थितः ।
स्वात्मारामः सुखासनः स्वाकाराय नमो नमः ॥ १६
मिं– मिथ्याभाषण हीनं च मितभाषी मिताशनः ।
मौनीमुदित मानसः मिकाराय नमो नमः ॥ १७
स– सर्वेच्छा सकला शङ्का सर्वेहा सर्वनिश्चया ।
धियायेन परित्यक्ता सकाराय नमो नमः ॥ १८
दा– दासता दलनं प्रभो दारिद्र दुःख नाशनम् ।
दारुणोद्रविणप्रदः दाकाराय नमो नमः ॥ १९

शि- शिक्षादाता शक्तिप्रदः शरणागत वत्सलः ।
शिवःप्रशान्त दाताहि शिकाराय नमो नमः ।। २०
व- वर्धतो वर्धमानश्च विविक्तः श्रुतिसागरः ।
वीरः शक्ति मतां श्रेष्ठो वकाराय नमो नमः ।। २१
आं- आदिदेवो महादेवो देवेशो देवभृद् गुरुः ।
आशातीतः प्रभायुक्तः आकाराय नमो नमः ।।
श्र- श्रद्धालभ्यं च श्रोतव्यं श्रुत्यादि प्रतिपालकम् ।
श्रमहरं शान्तिदेयं श्रकाराय नमो नमः ।। २३
म- महाबुद्धिर्महावीर्यो महाशक्तिर्महाद्युति ।
महेश्वराय देवाय मकाराय नमो नमः ।। २४
इदं स्तोत्रं पठेद्यस्तु सततं श्रद्धयाऽन्वितः ।
विनाशयेत् महत् पापं ज्ञानानन्दं प्रयच्छति ।।

–[।।]–

भवसागर तारण कारण हे, रविनन्दन खण्डन हे ।
शरणागतकिंकर भीतमने, गुरुदेव दयाकर दीन जने ।। १
हृदिकन्दर तामस भास्कर हे, तुम विष्णु प्रजापति भास्कर हे ।
परब्रह्म परात्पर वेद भने, गुरुदेव दयाकर दीन जने ।। २
मम वारण[1] शासन अंकुश हे, नर त्राण वरे हरिचाक्षुस हे ।
गुणगान परायण देवगने, गुरुदेव दयाकर दीनजने ।। ३
कुल कुण्डलिनी निद्रा भंजक हे, हृदि ग्रन्थि विदारण कारण हे
मम मानस चञ्चल रात्रि दिने, गुरुदेव दया कर दीन जने ।। ४
रिपूसूदन मर्दन नायक हे, सुख शान्ति वराभय दायक हे ।
त्रय ताप हरे तव नाम गुने, गुरुदेव दया कर दीनजने ।। ५
अभिमान प्रभाव निमर्दक हे, गतिहीन जने तुम रक्षक हे ।
चित शङ्कित वंचित भक्ति दिने, गुरुदेव दया कर दीनजने ।। ६
तव नाम सदा शुभ साधक हे, पतिताधम मानव पावक हे ।
महिमा तव गोचर शुद्ध मने, गुरुदेव दया कर दीनजने ।। ७
जय सद्गुरु ईश्वर प्रापक हे, भवरोग विकार के नाशक हे ।
मन लगा रहे तव श्रीचरने, गुरुदेव दयाकर दीन जने ।। ८

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवः महेश्वरः । गुरु साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः ।।

दोहा— ब्रह्मा विष्णु महेश गुरु, परब्रह्म भगवान ।
गुरु सम अन्य न देव कोउ, तिनके चरण प्रणाम ।।

१—हाथी ।

त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्वं मम देवदेव ॥

श्री गणेशाय नमः

श्री स्वामी जी का संक्षिप्त जीवन-चरित्र

श्री महामान्यवर श्रीमान् पं० बलवन्तराम गौड, वत्स गोत्र, महामान्या श्रीमती पार्वती देवी शौनिक गोत्रीया ने जिला मथुरा ग्राम गढ़ी में सं० १९५३ वि० आश्विन मास में जन्म दिया। शिक्षा-दीक्षा शुभ होने से यज्ञोपवीत संस्कार सम्पन्न करा के सध्या वन्दनादि कार्य में लगा दिया। घर हर प्रकार से सम्पन्न था, पढ़ना सत्सङ्ग आदि करना, समय पर कौशिक गोत्रीया कन्या का पाणि-ग्रहण हुआ, विवाह होने पर एक पुत्री और चार पुत्र पैदा हुए। बच्चों को पढ़ा-लिखा कर योग्य बनाकर पुत्री और दो पुत्रों का विवाह संस्कार करने पर, सन्यास आश्रम में प्रवेश करने का विचार पैदा हुआ, इसके लिये अनेक स्थानों पर गये, परन्तु कहीं पर चित्त न जमा। एक बार हृषीकेश में श्री वैद्यनाथ धामके ब्रह्मचारी जी पधारे उनके सामने अपना अभिप्राय रक्खा, उन्होने कहा—सन्यास का समय अब नही रहा है, जनता में श्रद्धा का अभाव होता जा रहा है, क्योंकि वेषधारी हर जाति के सन्यासियों की संख्या बढ़ती जा रही है। सद्गति तो शुद्धाचार और भगवत भजन से ही होती है। सो सदाचार के साथ भजन करो। ज्यादा आग्रह किया तो कहा कि सन्यास लेना ही है तो आप ब्राह्मण है, इसलिये दण्ड ग्रहण करना दण्डी स्वामी बनना, चाहें जहां न मुंडजाना, इसकेलिये मायाकुण्ड पर किसी दण्डी स्वामी से बात करलो। यह राय मिलने पर मायाकुण्ड पर आये, वहाँ पर श्री १००८ श्रीपरब्रह्म स्वरूप श्री गुरुदेव जी के दर्शन हुए, उस समय सत्सङ्ग में शङ्का समाधान चल रहा था, जो मन को बड़ा सुन्दर—हितकर लगा, सत्सङ्ग समाप्त होने पर प्रार्थना की, जवाब मिला कि दण्ड सन्यास बड़ा कठिन है—क्योंकि इसमें ब्राह्मणों की भिक्षा ली जाती है, अन्य वर्ण के यहां से नहीं। इसलिए सदाचार के साथ भजन करो, इस पर प्रार्थना की कि आप कृपा करें हमें कृतार्थ करें। इस पर पूछा कि इस समय आप गायत्री का जप कितना करते हो। उस समय हम सोऽहंका जप करते थे, कुछ समय पूर्व किसी सन्यासी ने सोऽहं जपने को कह दिया था, इसको सुनकर कहा यह जप तो गृहस्थियों को निषेध है, आपको हमारे यहां सन्यास नही मिलेगा, यहां पर बहुत सन्यासी हैं, चाहे जिससे सन्यास ले लो। हमने सब सन्यासियों को देखा, सत्सङ्ग किया, किसी जगह मन नहीं

मानता था। फिर प्रार्थना की कि आप ही कृपा करें, तो कहा कि ११ माला गायत्री जप रोजाना करो और सालभर बाद आओ। घर चले गये, वर्ष भर बाद फिर आये तो कहा कि इस समय तो महूरत नहीं बनता है, यह सुनकर बड़ा दु:ख हुआ और कहा महाराजजी अनेक महूरत बना दिये परन्तु संन्यासका महूरत होता है यह नहीं देखा, इस पर संन्यास-पद्धति और पंचांग लाये और कहा लो देख लो—देखा तो महूरत नहीं बनता था, फिर घर गये, तीसरे लड़के का विवाह करके महूरत देख कर गये, तब श्रीशुभ सम्वत् २००४ वि० शाके १८६९ श्रीशुभ ज्येष्ठ शुक्ला ११ गुरुवार उ० फा० नक्षत्र, सिद्धि योग, तैतलि करण तदनुसार तारीख २९–५–४७ ई० परम रमणीय शुभस्थान श्री हृषीकेश, पतित पावन, अधम उधारन श्री भागीरथी के तट पर अनन्त श्रीविभूषित श्रीमद्-परमहंस परिव्राजकाचार्य, पूज्यपाद परब्रह्मस्वरूप श्रीमद्दण्डीस्वामी सच्चिदानन्दा-श्रमजी महाराज से दण्ड ग्रहण किया—अर्थात् यति आश्रम में प्रवेश किया और प्रथम चातुर्मास श्रीगुरु चरणों में ही हृषीकेश में हुआ। इसी वर्ष श्री प्रयागराज में अर्धकुम्भ पर्व में रहे, फिर श्रीकाशीजी, हरिहर क्षेत्र की यात्रा करते हुए, फाल्गुन शिवरात्रि पर पशुपतिनाथजी पर जल चढ़ाया। वहाँ से रक्सोल जिला मोतीहारी से श्री मिशरिष में होली की, फिर हृषीकेश पहुंचे और श्रीकेदारनाथ त्रियुगी नारायण, श्रीबद्रीनारायण की यात्रा की, मार्ग में बड़े बड़े सन्त, महात्माओं से सत्संग हुआ और हृषीकेश आये। सम्वत् २००५ वि० में श्री नेमिसारण्य की परिक्रमा की जिसमें अनेक सन्त–महात्माओं का दर्शन व सत्संग प्राप्त हुआ। होली मिशरिष में की और यहाँ से गोलागौकरननाथ की यात्रा की और जिला साहजहाँपुरके उत्तरी भागकी यात्रा की। सं० २००७ में हरद्वारका कुम्भ पर्व किया, इसी सं० २००७ वि० के शुभ प्रथम आषाढ कृष्ण ११ रविवार ता० ११–६–५० ई० को श्रीकैलाश, मानसरोवर की यात्रा की—

यात्रा-क्रम:—दिल्ली से अल्मोड़ा पहुँचने पर पता चला कि कैलाश जाने वाली पार्टी चली गई, यहाँ से भी इकले ही बारीचीना, किनारीचीना, असकोट, धारचूला, बेरीनाग, गरव्याँग पहुँचे। गरव्याँग से पहले मार्ग में श्रीशङ्करजीके दर्शन हुए, परन्तु उन्हें पहिचान नहीं सके। रास्ते में एक बड़ा भारी पहाड़ बहुत ऊँचे से बहुत नीचे नदी में गिर रहा था, रास्ता रुक गया था, पीछे लौटें तो पड़ाव बहुत दूर है, आगे मार्ग रुका हुआ है, जिससे चित्त को बड़ा कष्ट हो रहा था, उसी समय दो पोस्टमैन आये, वह हमारे देखते-देखते उस टूटते हुए पहाड़ से दौड़कर नीचे उतर गये, और अलक्ष हो गये, विचार हुआ कि इस कठिनाई से पार करने स्वयं श्रीशङ्करजी ही पोस्टमैन के रूप में पधारे थे।

गरव्याँग से श्री मोहनसिंह भूटानिया की धर्मपत्नी ने दो तिब्बतियों को पार्टी से मिलाने के लिये मजूरी देकर साथ कर दिया। भारतवर्ष की सीमा पार कर तकलाकोट से पहले एक ग्राम आया और वह तिब्बती पैसा लेकर चल दिये,

पार्टी नहीं मिली, तब बड़ा संकट आ गया, यहाँ क्या किया जाय, यह विचार कर बड़े दुखी हो रहे थे, कि एक लम्बा मनुष्य हाथ में लम्बी लाठी लिये आया, और कहने लगा लामागुरु पार्टी—पार्टी इतना ही समझ पाये थे—हमने कहा हाँ पार्टी, वह हमको इशारे से ग्राम में होकर दूसरी ओर नदी किनारे से तकलाकोट के मन्दिर की तरफ इशारा करके कहा पार्टी, हमने उधर देखा तो वह बताने वाला अन्तर्ध्यान । विचार किया कि यह भी साक्षात् शिवजी ही थे, जो इस कठिनाई से पार करने पधारे थे। फिर पार्टी मिल गई ।

प्रथम आषाढ शुक्ल १५ गुरुवार ता० २९-६-५० को तकलाकोट से कैलाश, मानसरोवरकी परिक्रमा आरम्भ करी, और मानसरोवर में स्नान तथा हंसों के दर्शन किये । द्वि० आषाढ कृष्ण ३० शनिवार ता० २५-७-५० को वापिस तकलाकोट आये । साथ के यात्रियों की सूची :

नं० यात्री का नाम	गुरु या पिता का नाम	ठिकाना
१—श्री दण्डी स्वामी सदाशिवाश्रम	अनन्तश्रीविभूषित परब्रह्म स्वरूपश्री दण्डी स्वामी सच्चिदानन्दआश्रम जी महाराज	सद्गुरुसदनमायाकुण्ड हृषीकेश
२—श्री स्वामी कृष्णगिरि जी	श्री स्वामी शीतलगिरिजी	ध्रुवेश्वर मठ काशी
३— ,, बालानन्दजी	,, नारायणपुरीजी	,,
४— ,, महानन्दजी	,, पूर्णानन्दजी	गोपालकुटी हृषीकेश
५— ,, सोमारपुरीजी	,, मण्डलपुरीजी	सूरतगिरिजी का बंगला हरिद्वार
६— ,, कान्तिपुरीजी	,, शङ्करपुरीजी	,,
७— ,, महादेवानन्दजी	,, महेश्वरानन्दजी	,,
८— ,, हरिशङ्कर भारती	,, शङ्कर भारती	,,
९—ब्रह्मचारी नारायण चेतनजी	,, दयानन्दजी	,,
१०— ,, ब्रह्मानन्दजी	,, महेश्वरानन्दजी	,,
११—श्रीस्वामी बादामपुरीजी	,, बुद्धापुरीजी	जौडकिया तहसील हनुमानगढ़ बीकानेर
१२— ,, चिदानन्दजी	,, व्यासगिरिजी	श्रीकैलाश आश्रम हृषीकेश
१३— ,, विमलानन्दजी	,, डाक्टर शिवानन्दजी	मुनिकी रेती हृषीकेष
१४— ,, गणेशगिरिजी	,, शङ्करगिरिजी	रामघाट अल्मोड़ा
१५— ,, प्रेमपुरीजी	,, रामचेतनपुरीजी	गोविन्दमठ काशी
१६— ,, आत्मापुरीजी	,, प्रेमानन्दजी	श्रीरामकृष्ण भक्त आश्रम श्रीरामपुर हुबली

नं०	यात्री का नाम	गुरु या पिता का नाम	ठिकाना
१७	ब्रह्मचारी केशवस्वरूप	श्रीस्वामी मधुसूदनाश्रम जी	यमुनेश्वरआश्रम काशी
१८	" भिक्षुकशिवानन्द	" हरिहरानन्द जी	
१९	बाबू पूरनसिंह लोधा	चेननरामसिंह जी	सब्जी मण्डी दिल्ली
२०	दिशनलाल सोनकार	बाबू गौरीशङ्कर जी	चौकबाजार लखनऊ
२१	स्वामी प्रणवानन्द जी		मानसरोवर कैलाश
२२	दो पं० अहमदाबाद		अहमदाबाद
२३	दो सेठ		
२४	तीन भद्रासी ब्राह्मण		
२५	दुभाषियें घोड़े वाले तिब्बती लोग		

तकलाकोट से गरब्यांग, वेरीनाग, मनकोट, नागेश्वर से काशीपुर होते हुए हृषीकेश आये। सं० २०१० वि० में श्री प्रयागराज कुम्भ में रहे वहीं से श्री काशी जी की पंचकोशी यात्रा की और श्री अयोध्या जी, चित्रकूट की यात्रा की। सं० २०११ वि० जैपुर, भीलवाड़ा, मार्गशीर्ष में नाथद्वारा, चारिभुजा, कांकरौली और एकलिंग आदि स्थानों के दर्शन किये। आवरोड, सिद्धपुर, अहमदाबाद, वीरमगांव, वढवानशिटी, सौराष्ट्र में जामनगर से श्री द्वारकाजी, गुप्त द्वारका, भेट द्वारिका आदि की यात्रा की। जूनागढ, गढ़ गिरनार फाल्गुन कृष्ण १३ चन्द्रवार को ज्योतिर्लिंग सोमनाथ जी पर जल चढाया, नागरवाडी, सुदामापुरी, वैलवाड़ा, भावनगर, फिर वढवाना शिटी, पालनपुर, अजमेर से श्रीपुष्करराज, जयपुर होते हुए दिल्ली आये। स० २०११ में अमरनाथ जी की यात्रा की। लुधियाना में वयोवृद्ध श्रीमान यतिवर श्री १००८ श्री दण्डी स्वामी शङ्करआश्रम जी महाराज के दर्शन व सत्सङ्ग हुआ। पेलग्राम, पंचतरणी, से श्री अमरनाथ जी के दर्शन किये। सं० २०१२ में गयाजी, कलकत्ता से गंगासागर पौष शुल्क ता० १४—१—५६ को श्री गंगासागर स्नान किया। श्री कपिलदेव जी के दर्शन, फिर कलकत्ता से श्री जगन्नाथ जी, साखी गोपाल भुवनेश्वर से कलकत्ता, कलकत्ता से बम्बई से नरवदा किनारे ओंकारेश्वर अमलेश्वर ज्योतिर्लिंग पर जल चढाया मोरटक्का, उज्जैनपुरी से दिल्ली, अवितका देवीजी स्वयंभू शिव अहार पर जल चढाया। सं० २०१३ में कलकत्ता, तारकेश्वर, नवदीप की यात्रा, ११—१—५७ को गंगासागर १४—१—५७ को स्नान फिर प्रयागराज। सं० २०१५ में सूर्यग्रहण स्नान कुरुक्षेत्र। इसी वर्ष परम गुरुजी ब्रह्मचालीन हुए। माघ में प्रयागराज वहाँ से पूरे भारतवर्ष की यात्रा की, प्रयागराज से अयोध्या, श्री काशी जी, गयाजी, वैद्यनाथ कलकत्ता, वैतरणी, भुवनेश्वर, कोणार्क, जगन्नाथ जी, साखी गोपाल, मद्रास, उप्पू, श्रीगणेशजी के दर्शन,

दर्भशयन, भैरवीतीर्थ, श्री रामेश्वर जी, धनुष्कोटि स्नान, तिरुप्पुवनम्, मदुरा, मीनाक्षी के दर्शन किये, वृषभाद्र (तिरुमालिरुचचोले) तथा (अलमर-कोइल) में श्री सुन्दरराज (श्री नारायण) श्रीं देवी-भूदेवी तथा नूपुरगंगा स्नान, तिरुप्पुरकुनम् में श्री सुब्रह्मण्य स्वामी के दर्शन करे, तोताद्रि (नांगनेरी) लम्बेनारायण, छोटे नारायण, (पन्नगुडी) कन्याकुमारी समुद्र स्नान सूर्य दृश्य, शुचिन्द्रम्, नागर-कोइल, आदिकेशव, (तिरुवट्टार) आदि के दर्शन, नियरे करा (श्री कृष्ण जी) कुमार कोइल (स्वामी कार्तिक जी), त्रिवेन्द्रम् (अनन्त शयन) जनार्दन के दर्शन। तेनकाशी (दक्षिणकाशी) श्री विश्वनाथ जी के दर्शन किये, स्वयंप्रभातीर्थ, स्नान श्री सीता-राम-लक्ष्मण-हनुमान दर्शन, श्री विल्वपुत्र, अंडाल (गोदम्वा) श्री रङ्गमन्नार श्री श्री विश्वनाथ दर्शन शिवकाशी में श्री कृष्ण, विश्वनाथ के दर्शन त्रिचिनापल्ली-श्री रङ्गम्, श्री गणेश आदि दर्शन, जम्बुकेश्वर (अपलिंग) तजोर में वृहदीश्वर, स्वामीमल्ल में स्वामी कार्तिक जी, कुम्भकोणम् में कुम्भेश्वर, शारङ्गपाणि, नागेश्वर, रामस्वामी चक्रपाणि, काशी-विश्वनाथ, चन्द्रग्रहण का नवगङ्गा में स्नान, तिरुनागेश्वर में महाविष्णु, श्री लक्ष्मी जी, तिरुवजामरुदूर (मध्यार्जुनक्षेत्र) मायावरम् में मयूरेश्वर दर्शन, चिदम्बरम् नटराज के दर्शन, (यहाँ आकाशतत्त्वलिंग है), गोविन्दराज, स्फटिक लिंग, नीलमणिलिंग के दर्शन, तिरुवण्णमले (अरुणाचलम्) यह शिवजी का अग्नितत्त्वलिङ्ग माना जाता है। यहाँ पर रमणाश्रम है। विल्लोर में विना मूर्ति मन्दिर, शिवकाञ्ची-विष्णुकाञ्ची, पक्षी तीर्थ, तिरुपति में श्री पद्मावती (लक्ष्मी जी) श्री गोविन्दराज, श्री बाला जी, कोदण्ड राम के दर्शन किये, कालहस्ती में कालहस्तीश्वर वायुतत्त्वलिंग, किष्किन्धा विरूपाक्ष, इसे हासपेट कहते हैं या हप्पी कहते हैं। तुङ्गभद्रा पार करके अनागुदी ग्राम इसी को पुरानी किष्किन्धा कहते हैं, पम्पासरोवर, सप्त, ताल वेध, मानसरोवर सीताकुण्ड विट्ठल स्वामी, शवरी गुफा, अञ्जनी पर्वत, पंठरपुर, मुरली श्री वैजनाथ ज्योतिर्लिंग पर जल चढाया, सं० २०१६ में अवजा नागनाथ (नागेश) ज्योतिर्लिंग पर जल चढाया, नीलकण्ठेश्वर, भण्डारेश्वर, वासुकी नाग, शिवालय में घुसमेश्वर ज्योतिर्लिंग पर जल चढाया, दौलताबाद इलोराकी गुफा, नासिक में तपोवन, श्री सीता जी अग्निप्रवेश, श्री विश्वनाथ, रेखा गङ्गा, त्र्यम्बकेश्वर, बम्बई में वम्वा देवी, काल्वा देवी, श्री हनुमान जी, माधोबाग में लक्ष्मी-नारायण डाकोर जी में श्री रणछोल स्वामी, प्रभास में पुराना ज्योतिर्लिंग सोमनाथ जी नये सोमनाथ जी पर जल चढाया, दैत्यसूदन, सुदामापुरी सुदामा जी के दर्शन, मूल द्वारका, हर सिद्धि देवी, नागेश्वर ज्योतिर्लिंग, गोपी तालाब, वेट द्वारका, नारायण सरोवर स्नान, रणछोल, गोवर्धननाथ, भुज, हाटकेश्वर, पुष्करराज में श्री ब्रह्मा जी के दर्शन, आगरा, मथुरा, दाऊ जी, वृन्दावन धाम, हृषीकेश, शाकुम्बरा देवी जी सं० २०१६ वि० में नागपुर, रामटेक (मायापुरी), अर्धकुम्भी प्रयागराज, कालाकांकर से घुसमेश्वर, सई नदी स्नान, प्रतापगढ़, श्री काशी जी में सूर्य ग्रहण स्नान, होलिका को चन्द्र ग्रहण स्नान, यहाँ से सारनाथ गये, बक्सर अर्थात् श्री विश्वामित्र स्थान, ताडका वध, यहाँ से श्री गंगा जी के किनारे २ अर्जुनपुर केसोपुर में श्री रामायण का नवाँ पारायण कराया।

यहाँ से बलिया काशी सं० २०१८ वि० में श्री जमनोत्री जी, श्री गंगोत्री जी, उत्तरकाशी से हृषीकेश, भिटोरा (फतेहपुर) शिवपुरी, संकटादेवी, ब्रह्मशिला खेरेश्वर, विठूर (ब्रह्मावत) सं० २०१६ वि० हरिद्वार कुम्भ पर्व, जगदीश टील्ला-ग्रांकिन, कासगंज, अलीगढ़, शिव-चतुर्दशी को स्वयंभू अहार पर जल चढ़ाया, दनकौर में श्री द्रोणाचार्य जी के दर्शन, सम्वत् २०२० वि० श्री गंगा स्नान हृषीकेष, मेरठ, परीछतगढ़, पूठी, मवाना, हस्तनापुर, पाण्ड-केश्वर, सं० २०२१ वि० श्री प्रयागराज माघ स्नान, ,पुरामहादेव पर जल चढ़ाया, फाल्गुन में मथुराजी, वरसाना, नन्दग्राम वृन्दावन धाम सं० २०२२ वि० मेषी पर हरिद्वार स्नान, लुधियाना, अमृतसर, फिर विहार घाट, करनवास, रामघाट अनूपशहर, सूर्य ग्रहण स्नान, लखनऊ, श्री प्रयागराज, सं० २०२३ वि० में मण्डी धनोरा, ब्रजघाट, हृषीकेश, कैराना में सीढी से गिर जाने से बाये पैर की ऐडी में चोट आई, पलस्टर चढा, सं० २०२४ वि० में गढगंगा स्नान, ८४ कुटी महेशयोगीराज के यहाँ गये अर्धकुम्भ हरिद्वार में यहाँ से उज्जैन कुम्भ में गये, वहाँ पर प्रोटैस्ट का आप्रेशन हुआ, आश्विन में सूर्य ग्रहण स्नान कुरुक्षेत्र में हुआ। चन्द्र ग्रहण का स्नान हृषीकेश में हुआ, सोमवती स्नान शुक्रताल, सं० २०२६ में लखनऊ, बहरायच, कानपुर, सोनीपत, सं० २०२७ वि० श्री प्रयागराज को अर्धकुम्भ में, ककरावा रोहतक, परावर, गंगा स्नान हरिद्वार, सं० २०२८ मवाना-मेरठ-नव्वेकवाटर माँहवी में गंगा स्नान, मकदूरपुर, मथुरा, वृन्दावन, सं० २०२६ वि० लखनऊ, महानगर, हरिद्वार, दिल्ली में हरनिया का आप्रेशन, सं० २०३१ वि० यह पुस्तक [मानस सिद्धान्त सार संग्रह] की पाँडुलिपि कई वर्षों से तैयार थी। कस्वा काँधला व कैराना जिला मुजफ्फरनगर के भक्तों की आर्थिक सहायता से शामली से प्रकाशित हुई है.।

—❀ श्री सदाशिव भगवान् की जय ❀—

—शुभम्-भूयात्—



श्री गणेशाय नमः

प्राक्कथन

अति अगाध, अतिकराल निविडान्धकार अतिभयंकर परिवर्तनशील भवचक्र में निज-निजार्जित कर्मानुसार त्रिविध तापों से संतप्त-जीवों के दुःख निवृत्तिका उपाय वेद-वेदान्त में निष्कामकर्म, उपासना, ज्ञान तथा चतुर्विध पुरुषार्थ (धर्म, अर्थ काम और मोक्ष) का निरूपण किया गया है। किन्तु वेदान्त-शास्त्र जटिल संस्कृत भाषा बद्ध होने के कारण उसमें सामान्य जनता का प्रवेश होना सम्भव नहीं।

अब साधारण जनता का दुख निवृत्त तथा सुख पिपासा कैसे शान्त हो ? यह समस्या उपस्थित हुई—

चौ० संत हृदय नवनीत समाना, कहा कविन्ह पर कहै न जाना।
निज परिताप द्रवइनवनीता, पर दुख द्रवहि सत सुपुनीता॥

इस न्याय के अनुसार सन्त का कोमल हृदय द्रवीभूत हो गया। फिर क्या था श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदास जी ने महत्त्वपूर्ण—श्रीरामचरितमानस की रचना की। जिसकी शीतलधारा ने जगन्माता के सुपुत्रों के सूखे प्राणों को सींचा और उनकी पिपासा-शान्त की, तथा ब्रह्म विद्या रूपी गङ्गा को सरल ग्राम्य भाषा में प्रवाहित कर सबके मन मन्दिरों को शीतल एवं पवित्र बनाने एवं भवसागर पार जाने का सरल उपाय निर्दिष्ट कर दिया। यथा—

चौ० गुरु पद रज मृदु मंजुल अजन, नयन अमिअहग दोष बिभंजन।
तेहिं करि बिमल विवेक विलोचन, बरनउ रामचरित भवमोचन।
जो एहि कथहि सनेह समेता, कहिहहिं सुनहहि समुझिसचेता॥
होइहहि रामचरन अनुरागी, कलिमल रहित सुमंगल भागी।
असंन्ह सहित देह धरि ताता, करिहउँ चरित भगत सुख दाता॥
जे सुनिसादर नर बड भागी, भव तरिहहिममतामद त्यागी।

छं० मोहि सहित सुभ कीरति तुम्हारी परम प्रीति जो गाइ हैं॥
संसार सिन्धु अपार पार प्रयास बिनु नर पाइ हैं।

चौ० यह सुभ संभु उमा संवादा, सुख संपादन समन बिषादा।
भव भंजन गंजन संदोहा, जन रजन सज्जन प्रिव एहा॥
सुनहु परम पुनीत इतिहासा, जो सुनि सकल लोक भ्रमनासा।
उपजइ राम चरन विस्वासा, भव निधि तर नर बिनहि प्रयासा॥

छं० यह चरित जो गावहि हरिपद पावहि तेन परहि भव कूपा।

दो० सकल सुमंगल दायक. रघुनायक गुन गान ।
सादर सुनहिंने तरहि भव, सिंधु बिना जल जान ।।

चौ० भव सागर चह पार जो पावा, राम कथा ता कह दृढ़ नावा ।

दो० राम चरन रति जो चह, अथवा पद निर्वान ।
भाव सहित सो यह कथा, करउ श्रवन पुट पान ।।
कलिजुग समजुग आन नहिं, जो नर कर विस्वास ।
गाइ राम गुन गन बिमल, भवतर बिनहिं प्रयास ।।

इसी रामचरितमानस में से सर्व सिद्धान्त सार सनपंच (१०५) चौपाई चुनकर लिखी गई हैं, उन पर अद्वैतामृतबर्षिणी भाषा टीका लिखी गई है। अतः सज्जन साधु अपनी सज्जनता साधुता की ओर देखकर बिगड़ी, अशुद्ध भाषा को भी शुद्ध कर देते हैं या कर लेते हैं, और दुष्ट शुद्ध में भी दोष निकाला करते हैं, इन दोनों का स्वभाव अनादि और अभङ्ग है। अतएव सज्जन सन्त महापुरुष श्रीसद्गुरुदेव जी के चरण कमलों में नमस्कार करके अद्वैतामृत-वर्षिणीं भाषा टीका लिखी जाती है।

इस पुस्तक के पांडुलिपि शोधन में श्रीयुत पं० मुन्शीराम शास्त्री जी, पं० बाबूराम शास्त्री जी, पं० घनप्रकाश शास्त्री जीं, श्रीचन्दनलाल इण्टर कालेज काँधला वाले धन्यवाद के पात्र हैं, जिन्होंने अपना अमूल्य समय लगाया।

श्रीयुत पं० रघुबीरदत्त शास्त्रीं जी एम. ए., पं० पुरुषोत्तम शास्त्री जी, श्रीयुत पं० विश्वनाथ शास्त्री जी शामली जिन्होंने प्रूफ अवलोकन किया धन्यवाद के पात्र हैं।

अन्त में हम उन सभी व्यक्तियों के आभारी हैं जिन्होंने आर्थिक सहायता प्रदान की है।

पाठकगणों से हमारी करबद्ध प्रार्थना है कि वह इस पुस्तक के सम्बन्ध में अपनी सम्मति प्रकाशक को लिखकर भेजने की कृपा करें।

अनुभवी विद्वानों से विनम्र निवेदन है कि वे कृपा पूर्वक इसमें प्रतीत होने वाली त्रुटियों को सूचित करें, जिससे दूसरे संस्करण में उनके सुधार का प्रयत्न किया जा सके।

'शुभाभिलाषा

जिज्ञासु जन इस मानस सिद्धान्तसार संग्रह के भाव को हृदय में धारण कर आत्मसुखानुभूति के अमृत प्रवाह में अवगाहन कर कृतकृत्य हो जायेंगे।

शुभंभूयात्

विनीत
संग्रहकर्ता

श्री गणेशाय नमः

भूमिकाः—

श्रीरामचरितमानस में श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदास जी ने निर्गुण, निर्विकार, निरवयव, निरञ्जन, अद्वैत अरूप, अखण्ड, अज, अमर, अचल, अच्युत, अक्षर, अगोचर, अप्रमेय, अचिन्त्य होते हुए भी भक्तों के हितार्थ सगुण-साकार हुए परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीरामचन्द्र जी का अनुपम, दिव्य रसमय चरित्र चित्रित किया है। जो भव सागर में डूब रहे प्राणियों के उद्धार की साधन भूत नौका है। यथा—

चौं० भव सागर चह पार जो पावा। राम कथा ता कहँ दृढ़ नावा॥

सम्पूर्ण प्राणियों की शाश्वत शान्ति प्राप्ति का अनुपम साधन—और है नाना पुराण निगमागम सम्मत अर्थात् सर्वशास्त्रों का सार।

अनन्त श्रीविभूषित परम हंसपरिव्राजकाचार्य, मानस-राजहंस श्रीमद् दण्डी स्वामी सदाशिवाश्रम जी महाराज ने अपने स्वान्तः सुख के लिये श्रीरामचरित मानस का गम्भीर अध्ययन किया और श्रीमानस की फल श्रुति। यथा—

छं० सतपंच चौंपाई मनोहर जानि जो नर उर धरै।
दारुन अविद्या पंच जनित विकार श्रीरघुबीर हरै॥

इन सतपच (१०५) चौंपाइयों को 'मानस' जैसे महान् गम्भीर रत्नाकर में से मुख्यरत्नराशि को निकाल कर सर्व साधारणों को हितोपदेश देने के लिए एवं दिव्य वाणीका रसास्वाद लेने के लिये सतपंच (१०५) मनोहर चौंपाइयों का अद्वैतामृतवर्षिणी भाषा टीका में वर्णन किया।

(ग्रन्थ रत्न का परिचय एवं इस सङ्कलन की विशेषतायें)

१— सङ्कलन में रामचरितमानस के सप्तसोपानों का सार ग्रहण किया गया है कोई सोपान छूटा नहीं है।

२— इस सङ्कलन में सात सोपान सात सीढी हैं वह मानों ज्ञान की सप्तभूमिका ही हैं। जिनका आश्रय ग्रहण करने से मानव परमानन्द प्राप्त कर कृत कृत्य हो जायेंगे।

३— चारों घाट अर्थात् चारो वक्ताओं के वक्तव्य ग्रहण किये गये हैं।

४— एक प्रसंग से अकेले प्रसंग का सम्बन्ध बड़े ही सुन्दर ढंग से किया गया है।

५— भाषा सरल, सुन्दर, मनमोहक एवम् भाष्य में खींचातानी नहीं की गई है। प्रत्येक चौपाई के शब्दों पर श्रुति, स्मृति, पुराण और इतिहास के प्रमाण युक्तियुक्त दिये गये हैं, भाषा सामान्यतः सर्व प्रिय लिखी गई है।

६– एक ही विषय को अनेक प्रकार से समझाने की चेष्टा की गई है।

७– यह प्रश्नोत्तर के रूप में होने से इसे सामान्य बुद्धि वाले पुरुष भी आसानी से सम‑ सकेंगे।

८– प्रथम सोपान मङ्गलाचरण के 'वर्णानाम्' के विवरण में मातृका का स्वरूप सप्रमाण दिया गया है तथा प्रथम चौपाई का मर्म बड़े ही रोचक ढँग से अङ्कित किया गया है। चौपाई १६ में 'तुम जो कहा राम कोऊ आना।' यह कह कर भगवान् शिवजी ने "भेदवादी (द्वैतवादियों) की मुक्ति नहीं होती,' सुन्दर विधि श्रुति प्रमाण से लिखी गई है।

९– द्वितीय सोपान प्रथम चौपाई २४ में विषय-करणादि लेखकी शैली बड़ी ही रोचक है। श्री काशी जी में श्री शिवजी जीवों को अन्त में (मरते समय) श्रीराम नाम के वल से मोक्ष देते हैं सश्रुति प्रमाण अंकित किया गया है।

१०– तृतीय सोपान प्रथम चौपाई ४६ में श्री जी की व्युत्पत्ति श्रुति प्रमाण से दी गई है, तथा श्री गुरु वसिष्ठ जी ने नाम करण में क्रम-भंग किया, ऐसा प्रश्न होने पर– 'वेद तत्त्व के अनुसार नाम धरे गये,' यह श्रुतियों से सिद्ध किया गया है, जो पढ़ने पढ़ाने और मनन करने योग्य है।

११– चतुर्थ सोपान में श्री लक्ष्मण गीता ध्यान देने योग्य है। तथा श्रीराम-लक्ष्मण संवाद में भक्ति और रति का विवेचन हृदय ग्राही एवम् बड़ा अनुपम है। इसी प्रसंग में दोहा ३।१५ का रहस्य सिद्धान्तानुसार श्रुतियों से प्रमाणित किया गया है।

१२– पञ्चम सोपान में मन्दोदरी की निष्ठा का प्रतिपादन अनोखे ही ढंग का है, जो श्रुति-स्मृति और सच्छास्त्रों से किया गया है।

१३– षष्ठ सोपान में माया-माया पति की व्याख्या अति उत्तम विधि से की गई है। तथा सप्तावरण भेदन अति ही सुन्दर सरल, श्रुति-स्मृतियों के अनुसार निराले ही ढंग का है, जो पढ़ते ही बनता है। और वह मनन करने योग्य है।

१४– सप्तम सोपान में प्रथम ही श्रीलोमश मुनि जी का उपदेश तथा समाप्ति पर पञ्च-पर्वा अविद्या का उल्लेख तो पढने-पढाने, विचार करने योग्य बिस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है, तथा उस (अविद्या) के वाध का फल निर्वाण पद (कैवल्य मोक्ष) है बड़ी सुन्दर विधि से बताया गया है। यह इन सतपंच (१०५) चौपाइयों का भाव है।

१५– परिशिष्ट में षट् लिङ्ग निरूपण से सङ्कलन का महत्त्व प्रदर्शित करते हुए श्रुति अनुसार सङ्कलन को सिद्ध किया गया है। उसका अवलोकन करने पर इसकी उत्तमता अधिक बढ़ जाती है।

१६— श्रीरामजी अद्वितीय हैं, उनके नाम रूप, लीला और धाम भी अद्वितीय हैं, और जिस ग्रन्थ में इनका वर्णन हैं वह ग्रन्थ-श्रीरामचरितमानस भी अद्वितीय (अद्वैतवाद) ही है, यह सब रामचरितमानस से ही सिद्ध किया गया है।

१७— श्रीरामचरितमानस में केवल श्री रामजी के ही चरित्र अद्वितीय हों ऐसी बात नही है, और अनेक प्रसङ्ग भी अद्वितीय हैं।

१८— सुजानों में अद्वितीय।

१९— कृपानिधानों में अद्वितीय हैं श्रीरामजी।

२०— इस सङ्कलन का सार-श्रीरामचरितमानस अद्वैतवाद है। अद्वैतवाद से ही कैवल्य पद प्राप्त होता है यह श्रुतियो मे सिद्ध है, इसलिए इसका श्रवण-मनन निदिध्यासन करके कैवल्य पद प्राप्त करना चाहिए, ऐसी शुभ कामना के साथ सङ्कलन पूर्ण किया गया है।

इस संकलन में स्वाभाविकता, यथार्थता और मनोवैज्ञानिकता का पूर्ण ध्यान रक्खा गया हैं। प्रत्येक चौपाई के पश्चात् दूसरी चौपाई का चयन व सम्वन्ध बड़े ही सुन्दर ढँग से किया गया है जो पाठकों के चित्त को अपनी ओर आकर्षित करता है। इसलिये इसका विशेष महत्व है और पाठकों के मन में आगे की रचना के प्रति जिज्ञासा बढ़ जाती है, यही कथोपकथन भी है, हर एक चौपाई की अपेक्षा दूसरी चौपाई की व्याख्या में प्रखरता और साँकेतिकता अधिक पांई जाती हैं। व्याख्या का विस्तार बहुत कम होते हुए भी थोड़े शब्दों में अधिक-से-अधिक भावों को व्यंजित करने की चेष्टा की गई है। भाष्य की भाषा शैली शिष्ट और अति सरल है, इससे छाया प्रकाश का भी यथावसर उपयोग किया गया है। इस संकलन का वर्गीकरण मुख्यतः चार दृष्टियों से किया गया है।

(१) विषय की दृष्टि से
(२) प्रतिपाद्य की दृष्टि से
(३) शैली की दृष्टि से और
(४) फल की दृष्टि से। यथा—

१—विषय की दृष्टि से मानस सिद्धान्तसार संग्रह के भाव को हृदयङ्गम करने से श्रीराम जी पञ्चक्लेशों का हरण कर निर्वाण पद (मोक्ष) देते हैं। इस विषय वस्तु का चुनाव इतिहास, पुराण, स्मृति और श्रुतियों से किया गया है।

२—प्रतिपाद्य की दृष्टि से भावात्मक, विचारात्मक, समस्यात्मक आदि वर्गों में द्वैत का निवारण और अद्वैत का प्रतिपादन किया गया है।

३—शैली की दृष्टि से स्वप्नरूपक, प्रहसन रूपक में किया गया है। स्वप्नरूपक चौपाई १३, २६, २७ दो० २।६२ चौ० ६२, ६३ में, प्रहसनरूपक में व्यंग्यात्मक ढंग से व्यंग विनोद तथा परिहास की दृष्टि जैसे द्वैतवादियों को श्री शिव की फटकार दो० १।११४ चौपाई १७ से २० तक बड़े ही रोचक ढंग से विवरण प्रस्तुत किया गया है। तथा रोमांच परक एवम् रहस्यात्मक मनोरम शब्दों में अद्भुत आकर्षण आ गया है।

४—फल की दृष्टि से मनोहर सतपंच (१०५) चौपाइयों के मनन, निदिध्यासन करने से परम पद की प्राप्ति होती है।

आदर्शवादी परिशिष्ट से श्री स्वामी जी महाराज के अनुभव का पूरा परिचय मिलता है। इस भाष्य की पकड़ में दृढ़ता, व्यंग में तीखापन और रचना विधान में सङ्गठन का कौशल मिलता है, जो ऐसे महान् उत्तम पुरुष के लिये युक्ति-युक्त ही है। यह मनोरञ्जन की दृष्टि से महत्त्व पूर्ण है, जो पाठकों को भाव-विभोर कर देता है। यह श्री स्वामी जी की सहृदयता और गुण ग्राहकता का परिचायक है। कई प्रसङ्गों का बड़ा ही अनूठा और विशद वर्णन किया गया है। पराभक्ति और ज्ञान की प्रशान्त धारा तो इसमें सर्वत्र ही प्रच्छन्नरूप से बह रही है। स्थान-२ पर विशेष करके प्रथमसोपान मङ्गलाचरण व प्रथम चौपाई, द्वितीय सोपान चौ० २४ से ३२ तक, तृतीय सोपान में चौ० ४६ श्री जी की व्युत्पत्ति से चौ० ५१ तक, चौ० ५६, ६०, चतुर्थ सोपान में चौ० ६४ दो० २।६३ चौ० ६७ से दो० ३।१५ तक, पञ्चम सोपान में चौ० ७१ से ७८ तक, षष्ट सोपान में चौ० ७६ से ८१ तथा चौ० ८५ दो० ७/७६ (क-ख) तथा सप्तम सोपान चौ० ६४, ६५ छं० १३०।१ व २ में श्री भगवान् की मधुर लीलाओं के रसास्वादन के लिये और लीला रहस्य को समझने के लिये अनेक प्रमाण दिये गये हैं जिससे इसकी उपादेयता और सुन्दरता विशेष बढ़ गई है। भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के ऐसे सुन्दर-सुखद, रसीले, गुणानुवाद से पशुघाती अथवा आत्मघाती मनुष्य के अतिरिक्त और ऐसा कौन है जो विमुख हो जाय, इससे प्रीति न करे।

आज सर्वान्तर्यामी सर्वेश्वर अकारण करुणा वरुणालय की असीम कृपा से मैं इस ग्रन्थरत्न की भूमिका लिख कर पाठकों के सम्मुख रख कर विश्वास करता हूँ कि इस मानस सिद्धांतसार संग्रह के भाव को हृदय में धारण कर मनन-निदिध्यासन करके मानव जीवन सफल बनाकर भवसागर पार हो जायेंगे।

मैं लेखक के महान् परिश्रम और गहरे अनुभव की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करता हूँ।

परमपिता परमात्मा लेखक को आरोग्यता और दीर्घ जीवन प्रदान करें-जिससे उनकी लेखनी से संसार की और भी भलाई हो। अस्तु

श्रीमद्दण्डीस्वामी आनन्ददेवाश्रम जी
श्री सद्गुरुसदन, हृषीकेश (देहरादून)

विषय प्रवेश—

श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदास जी ने मङ्गाचरण के प्रसङ्ग में हीं सर्व शास्त्र सिद्धान्त-का निरूपण करते हुए एक मात्र चेतन ब्रह्म का प्रतिपादन किया है। सच्चिदानन्द ब्रह्म ही सर्वाधिष्ठान, सर्वव्यापक एवं सम्पूर्ण संसार का नियामक है। उसी में संसार कल्पित है। यथा-

'रज्जौयथाऽहेर्भ्रमः' अतः उस परमतत्व की वन्दना करते हुए कहते हैं।

चौ० एक अनाह अरूप अनामा, अज सच्चिदानन्द पर धामा।
व्यापक विस्वरूप भगवाना, तेहिं धरि देह चरित कृत न ना॥

अथवा—

दो० गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न।
बंदउँ सीताराम पद, जिन्हहि परम प्रिय खिन्न॥१/१८

तथा मानस के अन्त में श्रीगोस्वामी जी महाराज कहते हैं:—

छं० सतपंच चौपाइ मनोहर जानि जो नर उर धरं।

अर्थात् मन हरण (अमन) करने वाली शतपंच चौपाइयों को जो मानव हृदय में धारण करते हैं, उनके—

छं० दारुन अविद्या पंच जनित विकार श्रीरघुवर हरैं।

इससे विदित होता है कि शतपंच (१०५) चौपाइयां अविद्या विनाशक हैं। अविद्या क्या हैं-इसमें शास्त्र प्रमाण है—पञ्च पर्वा (पञ्च गाठ वाली) अविद्या, यथा—

तमो मोहो महामोहस्तामिस्त्रो ह्यन्ध संज्ञकः।
अविद्या पञ्चपर्वैषा साङ्ख्य योगेषु कीर्तिता॥ (साङ्ख्य १२)

इसी को (पात० यो० २/३ में) पञ्चक्लेश कहा हैं। यथा—

अविद्यास्मिता राग द्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः॥

भावार्थ—तमः (अविद्या), मोहः (अस्मिता), महामोहः (राग), तामिस्त्र (द्वेष) और अन्धतामिस्त्र (अभिनिवेश) यह साङ्ख्य और योग में पञ्चपर्वा अविद्या कही गई हैं; इसका विस्तृत विवरण देखिये ७/१३० छं० २ पृष्ठ [illegible] सं [illegible] पर) अविद्या और अविद्याजन्य विकारों को शतपञ्च चौपाइयों के प्रभाव से भगवान् श्रीरामचन्द्र जीं विनाश कर देते हैं।

निश्चय ही अविद्या की निवृत्ति केवल ब्रह्मात्मैक्य विज्ञान से होती है, क्योंकि ब्रह्मात्मैक्य विज्ञान से सम्पूर्ण द्वैत वाधित हो जाता हैं और अद्वैत का निश्चय होता है। क्योंकि—

मोहेन भवति भेदः क्लेशाः सर्वे भवन्ति तन्मूलाः ।।

अर्थात् मोह (अज्ञान) से भेद नानात्व द्वैत होता है और ससार ब्रह्म से भिन्न सत्य भासता है, नाना जीव भासते हैं तथा पाँचों क्लेशों का मूल 'भेद' ही है।

इसलिए जिन चौपाइयों से भेद (द्वैत) वाधित होकर एकत्व का निश्चय हो, उन शतपञ्च (१०५) चौपाइयों का सङ्कलन एवं वर्णन किया जाता है।

सङ्कलन कर्त्ता

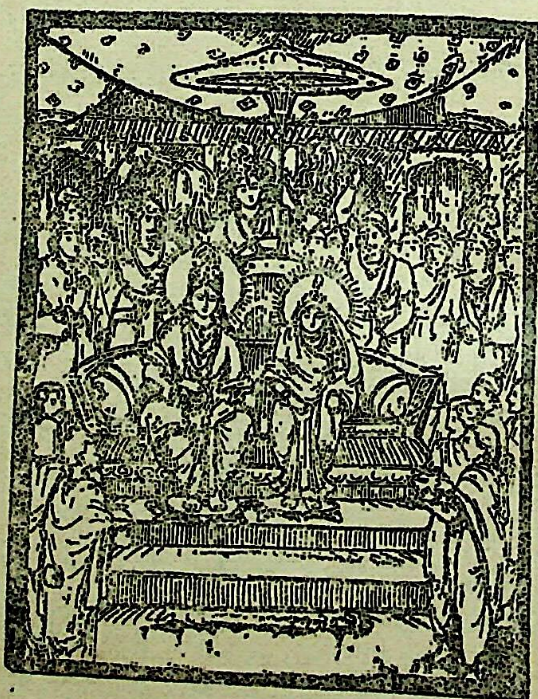
धर्म की जय हो

अधर्म का नाश हो

प्राणियों में सद्भावना हो

गौ माता की रक्षा हो

विश्व का कल्याण हो।



हर--हर महादेव

* श्री गणेशाय नमः *



—* ॐ सच्चिदानन्दात्मने नमः *—

।। श्री जानकीवल्लभोविजयते ।।

—* मंगलाचरणम् *—

मूल—वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि ।
मङ्गलानां चकर्त्तारौवन्दे वाणीविनायकौ ।।१।।

अर्थ—अक्षरों, अर्थसमूहों, रसो, छन्दों, और मङ्गलों के करने वाली सरस्वती जी (ब्रह्मविद्या) और गणेश जी (विराट् स्वरूप) की मै वन्दना करता हूँ ।। १ ।।

प्रश्न—श्री गुरुदेव ? इस मङ्गलाचरण के श्लोक का क्या रहस्य है ?

उत्तर—हे सौम्य ! रहस्य है—"वर्णानाम्" अर्थात् मातृकाणाम्, यथा—

ॐकारः प्रथमस्तस्य चतुर्दशस्वरास्तथा ।
वर्णाश्चैवत्रयस्त्रिंशदनुस्वारस्तथैव च ।।
विसर्जनीयश्च परो जिह्वामूलीय एव च ।
उपध्मानीय एवापि द्विपञ्चाशदमी स्मृताः ।।

[स्कं० पु० माहेश्वर-कुमारिका खण्ड ३।२३५, २३७]

अर्थात् मातृका में बावन (५२) अक्षर बताये गये हैं, उनमें प्रथम अक्षर ॐकार है । चौदह (१४) स्वर, तैंतीस (३३) व्यञ्जन, अनुस्वार, विसर्ग, जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय-ये सब मिलकर बावन (५२) मातृका वर्ण माने गये हैं । यह अक्षरों की संख्या है ।

अकारः कथितोब्रह्मा उकारोविष्णुरुच्यते ।
मकारश्चस्मृतोरुद्रस्त्रयश्चैतेगुणाः स्मृता ।।२५१।।
अर्द्धमात्रा च या मूर्ध्निपरमः ससदाशिवः ।।२५२।।

[स्कं० पु० मा० कुमारिका खण्ड ३।२५१,२५२]

अर्थात्—अकार ब्रह्मा, उकार भगवान् विष्णु, और मकार भगवान् महेश्वर कहे जाते हैं । ये तीनों रज, सत्व और तम त्रिगुणमय स्वरूप बताये गए हैं । ॐकार के मस्तक

पर जो अनुस्वाररूप अर्द्धमात्र है वह सर्वोत्कृष्ट भगवान् सदाशिव का प्रतीक है। पुनः मातृका का सार सर्वस्व, यथा—

औकारान्त अकाराद्या मनवस्ते चतुर्दश ॥२५४॥
काकराद्या हकारान्तास्त्रयस्त्रिंशच्चदेवताः ।
ककाराद्या, ठकारान्ता आदित्या द्वादशस्मृता ॥२५६॥
डकाराद्या बकारान्ता रुद्राश्चैकादशैव ते ।
भकाराद्या षकारान्ता अष्टौ हि वसवो मताः ।
स हौ चेत्यश्विनौ ख्यातीत्रयस्त्रिंशदितिस्मृताः ॥२६०॥
अनुस्वारो विसर्गश्च जिह्वामूलीय एव च ।
उपध्मानीयं इत्येते जरायुजास्तथाऽण्डजाः ॥२६१॥
स्वेदजाश्चोद्भिज्जाश्चापि पितर्जीवाः प्रकीर्तिताः ॥२६२॥
[स्कं० पु० मा० कुमारिका खण्ड ३।२५४ व २५६ से २६२]

			अक्षर
इनमें पहले ॐकार है।			१
'अ' से 'औ'	तक १४ मनु	स्वर	१४
	— देवता —		
'क' से 'ठ'	तक १२ आदित्य	व्यञ्जन १२	
'ड' से 'ब'	तक ११ रुद्र	" ११	
'भ' से 'ष'	तक ८ वसु	" ८	
'स और 'ह'	२ अश्विनीकुमार	" २	
	देवता—३३	अक्षर—३३	३३
अनुस्वार (ं), विसर्ग (:) जिह्वामूलीय (ᳵ क) उपध्मानीय (ᳶ प) ये चार			४
		कुल योग—	५२

(विसर्ग के आगे 'क' होने से 'जिह्वामूलीय और 'प' होने से उपध्मानीय कहा जाता है।) ये चार अक्षर—जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज नामक चार प्रकार के जीव बताये गये हैं। ये बावन (५२) मातृकेयम् 'वर्णानाम्' से कही गई है।

'अर्थं संधानाम्' अर्थात्-अर्थ का समझना आठ प्रकार से होता है। यथा—

ध्वनिशब्दाक्षर व्यङ्ग्यभावावर्त्त पदोक्तिभिः।
अर्थावैयासकि प्रोक्ता बोध्यास्तेषु मनीषिभि.॥

(भागवते पंचाध्यायी सरसीनाम्नि टीकायाम्)

अर्थात्-ध्वनि,. शब्द-योजना, अक्षर-यौजना, व्यग्य, भाव; आवर्त्त, पद और उक्ति इन आठ भेदों से शब्दों का रहस्य बुद्धिमानों को समझना चाहिए। ऐसा व्यास पुत्र श्री शुकदेव जी ने कहा है।

'रसानाम्' अर्थात्-रस शब्द के नव भाव हैं। यथा—

मासे द्रवे चेक्षुरसे पारदे मधुरादिषु।
बालरोगे विषे नीरे रसो नव सुवर्तते॥

अर्थात्—मास, द्रव, ईख (गन्ने) का रस, पारद, मधुरादि षट्रस, बालक का रोग, विष, जल और काव्य में नवरस कहे गये हैं—

तिन में मधुरादि षट्रस, यथा—

मधुराम्ल लवणतिक्त कटुकषाय षट्रसाः (गर्भोपनिषद्) काव्य के नवरस। यथा—

शृङ्गारो करुणः शान्तोरौद्रोवीरोऽद्भुतस्तथा।
हास्योभयानक श्चैव वीभत्स श्चेति ते नव॥

'छन्दसाम्' अर्थात्-वेद में सात छन्द होते हैं। यथा—

गायत्री, उष्णिक, अनुष्टुप्, वृहती, पङ्क्ति, त्रिष्टुप् और जगती। पुराणों में २६ छन्द होते हैं। इनके अतिरिक्त और भी छन्द होते हैं।

'मङ्गलानाम्' अर्थात्-मुख्य मङ्गल नव निधि हैं। यथा—

श्रेष्ठ कुले भवेज्जन्म यज्ञोपवीतमेव च।
योग्यकन्या ग्रहणं च प्राप्तिःपुत्रार्थयोस्तथा॥
सत्सङ्गों भक्तिर्ज्ञानंच कैवल्य पदमेव च।
एव नव विधंमुख्यं मङ्गलं परिचक्षते॥

अर्थात्-(१) उत्तम कुल में जन्म, (२) उपनयन अर्थात् यज्ञोपवीत संस्कार, (३) सुयोग्य कन्या के साथ पाणि-ग्रहण, (४) पुत्र प्राप्ति, (५) धन प्राप्ति, (६) सत्सङ्ग प्राप्ति, (७) भक्ति प्राप्ति, (८) ज्ञान प्राप्ति, (९) कैवल्य पद प्राप्त-यह मुख्य मङ्गल नव प्रकार का कहा गया हैं।

'कर्त्तारौ वन्दे वाणी विनायकौ' अर्थात्

चौ० आखर अरथ अलंकृति नाना, छंद प्रबन्ध अनेक विधाना।
भाव भेद रस भेद अपारा, कवित्त दोष गुन बिविध प्रकारा ॥१/६/५

इनके कर्ता वाणी और विनायक हैं, इनकी वन्दना से ग्रन्थकर्त्ता की प्रसिद्धि होती हैं। यथा—

श्रुति— अकारादिक्षकारान्तान्यक्षराणि समीरयेत्।
अक्षरेभ्यः पदानिस्युः पदेभ्यो वाक्यसम्भवः ॥६॥
सर्वे वाक्यात्मका मन्त्रा वेदशास्त्राणि कृत्स्नशः।
पुराणानि च काव्यानि भाषा श्चविविधा अपि ॥७॥
य इमां वैखरीं शक्ति योगी स्वात्मनि पश्यति।
स वाक्सिद्धिमवाप्नोति सरस्वत्याः प्रसादतः ॥१०॥
वेदशास्त्र पुराणानां स्वय कर्ता भविष्यति ॥११॥
(योगशिख० उ० ३/६, ७—१०, ११)

श्रुत्यर्थ—अकार से लेकर क्षकार पर्यन्त सब अक्षरों का उच्चारण करना चाहिए। अक्षरों से ही पद बनते हैं और पदों से वाक्य बनते हैं। सब मन्त्र, वेद, शास्त्र, पुराणं, काव्य तथा विविध भाषायें भी वाक्यों से ही बनती हैं। जो योगी इस वैखरी शक्ति को अपनी आत्मा में डेखता है (साक्षात्कार कर लेता है) वह योगी सरस्वती की कृपा से वाक्सिद्धि को प्राप्त कर लेता हैं। तथा वह वेदों का द्रष्टा तथा शास्त्रों और पुराणों का स्वयं निर्माण कर्ता हो जाता हैं।

अथवा—सरस्वती जी का मुख्य धर्म वर्णादि का देना है और मङ्गल के दाता श्री गणेशजी हैं। यथा—मोदक प्रिय मुद मङ्गल दाता। (विनय १) इसी से कहा 'वदे वाणीविनायकौ'

प्रश्नः—हे स्वामिन् ? वाणी को विनायक से पहले क्यों कहा ?

उत्तर—हे सुव्रत ? प्रथम कार्य है रामचरित की रचना अतः प्रथम वाणी को कहा।

अथवा—वाणी तथा भक्ति स्त्रीलिङ्ग हैं और विनायक व ज्ञान पुल्लिङ्ग हैं। तथा भक्ति के अनन्तर ज्ञान होता है इसीसे वाणी को प्रथम कहा।

अथवा—श्रुति भी प्रथम माता को पश्चात् पिता को देव मानने का परामर्श देती है। यथा—मातृ देवोभव, पितृ देवोभव। (तैतिरीय० उ० १/११/२)

मूल— भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धा विश्वास रूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तः स्थमीश्वरम् ।२।

अर्थ— श्रद्धा एवं विश्वास स्वरूप-श्री पार्वतीजी और श्रीशङ्करजी की मैं वन्दना करता हूं, जिनके विना सिद्धजन अपने अन्तःकरण में स्थित ईश्वर को नहीं देख सकते।

प्रश्न— हे भगवन् ? इस मङ्गल श्लोक का क्या भाव है ?

उत्तर—हे प्रिय दर्शन ! श्रीभवानी श्रद्धास्वरूप हैं और श्री शिव विश्वास रूप हैं।

'श्रद्धा' श्रद्धाधर्मसुतादेवी पावनी विश्वभाविनी ॥२४॥
साधित्रीप्रसवित्री च संसारार्णवतारिणी।
श्रद्धयाध्यंयतेधर्मो विद्वद्भि श्चात्मवादिभिः ॥४५॥
निष्किञ्चनास्तु मुनयः श्रद्धावन्तोदिवंगताः ॥४६॥
[पद्म पु० भूमि० ९४।४४ से ४६]

अर्थात्— श्रद्धादेवी धर्म की पुत्री है, विश्व को पवित्र एवम् अभ्युदयशील बनाने वाली है, सावित्री के समान पावन, जगत् को उत्पन्न तथा संसार सागर से उद्धार करने वाली हैं। आत्मवादी विद्वान श्रद्धा से ही धर्म का चिन्तन करते हैं। अकिञ्चन मुनि श्रद्धालु होने के कारण ही स्वर्ग को प्राप्त हुए हैं।

'विश्वास' दो०— सत्यवेद गुरु वाक्य हैं दृढता अस विश्वासा।

अथवा- चौ०— कवनिउ सिद्धि कि बिनु बिस्वासा।
बिनु हरि भजन न भव भय नासा ॥ ७।९०।४

दो०— बिनु बिस्वास भगति नहिं, तेहि बिनु द्रवहि न रामु।
राम कृपा बिनु सपनेहुं, जीव न लह विश्रामु ॥ ७।९० (क)

मूल— वन्देबोधमयं नित्यं गुरुं शङ्कररूपिणम्।
यमाश्रितो हि वक्रोऽपिचन्द्रः सर्वत्रवन्द्यते ॥३॥

अर्थ— ज्ञानमय, नित्य, शङ्करस्वरूप गुरु की मैं वन्दना करता हूं। जिनके आश्रित होने से ही टेढा चन्द्रमा भी सर्वत्र वन्दित होता है। ३।

प्रश्न— हे प्रभो ? 'गुरुं शङ्कररूपिणम्' कहने का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—हे प्रिय वत्स ! 'गुरुं शङ्कररूपिणम्' कहने का यह तात्पर्य है कि जब श्रीगुरुदेव जी की वन्दना करने लगते हैं तो उनकी समता के लिए जगत् गुरु, आदिगुरु सर्वशास्त्र-उद्गम स्थान श्रीशङ्कर जी का ही ध्यान आता है, अतः 'गुरुं शङ्कररूपिणम्' कहा।

अथवा- शिव एव गुरुः साक्षाद्गुरुरेव शिवः स्वयम्।
उभयोरन्तरंकिञ्चिन्नद्रष्टव्यं मुमुक्षुभिः ॥
[सर्ववेदान्तसार संग्रह]

अर्थात् शिव ही साक्षात् गुरु हैं, गुरु ही स्वयं शिव हैं। मुमुक्षु दोनों (गुरु और शिवजी) में किञ्चित् अन्तर न देखें, दोनों एक ही हैं।

अथवा श्रुति भी ऐसा ही कहती है। यथा—

श्रुति— यथागुरुस्तथैवेशो यथैवेशस्तथा गुरुः ।
पूजनीयो महाभक्त्या न भेदोविद्यतेऽनयोः ॥

(योगशिखोपनिषद् ५।५८)

श्रुत्यर्थ— जैसे गुरु हैं वैसे ही भगवान् शङ्कर हैं, तथा जैसे शङ्कर भगवान् हैं वैसे ही गुरुदेव हैं। अतः महतीभक्ति से अर्थात् परम-श्रद्धा पूर्वक गुरु की भी भगवान् शङ्कर के ही समान पूजा करनी चाहिये, इन दोनों में कोई भेद नहीं है।

अथवा- शङ्कर कल्याण स्वरूप हैं (शं=कल्याणं करोतीतिशङ्करः) और श्रीगुरुदेव जी भी अपने आश्रित का कल्याण ही करते हैं—

विमल बोध कराके, अतः शिव स्वरूप कहा।

'यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते' अर्थात् जिनके आश्रित होने से शुक्ल पक्ष द्वितीया का लघु एवम् टेढ़ा चन्द्रमा भी सर्वत्र वन्दनीय होता है। यथा—

चौ०— टेढ़ जानि सब बंदइ काहू। वक्र चन्द्रमहि ग्रसइ न राहू ॥ १।२८।३

अथवा— दुइज न चन्दा देखिये उदौ कहा भरि पाख। [दोहा व० ३४४]

प्रश्न— श्री गुरुदेव जी ? 'बोधमयम्, नित्यम्, शङ्कररूपिणम्, वन्द्यते' इन विशेषणों का क्या रहस्य है ?

उत्तर—हे सोम्य ! इन विशेषणों का रहस्य है कि श्री गुरुदेव जी ज्ञान स्वरूप, अविनाशी एवं कल्याण करने वाले हैं। अतः शिष्यों को भी ऐसा ही बना देते हैं: इसी कारण इन विशेषणों से वन्दना की गई है।

मूल — उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेश हारिणीम् ।
सर्व श्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम् ॥४॥

अर्थ— उत्पत्ति, स्थिति, (पालन) और संहार करने वाली, क्लेशों के हरने वाली तथा सम्पूर्ण कल्याणों को करने वाली श्रीरामचन्द्र जी की प्रियतमा श्रीसीता जी को मैं नमस्कार करता हूं। ४।

प्रश्न— हे स्वामिन् ? इस वन्दना श्लोक के विशेषणों का क्या भाव है ?

उत्तर—हे सुव्रत ! इन विशेषणों का भाव है कि यदि उद्भव, स्थिति, और संहार कारिणीम् ही कहते तो मूल प्रकृति में अति व्याप्ति हो जाती, इसके निवारणार्थ क्लेश हारिणीम् कहा; यह स्वभाव प्रकृति में नहीं हैं; वह तो दुष्टा, दुःखरूपा और जीव को भव में डालने वाली है। यथा—

चौ० एक दुष्ट अतिसय दुःखरूपा ।
जा बस जीव परा भव कूपा ॥ ३।१५।३

यदि 'क्लेश हारिणीम्' 'सर्व श्रेयस्करीम्' ही कहते तो विद्या-माया एवं महालक्ष्मी में अतिव्याप्ति हो जाती, इसके निवारणार्थ 'रामवल्लभाम्' कहा। इनका स्वरूप है। यथा—

दो० गिरा अरथ जल बीचिसम, कहि अत भिन्न न भिन्न। १/१८॥ अथवा-

चौ० जासु अंस उपजहि गुन खानी, अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी।
भृकुटि विलास जासु जग होई, रामबाम दिसि सीता सोई। १/१८४/२॥

अथवा- उमा रमा ब्रह्मादि बंदिता, जगदंबा सततमनिंदिता। ७/२४/५॥

दो० जासु कृपा कटाच्छ, सुर, चाहत चितवन सोइ। ७/२४॥

प्रश्नः—हे भगवन्? क्लेश कितने हैं और उनका स्वरूप क्या है?

उत्तर—हे प्रिय दर्शन? क्लेश पंच हैं-इनको पात० यो० २/३ में इस प्रकार कहा है—

यथा—अविद्यास्मिता रागद्वेषाभि निवेशाः क्लेशाः।

इन पञ्च क्लेशों की जननी अविद्या ही हैं-अविद्या का स्वरूप तथा इन क्लेशों का विस्तृत वर्णन देखिये ७/१३० छं० २ पृष्ठ ~~१५४~~ २१८ से पृष्ठ ~~१५८~~ २२२ पर। इस क्लेशों को हरने वाली हैं।

अथवा-उद्भव, स्थिति, और संहार में उत्तरोत्तर दुःख कम है अर्थात् जन्म से स्थिति (पालन) में, स्थिति से संहार-यहां सब क्लेशों का हरना/कहा।

अथवा-ऐसा भी अर्थ किया जा सकता है कि उद्भव से सन्तों के हृदय में ज्ञान-वैराग्यादि उत्पन्न करके उनको स्थित रखती हैं, और काम क्रोधादि विकारों का संहार करती हैं। इन विशेषणों से कवि ज्ञान एवं भक्ति की प्राप्ति और स्थिति तथा अविद्यादि का संहार चाहते हैं।

मूल— यन्मायावशवर्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादि देवासुराः।
यत्सत्वादमृषेव भाति सकलं रज्जौ यथा हेर्भ्रमः॥
यत्पाद प्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां।
वन्देऽहं तमशेष कारण परं रामाख्यमीशं हरिम्॥५॥

अर्थः—जिनकी माया के वशीभूत सम्पूर्ण विश्व, ब्रह्मादि देव और असुर हैं, जिनकी सत्ता से रस्सी में सर्प के भ्रम की भाँति यह सारा दृश्य जगत् सत्य ही प्रतीत होता है और जिनके केवल चरण (विराट्, हिरण्यगर्भ, ईश्वर, और ब्रह्म) ही भव सागर से तरने की इच्छा वालों के लिए एक मात्र नौका हैं, उन समस्त कारणों से परे राम कहाने वाले भगवान् हरि की मैं वन्दना करता हूँ॥५॥

प्रश्न:—हे भगवन् ? इस मङ्गल श्लोक का तात्पर्य क्या है ?

उत्तर:—हे प्रिय दर्शन ? तात्पर्य है 'यन्माया वशवर्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादि देवासुरा: अर्थात्-ब्रह्मादि सभी रामजी की माया वशवर्ती हैं यथा—

चौ० जो मायासब जगहि नचावा, जासुचरित-लखि काहू न पावा ।७/७२/१ ।
शिव चतुरानन जाहि डराहीं, अपर जीव केहि लेखे माही ।७ ७१/४ ।

अथवा-दो० जासु प्रबल माया बस, सिव बिरंचि बड़ छोट । ६/५१ ।

अथवा-चौ० जीव चराचर बस कै राखे, सो माया प्रभु सों भय भाखे ।१/२०० २ ।

अथवा—अखिल विश्व से-मर्त्यलोक, ब्रह्मादि देव से स्वर्ग लोक, असुरों से- पाताल लोक अर्थात् तीनों लोकों को माया वशवर्ती कहा । यदि 'विश्व मखिलम्' ही लिखते तो चरांचर साधारण जीवों का ही अर्थ होता, इसी से आगे ईश्वर कोटि के ब्रह्मादि का भी वर्णन कर दिया, अथवा 'यन्माया' से श्रीराम जी की माया कहा, क्योंकि देव और असुरों की माया से ब्रह्मादि की माया प्रबल है और ब्रह्मादि की माया से श्रीराम की माया प्रबल हैं । यथा—

चौ० बिधि हरि हर माया बड़ि भारी, सोउ न भरत मति सकइ निहारी ।
२/२९५/३ ॥

दो० सिव बिरचि कहुं मोहइ, को है बपुरा आन । ७/१२ (ख)

चौ० सुनु खग प्रबल राम कै माया । ७/५९/२
हरि माया कर अमिति प्रभावा, विपुल बार जेहि मोहि नचावा : ७ '६०/२
'यत् सत्त्वात् एव सकलं अमृषा भाति यथा रज्जौ अहेः भ्रमः'
अर्थात्–जिनकी सत्ता से ही यह सारा (मिथ्या) जगत् सत्य प्रतीत होता है । यथा–

चौ० जासु सत्यतातें जड़ माया, भास सत्य इव मोह सहाया । १/११७/४ ।

दो० ✓ रजत सीप महुं भास जिमि, जथा भानुकर बारि ।
यदपि मृषा तिहुं काल सोइ, भ्रमत सकइ काउ टारि । १/११७ ॥
तुलसीदास सब बिधि प्रपंच जग जदपि झूठ श्रुति गावे । (वि० १२१)

प्रश्न: हे प्रभो ? जब जगत् असत्य है तो उस पर विचार करने की क्या आवश्यकता है ?

उत्तर—हे प्रिय वत्स ? जब तक जो इसके यथार्थ स्वरुप को नहीं जानते, इस संसार को सत्य समझ रहे हैं, जब तक ऐसा भ्रम रहेगा, तब तक यह दुःख देता ही रहेगा । जैसे जब तक रस्सी को सर्प समझते रहें–तब तक भय रहेगा ही, यथा—

चौ० भूठेउ सत्य जाहि बिनु जाने।
जिमि भुजंग बिनु रजु पहिचाने॥
जेहि जानें जग जाइ हेराइ।
जागें जथा सपन भ्रम जाई॥१।११२।५

अथवा– स्रगमहुं सर्प विपुल भय दायक प्रकट होइ अबिचारें।
बहु आयुध धर बल अनेक करि हारहिं मरइ न मारें॥

और जहां रस्सी का बोध हुआ कि पता न चला सर्प कहाँ गया। भय से और भ्रम से बचने का उपाय बताया—'यत्पाद प्लव मेकमे हिं' जिनके पाद एवम् चरण (विराट्, हिरण्य गर्भ, ईश्वर और ब्रह्म) नावरूप हैं, इन्हीं के सहारे से भय और भ्रम निवृति होता हैं, ऐसा ही अध्यात्म रामायण २।१।२८,२९ में श्री नारद जी ने श्री राम जी से कहा। यथा–

अज्ञानान्न्यस्यते सर्वं त्वयि रज्जौभुजङ्गवत्।
त्वज्ज्ञानाल्लीयते सर्वं तस्माज्ज्ञानं सदाभ्यसेत्॥२८॥

अर्थात्- रज्जु में सर्प-भ्रम के समान अज्ञान से ही आप में सम्पूर्ण जगत् भासता हैं। आपका ज्ञान होने से वह सब लीन हो जाता है। इसलिये मनुष्य को सदा ज्ञान का अभ्यास करना चाहिये, ज्ञान का उपाय बताया—

त्वत्पाद भक्तियुक्तानां विज्ञानं भवति क्रमात्।
तस्मात्त्वद्भक्तियुक्ता ये मुक्ति भाजस्त एव हि॥२९॥

अर्थात्- आपके पद कमलों की भक्ति से युक्त पुरुष को ही क्रमशः ज्ञान की प्राप्ति होती है। अतः जो पुरुष आपकी भक्ति से युक्त है वे ही वास्तव में मुक्ति के पात्र हैं।

प्रश्न—श्री गुरुदेव ? वह भक्ति कौन सी है, जिससे ज्ञान होता है ?

उत्तर—हे सोम्य ! उस भक्ति को श्री मच्छङ्कराचार्य जी बताते हैं। यथा–

'मोक्षकारण सामग्र्यां भक्ति रेव गरीयसी'

अर्थात्-मोक्ष की कारण सामग्रियों में सर्व प्रथम भक्ति को ही स्थान दिया जाता है। वह भक्ति है। यथा–

'स्वस्वरूपानुसंधानं भक्तिरित्यभियीयते॥'

[विवेक चूड़ामणी ३२]

अर्थात्- अपने स्वरूप का अनुसंधान (खोज) ही भक्ति है।

'अशेष कारण परम्' अर्थात्- संसार में एक का कारण दूसरा-दूसरे का तीसरा इत्यादि उन सब कारणों के कारण उनका कोई कारण नहीं है जो सब से पर है। यथा—

चौ० विषय करन सुर जीव समेता।
सकल एक तें एक सचेता॥

सब कर परम प्रकाशक जोई।
राम अनादि अवध पति सोई॥१।११७।३
अथवा चौ० जेहि समान अतिसय नहिं कोई।३।६।४

'रामाख्यमीशंहरिम्' अर्थात्- 'हरि' शब्द के अनेक अर्थ होते हैं जैसे 'क्लेशं हरतीति हरि' 'हरिर्हरति पापानि' जीवों के समस्त क्लेशों को एवम् पापों को तथा मन को हरने वाले। 'हरिरिन्द्रो हरिर्भानु' अर्थात् 'हरि' इन्द्र एवम् भानु—सूर्य को भी हरि' कहा जाता है, परन्तु यहाँ पर 'हरि' शब्द राम का विशेषण होकर (इन्द्र—सूर्य प्रभृति से अतिशयता दिखाता है) अथवा अधिक गौरव प्रकट करता है। 'ईश' शब्द प्रायः शंकर जी के लिए आता है, परन्तु यहाँ यह श्रीराम का विशेषण है, क्योंकि ब्रह्मा, विष्णु और महेश-तीनों के समान अकेले ही समर्थ हैं। यथा—

चौ० बिधि सत कोटि सृष्टि निपुनाई।
बिष्नु कोटि सम पालन कर्ता।
रुद्र कोटि सत सम संहर्ता।७।९२।३

अथवा 'राम' शब्द से दाशरथिक राम, परशुराम, बलराम, आदि का बोध होता है इस अतिव्याप्ति के निवारणार्थ ईश पद दिया, उन श्रीराम जी की मैं वन्दना करता हूं।

—※—

मूल-सो०—जो सुमिरत सिधि होइ, गन नायक करिवर बदन।
करउ अनुग्रह सोइ, बुद्धि रासि सुभ गुन सदन॥१॥
मूक होइ बाचाल, पंगु चढ़इ गिरिबर गहन।
जासु कृपा सोदयाल, द्रवउ सकल कलि मल दहन॥२॥
नील सरोरुह स्याम, तरुन अरुन बारिज नयन।
करउ सो मम उर धाम, सदा छीर सागर सयन॥३॥
कुन्द इन्दु सम देह, उमा रमण करुना अयन।
जाहि दीन पर नेह, करउ कृपा मर्दन मयन॥४॥
बन्दउँ गुरु पद कंज, कृपा सिन्धु नररूप हरि।
महामोह तम पुन्ज, जासु बचन रविकर निकर॥५॥

—०—

प्रथम--सोपान--चौपाई १

श्री गणेशाय नमः

मानस सिद्धांत सार संग्रह

प्रथम–सोपान

मूल ✓ श्रीगुर पद नख मनि गन जोती, सुमिरत दिव्य दृष्टि हियं होती।
चौ० उघरहिं बिमल बिलोचन ही के, मिटहिं दोष दुख भव रजनी के। १।।

श्री गुरु महाराज के चरणों के नखों की माणियों के समूह के समान ज्योति है। जिस ज्योति के स्मरण करते ही हृदय में दिव्य दृष्टि अर्थात् गुप्त रहस्यों के जानने का प्रकाश हो जाता है। उस प्रकाश के हृदय में आते ही हृदय के निर्मल नेत्र खुल जाते हैं और संसार रूपी रात्रि के दोष और दुःख (जन्म-मरणादि) मिट जाते हैं। यथा—

श्रुति ✓ यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ।।
(श्वेता० उ० ६/२३-योगशिख० उ० २/२२-सुवाल० उ० १६)

श्रुत्यर्थः—जिस साधक की परम देब परमेश्वर में परम भक्ति होती है, तथा जिस प्रकार परमेश्वर में होती है उसी प्रकार अपने गुरुदेव में भी होती है उस महात्मा मनस्वी पुरुष के हृदय में ही ये बताये हुए रहस्य मय अर्थ प्रकाशित होते हैं।

प्रश्नः—श्री गुरु देव ! '**मनिगन जोती**' पद में बहु बचन के प्रयोग का और उनको '**मणिगण ज्योति**' कहने का क्या रहस्य है ?

उत्तर—हे सौम्य ? रहस्य है–पैरों में दस (१०) नख होते हैं इसलिए बहुवचन का प्रयोग किया, '**मणिगण ज्योति**' कहने का रहस्य है कि दीप ज्योति में तेल बत्ती आदि सामान चाहिए, और पतङ्गे, वायु आदि से बुझने से या बाधा आने का भय रहता है और दीप शिखा से जीवों की हिंसा होती है और वह उष्णतायुक्त तथा तेज व मन्द प्रकाश बाली है और प्रकाशित करने से प्रकाशित होती है। परन्तु मणि के प्रकाश में ये दोष नहीं हैं, उसका प्रकाश अखण्ड, एक रस, प्यारा, शीतल और स्वतः प्रकाश युक्त है, मणि और दीपक के विषय में कहा है। यथा—

चौ० परम प्रकासरूप दिन राती, नहिं कछु चहिअ दिया घृत बाती।

प्रश्नः—हे स्वामिन् ! यहां '**पद**' अर्थात् चरण और नखों का स्मरण न कह कर जोती सुमिरत कहने का क्या भाव है ? उत्तर - हे सुव्रत !

'**जोती सुमिरत**' का भाव है कि श्री गुरुपद व पद नखों की महिमा तो अपार हैं, केवल नखों की ज्योति के स्मरण का माहात्म्य कहा है, अथवा-'**सुमिरत**' शब्द देकर मणिगण की ज्योति से नखों की ज्योति की विशेषता दिखाई है।

प्रश्न:—हे भगवन् ? नख जोति के स्मरण मात्र से ही हृदय में दिव्य दृष्टि होती है—हृदय में ही दिव्य दृष्टि क्यों कही, वाहर तथा नेत्रों में दिव्य दृष्टि होना क्यों नही कहा, इसका क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—हे प्रिय दर्शन ? '**हियं होती**' कहने का तात्पर्य है कि वाहर की भी दिव्य-दृष्टि होतो है, जैसे ज्योतिष, यन्त्र, तन्त्र, मन्त्र सिद्धि अर्थात् किसी देवता की आराधना इत्यादि से परन्तु उनसे हृदय के नेत्र नहीं खुलते। इस प्रकार सिद्धाज्जन लगाने से वाहर के नेत्रों की दृष्टि अधिक हो जाती है'हृदय अर्थात् भीतर की नही। परन्तु नख प्रकाश के स्मरण मात्र से हृदय के नेत्रों में दिव्य दृष्टि हो जाती हैं। जिससे ज्ञान, वैराग्य, निरावरण भगवत् स्वरुप का विचार एक रस हृदय में वना रहता हैं। कभी मन्द नही पड़ता इसी तात्पर्य से कहा कि '**दिव्य दृष्टि हियं होती**'।

प्रश्न:—हे प्रभो ? '**उघरहिं बिमल**' कहकर क्या प्रदर्शित किया है ?

उत्तर—हे वत्स ! '**उघरहिं बिमल**' कहकर यह प्रदर्शित किया हैं कि वह दिव्य दृष्टि पाकर नेत्र निर्मल तो हो गये-परन्तु खुले नही इससे उनका बन्द होना सूचित किया।

प्रश्न: श्रीगुरुदेव ! जब दिव्य दृष्टि पाकर निर्मल हो गये, तो फिर वन्द क्यों रहे ?

उत्तर—हे सौम्य ! व्यवहार में देखते हो कि नेत्र निर्मल हों तो भी रात्रि में देख नही पाते और निद्रा वश वन्द हो जाते हैं, जव रात्रि में देख नही पाते तव खुल कर क्या करें जैसे हीं सूर्योदय हुआ जाग आते ही नेत्र अपने आप खुल जाते हैं। वैसे ही नख-मणि प्रभासे संसाररूपी रात्रि मिटते ही मोहान्धकार दूर हुआ, ज्ञान-वैराग्यरूपी नेत्र स्वयं खुल गये। क्योंकि जाग्रत का कार्य त्रिपुटि से चलता है।

प्रश्न:—हे स्वामिन् ? त्रिपुटी किसे कहते हैं और उससे जागृत का कार्य कैसे चलता है ?

उत्तर - हे सुव्रत ? त्रिपुटि तीन वस्तुओं के संयोग को कहते हैं।

प्रश्न:—हे भगवन् ? वह तीन वस्तु कौन सी है जिनके संयोग से त्रिपुटि कहलाती हैं ?

उत्तर—हे प्रिय दर्शन ? विषय, इन्द्रियां और इन्द्रियों के देवता, जव यह तीनों एकत्रित होते हैं तव त्रिपुटि कहलाती है इससे जागृत का कार्य होता हैं। रूप विषय है, नेत्र

इन्द्रियाँ है और नेत्र के देवता सूर्य हैं। रूप न हो तो किसे देखें, नेत्र इन्द्रियां न हो तो किससे देखें, और विना सूर्य के तो कार्य होता ही नहीं। यहाँ पञ्च विकार (क्लेश) रहित जो निर्वाण पद सो 'विषय' है, ज्ञान-वैराग्य रूपी 'नेत्र' हैं श्रीगुरुपद नख ज्योति-देवता है, विना देवता के इन्द्रियों में प्रकाश नहीं होता- इसी लिये हृदय के नेत्र बन्द पड़े रहे। जब श्री गुरु पद नख ज्योति रूपी सूर्य का प्रकाश मिला तब खुले।

इसीलिये कहा–**'उघरहिं बिमल बिलोचन ही के'**

प्रश्न– हे प्रभो ? **'बिमल बिलोचन'** कह कर क्या प्रदर्शित किया है ?

उत्तर–हे प्रिय वत्स ! निर्मल नेत्र कहकर यह प्रदर्शित किया है कि ज्ञान वैराग्य का जो स्वरूप है वह सदा निर्मल रहता है।

प्रश्न– श्री गुरुदेव ? **'मिटहिं'** पद का क्या रहस्य है ?

उत्तर–हे सौम्य ! इस पद का रहस्य है कि भव रजनी के दोष और दुःख फिर नहीं आते, अर्थात् सदा के लिये मिट जाते हैं।

प्रश्न– हे स्वामिन् ? **'दोष दुख भव रजनी के'** कहने का क्या भाव है ?

उत्तर–हे सुव्रत ! जैसे व्यवहार में, मर्यादा के विपरीत चोरी, जारी, अर्थात् पर स्त्री गमनादि दोष रात्रि में ही होते हैं, जिनका फल अपयश और राजदण्ड आदि दुःख होते हैं, वैसे ही भव रात्रि में। यथा–

नयन मलिन परनारि निरखि-मन-मलिन विषय सँग लागे।
हृदय मलिन वासना-मान-मद-जीव सहज सुख त्यागे ॥२॥
परनिन्दा सुनि श्रवन मलिन भे, वचन दोष पर गाये।
सब प्रकार मल भार लाग निज, नाथ चरन बिसराये ॥३॥

[विनय पत्रिका ८२]

अर्थात्–इन्द्रयों के विषय जैसे नेत्रों से पर स्त्री आदि को देखना, कानों से पर-निन्दा या काम वार्ता सुनना, रसना अर्थात् जिह्वा से पर दोषों का कथन, कठोर अश्लील बातों का कहना एवं भक्ष्याभक्ष्य, जैसे प्याज (गंठा), लहसुन, शराब, अण्डा, तम्बाखू, चाय आदि दूषित और मादक पदार्थों का सेवन, त्वचा से परस्त्री आदि का स्पर्श करना इत्यादि दोष हैं, यह हुए वाह्य करणों के दोष, तथा विषयों में मन को लगाना, बुद्धि का भ्रष्ट होना अर्थात् खोटा चिन्तन, दुष्ट अहङ्कार, छल, कपट इत्यादि अन्तःकरण के दोष हैं। जिनसे अनेक नीच योनियों में भटकना और जन्म-मरण व्याधि नरक, यातना, गर्भवास आदि दुःख भोगने पड़ते हैं।

अथवा– व्यवहार रात्रि में अन्धकार दोष है और चोर, सर्प, बिच्छू आदि का

भय तथा दुःस्वप्न आदि दुःख हैं; वैसे ही भव रजनी में अविद्या-अज्ञान आदि दोष हैं और मोहादि के कारण सूझ न पड़ना, काम, क्रोधादि रूप सर्प आदि का भय है।

अथवा- रात्रि में मनुष्य स्वप्न देखता है कि उसका सिर काट लिया गया, मानों कोई सिंह खाने को दहाड़ता हुआ अपनी ओर को आ रहा है। राजा से रङ्क हो गया इत्यादि बातों से उसे बहुत कष्ट होता है। वैसे ही संसार रूपी भव रजनी में मोह वश मनुष्य सुत, वित्त, कलत्र, देह, गेह, नेह आदि को सत्य और सुखदायी जानकर उसी के कारण त्रिताप सहता है। यह संसार रूपी रात्रि मोहमय है। यथा—

देह गेह नेह जानि जैसे घन दामिनी । सोवत सपने सहे संसृति संताप रे ।
बूडो मृग वारि खायो जेवरी के साँपरे । दोष दुःख सपने के जागे ही पै जाईरे ॥
तुलसी जागेते जाइ ताँप तिहुं तायरे । (विनय पत्रिका ७३)

इसी से कहा कि—**'मिटहिं दोष दुख भव रजनी के'**

अथवा– मोहमयी भव रात्रि अपने स्वरूप को भुला देती है और वासना, राग, दोष आदि भव रात्रि का निविडतम अन्धकार है; जिसमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मान आदि निशाचरों और चोरों का भय रहता है। ज्ञान रूपी सूर्य का उदय ही सवेरा होना है। इससे अन्धकार मिट जाता है और चोरादि भाग जाते हैं और ज्ञान रूपी सूर्य के उदय होते ही स्वरूप का साक्षात्कार होने पर त्रय ताप शान्त हो जाते हैं। यह बात श्री गोस्वामी तुलसी दास जी ने विनय–पत्रिका पद ७४ में कही है। यथा—

अब प्रभात प्रगट ज्ञान भानु के प्रकास वासना स राग मोह द्वेष निबिडतम टरे।
भागे मद मान चोर भोर जानि जातुधान काम क्रोध लोभ छोभ निकर अपडरे।२।
देखत रघुबर प्रताप बीते संताप पाप ताप त्रिबिध प्रेम आप दूर ही करें।३।

अथवा- रात्रि में चोर, सर्प, बिच्छु आदि से दुःख होता है और भव रात्रि में मत्सर, मान, मद, लोभ आदि चोर हैं। यथा–

चौ०—मत्सर मान मोह मद चोरा।७।३१।३

यह स्वस्वरूप रूपी सूर्य के उदय होते ही भाग जाते हैं इसी से कहा कि—
'मिटहिं दोष दुख भव रजनी के।'

प्रश्न– हे भगवन् ! इस कथन का रहस्य व सार क्या है ?

उत्तर–हे प्रिय दर्शन ! यहाँ इस कथन से श्री गुरुपद नख प्रकाश में सूर्य प्रकाश से विशेषता दिखलाई है कि सूर्य उदय हुये फिर अस्त हुये रात्रि आई और फिर उसमें चोर आदि का भय दुःस्वप्न का होना, नेत्रों का बन्द हो जाना आदि दोष और दुःख आ जाते हैं, परन्तु

श्रीगुरुपद नख प्रकाश से जो प्रभात होता है वह सदा बना रहता है, निर्मल नेत्र खुल जाने के बाद बन्द नहीं होते और ज्ञान रूपी सूर्य के उदय होने पर अज्ञानादि तम नहीं रहता और त्रयताप आदि दोष और दुःख नहीं सताते।

अथवा- सूर्य बहिरङ्ग प्रकाश है और नख ज्योति अन्तरङ्ग प्रकाश है। यही बात श्रुतियाँ भी कहती हैं। यथा—

श्रुति— स्वरूपसूर्येऽभ्युदिते स्फुटोक्ते गुरोर्महावाक्य पदैः प्रबुद्धः ॥

(शुक रहस्योपनिषद् ३।६)

श्रुत्यर्थ– (श्रीशुकदेव जी का वचनामृत) श्रीगुरुदेव जी द्वारा महावाक्य के पदों का स्पष्ट उपदेश दिये जाने पर स्वरूप रूपी सूर्य के उदित होने से मैं जग गया हूं। अथवा—

श्रुति— अनागपि मनोव्योम्नि वासनारजनीक्षये।
कलिका तनुतामेति चिदादित्यप्रकाशनात् ॥

(महा० उ० ४।११७)

श्रुत्यर्थ– चित्ताकाश (हृदय) में वासना रूपी रजनी (रात्रि) के तनिक भी क्षीण होने पर चेतना रूपी सूर्य (श्री गुरु पद नख) के प्रकाश से कलि रूपी तम क्षीणता को प्राप्त हो जाता है। अर्थात् भव रूपी रात्रि के दोष और दुःख (जन्म-मरणादि) मिट जाते हैं। जिनके हृदय में ज्ञान रूपी प्रकाश हो गया है जिससे वह समता में स्थित हैं—ऐसे सन्तों की वन्दना करते हैं। यथा—

मूल दो०— बंदउँ सन्त समान चित, हित अनहित नहिं कोइ।
अंजलि गत सुभ सुमन जिमि, सम सुगंध कर दोइ ॥१।३(क)

अर्थ—मैं उन सन्तों को प्रणाम करता हूं, जिनके चित्त में समता है, जिनका न कोई मित्र है और न शत्रु? जैसे अञ्जलि में रक्खे हुए सुन्दर फूल (जिस हाथ ने फूलों को तोड़ा और जिसने उनको रक्खा उन) दोनों ही हाथों को समान रूप से सुगन्धित करते हैं (वैसे ही सन्त शत्रु और मित्र दोनों का ही समान रूप से कल्याण करते हैं)। १।३ (क)

प्रश्न—हे प्रभो? '**सन्त समान चित**' का क्या भाव है?

उत्तर– हे प्रिय वत्स! '**समान चित**' के विषय में श्री गीता जी में बताया है। यथा—

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्य निन्दात्म संस्तुतिः ॥
मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः।

(गीता १४।२४,२५)

जो निरन्तर आत्म भाव में स्थित हुआ, दुःख सुख को समान समझने वाला है तथा मिट्टी, पत्थर और स्वर्ण में समान भाव वाला और धैर्यवान् है तथा जो प्रिय और अप्रिय को बराबर समझता है तथा अपनी निन्दा-स्तुति में भी समान भाव वाला है तथा जो मान और अपमान में सम है एवं मित्र और क्षत्रु के पक्ष में भी सम है। इसी को समान चित कहते हैं।

अथवा दो०—शत्रु न काहू करि गनै, मित्र गनइ नहिं काहि।
तुलसी यह गति सन्त की, रहते समता माहि ॥

अथवा श्रुति—प्राप्तकर्म करो नित्यं शत्रु-मित्र समान दृक्।
ईहितानीहितैर्मुक्तो न शोचति न काङ्क्षति ॥६४॥
सर्वस्याभिमतं वक्ता चोदितः पेशलोक्तिमान्।
आशयज्ञश्चभूतानां संसारे नावसीदति ॥
(मह० उ० ६।६४।६५)

श्रुत्यर्थ—जो नित्य प्राप्त कर्म को करता है, शत्रु-मिश को समान दृष्टि से देखता है तथा इच्छा और अनिच्छा से मुक्त है, न शोक करता है न किसी वस्तु की इच्छा करता है, सबसे प्रिय बोलता है, पूछे जाने पर मृदु भाषण करता है और सब प्राणियों के आशय को जानता है, वह संसार में शोक (जन्म-मरण) को नहीं प्राप्त होता।

प्रश्न— श्री गुरुदेव ? "अंजलि गत सुभ सुमन जिमि, सम सुगन्ध कर दोइ ॥" का क्या भाव है ?

उत्तर—हे सौम्य ! यहाँ दृष्टान्त देते हैं कि एक हाथ से फूल तोड़े जाते हैं और दूसरे हाथ में रक्खे जाते हैं; पुष्प शत्रु-मित्र का विचार न करके दोनों को बराबर सुगन्ध देते हैं, दाहिने-बायें का विचार नही करते, यही समता है। यथा—

अञ्जलि स्थानि पुष्पाणि वासयन्ति कर द्वयम्।
अहो सुमनसां प्रीतिर्वामि दक्षिणयोः समा ॥

जिनके हित-अनहित कोई नहीं है अर्थात् जो राग-द्वेष से परे हैं ऐसे सन्तों की मैं वन्दना करता हूं।

सन्तों की वन्दना करने के अनन्तर जिस परम प्रभु (आत्मा) का साक्षात्कार करके महात्मा समता को प्राप्त होते हैं; उसी परम प्रभु के स्वरूप की ओर संकेत करते हैं।

मू०दो०—सारद सेस महेस बिधि, आगम निगम पुरान।
नेति नेति कहि जासु गुन, करहि निरंतर गान ॥१२

सरस्वती जी, शेषजी, शिवजी, ब्रह्माजी, शास्त्र, वेद और पुराण ये सब 'नेति-नेति' कहकर (पार नहीं पाकर 'ऐसा नहीं' 'ऐसा नहीं' कहते हुए) सदा जिनका गुण गान किया करते हैं ॥१/१२॥

प्रश्नः—हे स्वामिन् ! **'नेति नेति कहि जासु गुन, करहिं निरंतर गान ।।'** कथन का क्या भाव है ?

उत्तर—हे सुव्रत ? इसका भाव श्रुतियां बताती हैं । यथा—

श्रुति अथात-आदेशो नेति नेति न ह्येतस्मादिति-
नेत्यन्यत्परमस्त्यथ नामधेयं सत्यस्य सत्यमिति ॥
(बृहदारण्यक० उ० २/३/६)

श्रुत्यर्थ—नेति नेति यह वेद का निर्देश-उपदेश अर्थात् शासन है । 'नेति नेति' इससे बढ़कर कोई उत्कृष्ट आदेश नहीं है । सत्य का सत्य यह उसका नाम है, उसका ही सदा गान करते हैं । उसीके स्वरूप को फिर कहते हैं । यथा—

मूल चौ०—एक अनीह अरूप अनामा । अज सच्चिदानंद पर धामा ॥
ब्यापक बिस्वरूप भगवाना । तेहिं धरि देह चरित कृत नाना ॥२

वह इच्छारहित, रूपरहित, नाम रहित ईश्वर एक है, जो अजन्मा, सत्-चित्-आनन्द स्वरूप हैं, जिसका सबसे परे धाम है ॥ जो सब में व्यापक एवं विश्वरूप हैं, उन्हीं भगवान् ने निज इच्छा से दिव्य शरीर धारण करके नाना प्रकार की लीला की है ॥२॥

प्रश्नः हे भगवन् ? '**एक**' कहने का क्या तात्पर्य है और एक शब्द की व्युत्पत्ति कहिये ?

उत्तर—हे प्रिय दर्शन ! परमार्थतः सजातीय विजातीय स्वगत भेद विनिर्मुक्तत्वात्-एकः, 'एकमेवाद्वितीयम्' (छा० उ० ६/२/१) इति श्रुतिः ॥

अर्थात्—परमार्थ से सजातीय, विजातीय, और स्वगत-भेदों से शून्य होने के कारण परमात्मा राम एक है, जैसा कि श्रुति कहती है—एक ही अद्वितीय था ।

श्रुत्यर्थ—एक=सजातीय भेद शून्य, 'एवं'=विजातीय भेद रहित, अद्वितीयम्=स्वगत भेद शून्य था ।

अथवा—श्रुति-अथ कस्मादुच्यते एको यः सर्वान्प्राणान्संभक्ष्य-सभक्षणेनाजः संसृजतिविसृजति च । साकं स एकोभूतश्चरति प्रजानंस्तस्मादुच्यते एकः ॥ (अथर्वशिर० उ०)

श्रुत्यर्थ—फिर एक कैसे कहा जाता है ? जो सम्पूर्ण प्राणों को भक्षण करके सम भक्षण हैं, अज=परमात्मा सम्यक् प्रकार करके सृजता है और संहार कर देता है वह एक ही

भूतों में विचरण करता है और समस्त भूत भी वही है इसलिए एक कहा जाता है।

प्रश्न:—हे प्रभो ? '**अनीह**' का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—हे वत्स ! चेष्टा रहित।

प्रश्न:—श्रीगुरुदेव ! '**अरूप अनामा**' कह कर क्या प्रदर्शित किया है ?

उत्तर—हे सोम्य ? अरूप अनामा को श्रुति इस प्रकार कहती है। यथा—

श्रुति—एकमेवाद्वितीयं सन्नाम रूप विवर्जितम् ॥ (शुकरहस्य० उ० ३/५)

श्रुत्यर्थ– सृष्टि के पूर्व एक मात्र द्वैत की सत्ता से रहित अद्वैत नाम रहित रूप रहित सत्ता थी और अब भी वह सत्ता वैसी ही है।

प्रश्न:—हे स्वामिन् ! '**अज**' कहने का क्या भाव है ?

उत्तर—हे सुव्रत ? '**अज=**' न जायते इति—अज=ब्रह्म।

प्रश्न:—हे भगवन् ? '**सत्-चित्-आनन्द**' यह तीन विशेषण देने का क्या अभिप्राय हैं ?

उत्तर:– हे प्रिय दर्शन ! ये उस परम तत्त्व के गुण व विशेषण नहीं हैं यह तो उसके स्वरूप हैं।

प्रश्न:—हे प्रभो ? यह स्वरूप हैं तो तीन स्वरूप कहने का क्या प्रयोजन हैं एक 'सत्', ही कह देते हैं ?

उत्तर—हे प्रिय वत्स ? किसी वस्तु का लक्षण करने में कोई दोष आ जाय तो वह लक्षण दुष्ट होता है, शुद्ध नहीं कहा जाता। अति व्याप्ति आदि दोष न आजाय इसलिए एक ही स्वरूप को सत्-चित् आनन्द करके कहा, यदि एक 'सत्' ही कहते तो कुछ विद्वान् तीन वस्तु (ईश्वर जीव और माया) को 'सत्' मानते हैं, और कुछ विद्वान् नव (९) वस्तु (क्षिति, अप्, तेज, वायु, आकाश, काल, दिक, आत्मा और मन) इनमें चार भूतों (क्षिति, अप्, तेज और वायु) के परमाणु रूप में नित्य (सत्) हैं और आकाशादि पांच द्रव्य नित्य (सत्) हैं, इन नव (९) को सत् मानते हैं। उन में अति व्याप्ति हो जाती, इसके निवारणार्थ 'सत्' के साथ 'चित्' कहा। क्योंकि तीन वस्तु 'सत्' मानने वाले माया को जड़ ही मानते हैं; 'चित्' नहीं, यही दशा नव (९) वस्तु 'सत्' मानने वालों की है, वह उन्हें 'सत्' तो मानते हैं परन्तु 'चित्' ? नहीं, इसलिए 'सत्' के साथ 'चित्' कहा है।

प्रश्न: श्री गुरुदेव ? तो केवल '**चित्**' ही कह देते ?

उत्तर –हे सोम्य ? केवल '**चित्**' कहने से सूर्य, चन्द्र और अग्नि आदि में अति व्याप्ति

दोष आजाता इसके निवारणार्थ 'चित्' के साथ 'आनन्द' कहा, ये सूर्यादि प्रकाश युक्त तो हैं परन्तु आनन्द युक्त नहीं इसलिए 'चित्' के साथ 'आनन्द' कहा।

प्रश्न: – हे स्वामिन् ! केवल 'आनन्द' ही कह देते ?

उत्तर—हे सुव्रत ? केवल 'आनन्द' कहने से विषयानन्द, सुषुप्तानन्द व लेशानन्दादि में अति व्याप्ति दोष आजाता, इसके निवारणार्थ 'आनन्द' के साथ 'सत्' कहा, यह विषयानन्द आदि क्षणिक हैं 'सत्' नहीं इसलिये शुद्ध और शुभ स्वरूप के लिए सत्-चित् और आनन्द' कहा।

प्रश्न:—हे भगवन् ? 'परधाम' कहने का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—हे प्रिय दर्शन ! 'परधाम' के विषय में भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी गीता अ० ८ श्लोक २१ में इस प्रकार कहते हैं—

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमाँ गतिम्।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥

जो वह अव्यक्त अक्षर ऐसे कहा गया है। उस ही अक्षर नामक अव्यक्त भाव को परमगति कहते हैं तथा जिस सनातन अव्यक्त भाव को प्राप्त होकर मनुष्य पीछे नहीं आते हैं वह मेरा परमधाम है।

प्रश्न:—हे प्रभो ? 'व्यापक' और विश्वरूप की परिभाषा किस प्रकार है !

उत्तर—हे प्रियवत्स ! व्यापक' और 'विश्वरूप' के लिए श्रुति इस प्रकार कहती है,

यथा-श्रुति–सचानन्तशीर्षा पुरुष अनन्ताक्षिपाणिपादो भवति।
अनन्तश्रवणः सर्वमावृत्य तिष्ठति, सर्वव्यापको भवति।
सगुणनिर्गुणस्वरूपो भवतिः। ज्ञान बलैश्वर्यं शक्ति तेजः-
स्वरूपो भवति। विविध विचित्रानन्तजगदाकारो भवति।
निरतिशयानन्दमयानन्त परम विभूति समष्ट्या विश्वाकारो भवति ॥
(त्रिपाद्विभूति महानारायण० उ० २)

श्रुत्यर्थ–वह (विराट्) अनन्त मस्तकों तथा अनन्त नेत्रों, हाथों और पैरों से युक्त पुरुष है। वह अनन्त कानों वाला सबको घेर कर (व्याप्त करके) स्थित है। वह सर्व व्यापक है वह सगुण एवं निर्गुण स्वरूप हैं। वह ज्ञान, वल, ऐश्वर्य, शक्ति तथा तेज स्वरूप है। नाना प्रकार के अनन्त विचित्र जगत् के आकार में वही स्थित है। वही निरतिशय आनन्दमय अनन्त परमविभूति के समुदाय से सम्पन्न विश्वरूप परमात्मा है।

प्रश्नः—श्रीगुरुदेव ? '**भगवान्**' का व्युत्पत्ति जनित अर्थं क्या है ?

उत्तर—हे सौम्य ? विष्णु पुराण ६/५/७८ व नारद पुराण पूर्व० ४६/२१ में भगवान् का व्युत्पत्ति जनित अर्थं इस प्रकार किया गया है। यथा—

उत्पत्ति प्रलयं चैव भूतानामागतिं गतिम् ।
वेत्ति विद्यामविद्याँ च स वाच्योभगवानिति ॥

अर्थात्—जो समस्त प्राणियों के उत्पत्ति और नाश, आना-जाना तथा विद्या और अविद्या को जानते है वहीं भगवान् कहलाते हैं। अथवा—चौ० २३ पृष्ट ५६ चौ० २६ दो० १/११८ पृष्ठ ६७ पर विशेष वर्णन उदाहरण सहित पढ़ें। ऊपर से जो कहते आवे हैं ऐसे स्वरूप वाले श्री भगवान् निज इच्छा से ही देह धारण करके अर्थात्-निर्गुण से सगुण होकर अनेक चरित्र करते हैं। यथा—

श्रुति एकोवशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रुपं बहुधा यः करोति ॥
कठ० उ० २/२/१२)

श्रुत्यर्थ—जो परमात्मा सदा सबके अन्तरात्मारूप से स्थित हैं, जो अद्वितीय हैं और सम्पूर्ण जगत् में देव-मनुष्यादि सभी को सदा अपने वश में रखते हैं, वे ही सर्व शक्ति मान् सर्व भवन समर्थ परमेश्वर अपने एक ही रूप को अपनी लीला से बहुत प्रकार का बना लेते हैं॥

उन्हीं के निर्गुण एवं सगुण स्वरूप को कहकर वन्दना करते हैं। यथा—

मूल दो० गिरा अरथ जल बीचि सम, कहिअत भिन्न न भिन्न ।
बंदउं सीता राम पद, जिन्हहि परम प्रिय खिन्न ।१/१८॥

अर्थः—जी वाणी और उसके अर्थ, तथा जल और जल की लहर के समान कहने में अलग-अलग हैं, परन्तु वास्तव में अभिन्न (एक) है, उन सीता-रामजी के चरणों की मै वन्दना करता हूँ जिन्हें खिन्न बहुत प्यारे हैं ।१/१८॥

प्रश्नः हे स्वामिन् ? '**वाणी**' और '**अर्थ**' '**जल**' और '**जल की लहर**' भिन्न भिन्न हैं और भिन्न नहीं हैं, ऐसा कहने का क्या सिद्धांत है ?

उत्तर—हे सुव्रत ! इस दोहे मै श्री सीता राम जी के निर्गुण-निराकार में वाणी स्वरूप श्री सीताजी और अर्थ स्वरूप में श्री रामजी हैं, जो वाणी और अर्थ नाम से भिन्न हैं वास्तव में अभिन्न ही हैं। ऐसे ही सगुण-साकार में जल रूप में श्री रामजी और वीचि (लहर) रूप में श्री सीता जी,, जैसे जल और लहर नाम से भिन्न

और सिद्धांत में जल और लहर अभिन्न ही हैं, वैसे ही श्री सीता-रामजी नाम से भिन्न और सिद्धान्त से भिन्न नहीं हैं, अभिन्न ही हैं। श्रुति भी ऐसा ही कहती है। यथा—

श्रुति–सर्वाधार कार्यकारणमयी महालक्ष्मीर्देवेशस्य भिन्नाभिन्न रूपा ॥

(सीतोपनिषद् २)

श्रुत्यर्थ–सबकी आधार भूता, कार्य एवम् कारणरूपा महालक्ष्मी जी, देवताओं के भी स्वामी भगवान्(राम)से भिन्न एवम् अभिन्नरूपा जानी जाती हैं। जो श्री सीता-रामजी भिन्न एवम् अभिन्न हैं, इनके चरित्र रचितता तथा चरित्र का नाम करण-करने वाले भगवान् शङ्करजी ने समय पाकर यह चरित्र श्री उमा जी को सुनाया उसे कहते हैं। यथा—

मू.चौ.–रचि महेस निज मानस राखा। पाइ सुसमय सिवा सन भाषा।
तातें रामचरितमानस बर। धरेउ नाम हियँ हेरि हरषि हर॥३॥

श्रीशिवजी ने इसकी रचना कर अपने मन में रक्खा, और शुभ समय पाकर श्री पार्वती जी से वर्णन किया। इस कारण शिवजी ने हृदय में विचार कर और प्रसन्न होकर इसका नाम '**रामचरित मानस**' रक्खा।

श्री अध्यात्म रामायण ७।९।७०,७१ में कहा। यथा—
आख्यानमेतद्रघुनायकस्य, कृतं पुरा राघवचोदितेन।
महेश्वरेणाप्त भविष्यदर्थं, श्रुत्वा तु रामः परितोषमेति ॥
रामायणं काव्यमनन्त पुण्य श्री शङ्करेणाभिहितं भवान्यै।
भक्त्या पठेद्यः शृणुयात्स पापैर्विमुच्यते जन्म शतोद्भवैश्च ॥

अर्थ–श्री रघुनाथ जी की प्रेरणा से उनकी इस कथा को, जिसमें भविष्य चरित्रों का ही वर्णन किया गया है, पहले श्रीमहादेव जी ने रचा था। इसको सुन कर श्रीरामचन्द्र जी बड़े प्रसन्न होते हैं ॥७०॥ रामायण नामक यह अनन्त पुण्यप्रद काव्य श्री शङ्कर भगवान् ने पार्वती जी से कहा है, जो पुरुष इसे भक्ति पूर्वक पढ़ता अथवा सुनता है वह अपने सैकड़ों जन्मों के पाप-पुञ्ज से मुक्त हो जाता है ॥७१॥

प्रश्न– हे भगवन् ? '**तातें रामचरित मानस बर**' का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर–हे प्रिय दर्शन ! तात्पर्य है कि मानस रचकर मन में रक्खा था इससे यह '**बर**' श्रेष्ठ, उत्तम और सुन्दर है।

प्रश्न– प्रभो ? '**हेरि**' शब्द से क्या प्रदर्शित किया है ?

उत्तर–प्रिय वत्स ! '**हेरि**' शब्द बड़ा सार्थक है-हेरना-ढूंढने को कहते हैं, हृदय में हेरकर

अर्थात् वहुत विचार करने पर इससे और कोई नाम वढ़कर न मिला, तव प्रसन्न होकर इसका नाम '**राम चरित मानस**' रक्खा।

आगे जग प्रचारादिकी प्रतिज्ञा करते हैं। यथा—

सू.दो—जस मानस जेहि बिधि भयउ, जग प्रचार जेहि हेतु।
अब सोइ कहउँ प्रसङ्ग सब, सुमिरि उमा बृषकेतु ॥१।३५॥

यह रामचरित मानस जैसा है, जिस प्रकार वना है और जिस हेतु से जगत् में इसका प्रचार हुआ, अव वही सव कथा मैं श्रीउमा-महेश्वर का स्मरण करके कहता हूँ।१।३५

प्रश्न— श्री गुरुदेव ? '**जस मानस जेहि विधि भयउ**' कहने का क्या रहस्य है ?

उत्तर—हे सौम्य ! राम चरित वनने की विधि पृथक्-पृथक है, परन्तु रामचरित मानस के तो आदि आचार्य श्री शङ्कर भगवान् ही हैं; क्योंकि भगवान् शङ्कर वेद स्वरूप हैं यथा— "विभुं व्यापकं ब्रह्म वेद स्वरूपं।"७।१०८।१

अतः उन्होंने स्वयं रचा, भुशुण्डि जी को श्री शिवजी ने लोमश जी द्वारा दिया, याज्ञवल्क्य जी को भुशुण्डि जी से मिला और श्री गोस्वामी तुलसीदास जी को अपने श्री गुरुदेव जी से मिला।

प्रश्न— हे स्वामिन् ? यहां पर '**सुमिरि उमा बृषकेतु**' दोनों का साथ साथ स्मरण करने का क्या भाव है ?

उत्तर—हे सुव्रत ! वाराह पुराण में कहा है जैसे शब्द और अर्थ मिले हैं वैसे ही उमा-महेश्वर एक हैं- '**उमा**' पद शब्द ग्राही है और '**शिव**' पद अर्थ ग्राही है। यथा—

"शब्दजालमशेषं तु धत्ते शर्वस्य वल्लभा।
अर्थरूपं यदखिलम् धत्ते मुग्धेन्दु शेखरः॥

अर्थात् श्री पार्वती जी अशेष शब्द समूह को धारण करती हैं और सुन्दर वालेन्दु धारण करने वाले शिवजी सकल अर्थ को—यह मुख्य वक्ता-श्रोता हैं। अथवा—

श्री पार्वती जी से याचना करते हैं कि श्रोताओं पर कृपा करके उनकी कथा श्रवण में श्रद्धा और समझने की बुद्धि दें और शिवजी का स्मरण करके जनाते हैं कि आप मानस के आदि आचार्य हैं अतः आप मानस के कथन में तत्पर होकर मुझे पार लगावें और वक्ताओं में विश्वास दृढ़ कराके कथा करने तथा समझाने की बुद्धि दें।

श्री पार्वती जी को श्रद्धा रुपिणी और शिवजी को विश्वास रूप पहले कह आये हैं। अथवा—अभेद दृष्टि से शक्ति-शक्तिमान् का साथ हीं साथ स्मरण करते हैं, जिससे यथार्थ वर्णन करने की शक्ति हो। यथा—

दो० तुम्ह माया भगवान् सिव, सकल जगत पितु मातु।१/८१

उमा एवं शिवजी का स्मरण करके जगत् प्रचार का हेतु कहते हैं। यथा—

मूल चौ० जागबलिक मुनि परम बिबेकी। भरद्वाज राखे पद टेकी॥
सादर चरन सरोज पखारे। अति पुनीत आसन बैठारे।४।

श्री याज्ञवल्क्य जी मुनि बड़े ज्ञानी थे उनको भरद्वाजजी ने चरण पकडकर रख लिया। आदर पूर्वक प्रेम से चरण कमल धोकर बड़े ही पवित्र आसन पर बैठाया॥४॥

मूल चौ० करि पूजा मुनि सुजसु बखानी। बोले अति पुनीत मृदु बानी॥
रामनाम कर अमित प्रभावा। संत पुरान उपनिषद गावा।५

पूजा कर मुनि की बड़ीं प्रशंसा करके बड़ी पवित्र और कोमल वाणी से बोले। प्रभो ! रामनाम का बडा प्रभाव सन्तो, पुराणों और उपनिषदों ने गाया है॥५॥

प्रश्नः—हे भगवन् ! '**परम बिबेकी**' क्यों कर कहा और इस कहने का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—श्रुति - ॐ जनको ह वैदे हो बहुदक्षिणेन यज्ञेनेजे तत्र ह कुरुपञ्चालानां ब्राह्मणा अभिसमेता बभूवुस्तस्य ह जनकस्य वैदेहस्य विजिज्ञासा बभूव कः स्विदेषां ब्राह्मणा-नामनूचानतम इति स ह गवा सहस्रमवरुरोध दश दश पादा एकैकस्याः शृङ्गयोरा-बद्धा बभूवुः॥१॥

तान्होवाच ब्राह्मणा भगवन्तो यो वो ब्रह्मिष्ठः स एता गाउदजतामिति। ते ह ब्राह्मणान दधृपुरथ ह याज्ञवल्क्यः स्वमेव ब्रह्मचारिणमुवाचैताः सोम्योदज सामश्रवा३इति ता होदाचकार ते ह ब्राह्मणाश्चुक्रुधुः कथं नो ब्रह्मिष्ठो ब्रुवीतेत्यथ ह जनकस्य वैदहस्य होताऽश्वलो बभूव स हैनं पपृच्छ त्वं नु खलु नौ याज्ञवल्क्य ब्रह्मिष्ठोऽसी३इति स होवाच नमोवयं ब्रह्मिष्ठाय कुर्मो गो कामा एववय स्म इति त ह तत एव प्रष्टुं दध्रे होताऽश्वल॥२॥ (वृहद० उ० अध्याय ३ पूरी)

श्रुत्यर्थ–विदेह देश मैं रहने वाले राजा जनक ने एक बडी दक्षिणा वाले यज्ञ द्वारा यजन किया। उस में कुरु और पाञ्चाल देशों के ब्राह्मण एकत्रित हुए। उस राजा जनक को यह जानने की इच्छा हुई कि 'इन ब्राह्मणों में अनुवचन (प्रवचन) करने में सब

से बढ़कर कौन है ? इसलिए उसने एक सहस्त्र गौयें गोशाला में रोकली। उनमें से प्रत्येक के सींगों में दस-दस पाद सुवर्ण वँधे हुए थे ॥१॥ उसने उनसे कहा 'पूज्य ब्राह्मण गण ? आप में जो ब्रह्मनिष्ठ हो वह इन गौओं को ले जाये । किन्तु उन ब्राह्मणों का साहस न हुआ। तब याज्ञवल्क्य ने अपने ही ब्रह्मचारी से कहा, हे सोम्य सामश्रवा ? तू इन्हें ले जा. तब वह उन्हें ले चला। इससे वे ब्राह्मण 'यह हम सब में अपने को ब्रह्मनिष्ठ कैसे कहता है, इस प्रकार कहते हुए क्रुद्ध हो गये । विदेह राज जनक का 'होता' अश्वल था, उसने याज्ञवल्क्य से पूछा, याज्ञवल्क्य ? हम सब में क्या तुम ही ब्रह्मनिष्ठ हो ? उसने कहा ब्रह्मनिष्ठ को तो हम नमस्कार करते हैं, हम तो गौओं की ही इच्छा वाले हैं। 'इसी से' होता अश्वल ने उनसे प्रश्न करने का निश्चय किया ।।२।। फिर तो उससे अश्वल, आर्तभाग, लाह्यायनि, भुज्यु, चाक्रायण, कहोल, गार्गी, आरुणि उद्दालक, पुनः गार्गी और शाकल्य का शास्त्रार्थ हुआ उन सब ब्राह्मणों को याज्ञवल्क्य जी ने परास्त कर दिया इसलिए और ब्राह्मण विवेकी हैं और यह परम विवेकी हैं, यह आख्यायिकावृहदारण्य कोपनिषद् अध्याय ३/१/१ से ब्रा० ९/२८ तक आई हैं।

प्रश्नः—हे प्रभो ? '**अरहान्ज राखे पद टेकी**।' कहकर क्या प्रदर्शित किया है ?

उत्तर—हे प्रिय वत्स ! टेकना पंजावी मुहावरा है वह आपस में मत्था टेकू कहते हैं, अर्थात् चरणों पर सिर रखकर प्रणाम करना।

अथवाः—पद टेकी=चरण पकड़कर जर्थात् गुरु भाव से रोका।

प्रश्नः—श्रीगुरुदेव ? '**सादर चरन सरोज पखारे**' कहने का क्या रहस्य है ?

उत्तर—हे सौम्य ? पखारना=धोना, यथा—

चौ० जो प्रभुपार अवसि गा चहहू। मोहि पद पदुम पखारन कहहू ॥२/१००/१

प्रश्नः हे स्वामिन् ! '**करि पूजा**' कहने का क्या भाव हैं ?

उत्तर– हे सुव्रत ? पूजा के तीन भेद–पञ्चोपचार, दशोपचार और षोडशोपचार माने गये हैं। पञ्चोपचार में गंध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य ? इनसे अतिरिक्त पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान और वस्त्र निवेदन भी हो वह दशोपचार। और जिसमें आवाहन, आसन, उपवीत, तांबूल, प्रदक्षिणा और पुष्पाञ्जलि हो वह षोडशोपचार पूजा होती है। यहां '**सादर चरन सरोज पखारे**' से 'पाद्य' '**आसन बैठये**' से 'आसन' और '**मुनि सुजस बखानी**' से 'वन्दना

ये तीन उपचार प्रत्यक्ष कहे गए। **'करि पूजा'** पद देकर पूजा के शेष उपचार भी सूचित कर दिये गए।

प्रश्न– हे भगवन् ? **'मुनि सुजसु बखानी'** कहने का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर–हे प्रियदर्शन ! तात्पर्य है कि आपने अमुक-अमुक महात्माओं के भ्रम, संशय और मोह दूर किये। अमुक-अमुक को आपके द्वारा भक्ति और ज्ञान की प्राप्ति हुई, अनेक पापियों को संसार से पार किया, आपकी महिमा सर्व जगत् में विख्यात है। महाराजा जनक ऐसे ज्ञानयोगी भी आपको गुरु पाकर कृतार्थ हुए हैं। भक्ति, योग, ज्ञान, और विज्ञान के आप समुद्र हैं, सर्वज्ञ हैं ऐसी कीर्ति का वर्णन ही **'सुजसु बखानी'** से कहा।

प्रश्न– हे प्रभो ? **'बोले अति पुनीत मृदु बानी'** कहकर क्या प्रदर्शित किया है ?

उत्तर–हे प्रिय वत्स ! निश्छल और सरल वाणी पुनीत कही जाती है। यथा–

चौ०-प्रश्न उमा कै सहज सुहाई। छल बिहीन सुनि सिव मन भाई। ३।१११।३
एक बार प्रभु सुख आसीना। लछिमन बचन कहे छल हीना ॥३।१४।३
सुनत गरुड कै गिरा बिनीता। सरल सुप्रेम सुखद सुपुनीता ॥७।९४।३

अथवा जो बातें या प्रश्न दूसरे की परीक्षा लेने या अपनी चतुराई बखेरने बुद्धि आदि जतलाने के विचार से की जाती हैं वे पुनीत नहीं होती, भरद्वाज जी के बचन अति पुनीत हैं, क्योंकि उन के वचन पवित्र, सरल और निश्छल हृदय से निकले हुए हैं। पुनीत वचन कभी-कभी सुनने में कठोर होते हैं, अतः कहा कि इनके बचन कोमल हैं। अथवा–

धर्म सम्बन्धी बातें जैसे तप, जप, तीर्थ यात्रा, व्रतादि की बातें पुनीत हैं और भगवत्सम्वन्धी वाणी अति पुनीत है, इनकी वाणी भगवत् सम्वन्धी हैं इससे अति पुनीत हैं

प्रश्न– श्री गुरुदेव ? **'पुनीत'** और **'मृदु'** दो विशेषण देने का क्या रहस्य है ?

उत्तर– हे सौम्य ! दो विशेषण देकर भीतर और बाहर दोनों से पवित्र दिखाया। अर्थात् हृदय से **'पुनीत'** और वाहर सुनने में **'मृदु'**। श्रुति भी कहती है। यथा—

श्रुति— अथ हैनं भारद्वाजो याज्ञवल्क्यमुवाचाथ।

(श्रीरामोत्तर ता० उ० ३।९)

श्रुत्यर्थ—तदनन्तर उन प्रसिद्ध याज्ञवल्क्य जी से भारद्वाज ने पूछा, भगवन् राम-नाम का वड़ा प्रभाव, सन्त, पुराण, उपनिषदों ने गाया है।

प्रश्न– हे स्वामिन् ? राम नाम का प्रभाव गाने वालों में सन्त, पुराण और उपनिषद् के कहने

का और यह किस प्रकार का गायन करते हैं, उन में भी सन्तों को पहले कहने का क्या भाव है ?

उत्तर—हे सुव्रत ! यहाँ श्री राम नाम के प्रभाव गाने वालों में सन्त; पुराण और उपनिषद् तीन प्रमाण गिनाये। सन्त शास्त्र के वक्ता हैं, वे वेद, पुराण और शास्त्र तीनों को कहते हैं। तीनों में ही राम नाम का प्रभाव वर्णित है इसीलिये सन्तों को प्रथम कहा- जैसे श्रीअत्री जी अगस्त्य जी, नारद जी, पुलह जी, पुलस्त्य जी, वसिष्ठ जी और सनत्कुमार इत्यादि ने साक्षात्कार करके अपनी-अपनी संहिताओं में राम नाम का प्रभाव लिखा है। पद्मपुराण, लिङ्ग पुराण, महाभारत, श्रीमद्भागवत्, शिवपुराण, नन्दीपुराण इत्यादि पुराणों में श्री शिव जी नन्दीजी, ब्रह्मा जी और भगवान् विष्णु जी आदि ने विस्तार पूर्वक उदाहरणों सहित श्रीराम नाम के प्रभाव का वर्णन किया है। उपनिषद्, अध्यात्म विद्या अथवा ब्रह्म-विद्या को कहते हैं। वेद का अन्तिम भाग होने से इसे वेदान्त भी कहते हैं और वेदान्त सम्बन्धी श्रुति संग्रह-ग्रन्थो के लिये भी उपनिषच्छब्द का प्रयोग होता है। उपनिषदों के परिशीलन से संसार की कारण भूता अविद्या का नाश हो जाता है, गर्भवासादि दुःखों से सर्वथा छुटकारा मिल जाता है और परमानन्द की प्राप्ति हो जाती है श्रीरामपूर्वोत्तरतापिन्यु-पनिषद् में श्रीराम नाम का प्रभाव इस प्रकार बतलाया है। यथा—

श्रुति— राज्यार्हाणां महीभृताम्।
धर्ममार्गंचरित्रेण ज्ञानमार्गं च नामतः ॥४॥
तथा ध्यानेन वैराग्यमैश्वर्यं स्वस्य पूजनात्।
तथा रात्यस्य रामाख्या भुवि स्यात्‥ ··· ॥५॥

श्रुत्यर्थ—वे राज्य पाने के अधिकारी महिपालों को अपने आदर्श चरित्र के द्वारा धर्म मार्ग का उपदेश देते हैं, नामोच्चारण करने पर ज्ञान मार्ग की प्राप्ति कराते हैं, ध्यान करने पर वैराग्य देते हैं और अपने विग्रह की पूजा करने पर ऐश्वर्य प्रदान करते हैं; इसलिये इस भूतल पर उनका 'राम' नाम विख्यात है।

अथवा- श्रुति—सदा रामोऽहमस्मीति तत्त्वतः प्रवदन्ति ये।
न ते संसारिणोनून' राम एव न सशयः ॥
श्री राम रहस्य० उ० ५।१७ (श्री रामोत्तर ता० उ० ४।१

श्रुत्यर्थ—जो लोग सदा यथार्थ रूप से समझकर 'मैं राम हूँ' यों कहते है वे संसारी नही हैं निश्चय ही वे श्रीराम के स्वरूप हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है सम्बन्ध-भारद्वाज जी ने भगवान् शिवजी के इष्ट ब्रह्म 'राम' का रूप नहीं कहा, 'नाम' कहा, क्योंकि इन (भारद्वाज जी) के मत से ब्रह्म अवतार नहीं लेता, और सतीजी को भी दो बातों में ही संदेह था, एक तो अवतार लेने में दूसरे चरित्र में। यथा—

दो॰ ब्रह्म जो व्यापक बिरज अज, अकल अनीह अभेद।
सोकि देह धरि होइ नर, जाहि न जानत वेद ॥१/५०॥

तथा दो॰ जो नृप तनय त ब्रह्मकिमि, नारि बिरहं मति भोरि।
देखि चरित महिमां सुनत,, भ्रमति बुद्धि अति मोरि ॥१/१०१॥
अर्थात् इनको भी वहीं दोनों सन्देह हैं इसीलिये कहते हैं। यथा—

मूल चौ॰ एक राम अवधेस कुमारा। तिन्ह कर चरित बिदित संसारा॥
नारि बिरहँ दुखु लहेउ अपारा। भयउ रोष रन रावनु मारा॥६॥

मूल दो॰ प्रभु सोइ राम कि अपर कोउ, जाहि जपत त्रिपुरारि।
सत्य धाम सर्वग्य तुम्ह, कहहु बिबेकु बिचारि ॥१/४६॥

अर्थः—एक राम तो अवधेश (दशरथ जी) के पुत्र हैं, उनका चरित्र सारा संसार जानता है। स्त्री के वियोग में अपार दुःख सहा और जब क्रोध आया तो युद्ध में रावण को मार डाला ॥६॥

हे प्रभो ! सोई राम परमात्मा हैं या और कोई दूसरे हैं, जिनको श्री शिवजी जपते हैं। आप सत्य के धाम सर्वज्ञ हो, ज्ञान से विचार कर कहिये ॥१/४६॥

प्रश्नः—हे भगवन् ? '**एक राम अवधेस कुमारा**' कहने का क्या तात्पर्य हैं ?

उत्तर—हे प्रिय दर्शन ? भरद्वाज जी का तात्पर्य है कि शिवजी तो कदाचित् किसी अन्य निर्गुण ब्रह्मराम की उपासना करते हैं उन्हीं का नाम जपते हैं। और मैं जिस 'राम' को जानता हूँ वे तो अवध नरेश महाराजा दशरथ के बालक हैं यथा—श्रुति— '**जातो दशरथ**' (श्रीराम पू॰ ता॰ उ॰ १/१) अर्थात् रघुकुल में दशरथजी के यहाँ पैदा हुए। ये तो ब्रह्म नहीं हो सकते, क्योंकि इनमें दो बातें प्रत्यक्ष हैं—एक तो यह कि ब्रह्म अजन्मा हैं और इनका तो जन्म चक्रवर्त्ति के यहाँ हुआ। दूसरे ब्रह्म को योग-वियोग नहीं होता, वह 'सम' है तथा—

श्रुति अद्वितीय परमानन्द शुद्ध बुद्ध मुक्त सत्य स्वरूप व्यापक-
भिन्नापरिच्छिन्नं ब्रह्म। सच्चिदानन्द स्वप्रकाशं ब्रह्म।
मनोवाचामगोचरं ब्रह्म। (त्रिपाद्विभूति महानारायण॰ उ॰ १)

श्रुत्यर्थ–ब्रह्म अद्वितीय परमानन्द, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, सत्यस्वरूप, व्यापक भेद रहित एवं अपरिच्छिन्न हैं। ब्रह्म सच्चिदानन्द स्वरूप एवं स्वतः प्रकाश हैं। ब्रह्म मन, वाणी से अतीत हैं॥ इनमें तो ये लक्षण बनते नहीं, ये तो काम क्रोधादि युक्त हैं, तथा श्री—

मन-वाणी से परे हैं। इनका चरित्र तो सारा संसार जानता हैं।

अथवाः—अवधेश कुमार से यह भी कहतेहैं कि यह तो त्रेता में हुए—वैंवस्वत मनु की चौबीसवीं चतुर्युगी में। यथा—

चतुर्विंशे युगे चापि विश्वामित्र पुरस्सरः।
राज्ञो दशरथस्याथ पुत्रः पद्माय ते क्षणः॥ हरिवंश १/४१/१२१)

अर्थात—चौवीसवें त्रेता युग में भगवान् विष्णु राजा दशरथ के पुत्र कमल नयन श्रीराम के रूप में प्रकट हुए और कुछ काल तक विश्वामित्र के अनुयायी रहे। और शिवजी तो पहले से ही राम-राम जपते हैं।

प्रश्नः—हे प्रभो ! 'तिन्ह कर चरित विदित।' कह कर क्या प्रदर्शित किया है ?

उत्तर—हे प्रिय वत्स ? प्रदर्शित करते हैं कि ब्रह्म में अज्ञान होना न किसी ने सुना न देखा, इनका अज्ञान तो संसार भर में विख्यात हैं, क्योंकि यह किसी गरीब के पुत्र नहीं, यह तो चक्रवर्त्ति महाराजा दशरथ के पुत्र हैं, इनके तो काम-क्रोध को सभी जानते हैं।

प्रश्नः—श्री गुरुदेव ? 'नारि बिरहँ दुख लहेउ अपारा।' कहने का क्या भाव है ?

उत्तर—श्रुति तदा रावण आसुरः।
राम पत्नीं वनस्थाँ यः स्वनिवृत्त्यर्थं माददे॥२॥
स रावण इति ख्यातो यद्वा रावाच्च रावणः।
तव्द्याजेनेक्षितु सीताँ रामो लक्ष्मण एव च॥३॥
विचरेतुस्तदाभूमौ देवी संहश्य चासुरम्।
हत्वा कवन्धं शबरीं गत्वा तस्याज्ञया तथा॥४॥
पूजिता वीर पुत्रेण भक्ते न च कपीश्वरम्।
आहूय शंसताँ सर्वमाद्यन्तं राम लक्ष्मणौ॥५॥
(श्री राम पू० ता० उ० ५/२ से ५)

श्रुत्यर्थ—उस समय असुर रावण (मारीच के साथ) वन में आया, उन दिनों सीता जी वन में रहती थी। उसने अपने ही विनाश के लिए राम पत्नी सीताजी को हर लिया (उसने 'वन' से उनको हरण किया, इससे वह राक्षस रावण कहलाया) अथवा-दूसरों को रुलाने के कारण वह रावण कहलाता था) तदनन्तर श्रीरामजी, लक्ष्मणजी सीतादेवी का पता लगाने के व्याज से वन भूमि पर विचरने लगे। सामने कवन्ध नामक असुर को उपस्थित देख, दोनों भाइयों ने उसे मार डाला। और उस कवन्ध

के कथनानुसार वे दोनों शबरी के आश्रम पर गये। वहाँ शबरी ने उनका बड़ी भक्ति से स्वागत सत्कार किया। तत्पश्चात् आगे जाने पर उन्हें वायु पुत्र भक्त प्रवर हनुमान जी मिले, जिन्होंनें कपिराज सुग्रीव को बुलाकर उनके साथ दोनों भाइयों की मैत्री करायी। तत्पश्चात् दोनों भाईयों ने सुग्रीव से अपना सब हाल आदि से अन्त तक कह सुनाया। यहीं स्त्री के वियोग में अपार दुःख उठाया।

अथवा-'**नारि विरह**' से जनाया इन्द्रिय लोलुप, इसी से कामासक्त थे और कामासक्त होने से हीं विरह न सह सके और महान् दुःखी हुए।

प्रश्न– हे स्वामिन् ? '**अयउ रोष**' कहने का क्या भाव है ?

उत्तर–हे सुव्रत ! काम में विघ्न पड़ने से क्रोध उत्पन्न हो ही जाता है। यथा—

सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥ (गीता २।६२)

अतः रोष हुआ, अथवा-भाव है कि सन्मुख बरा-बर युद्ध हुआ, आप भी पिटे और बाँधे भी गये मेघनाद एक तुच्छ निशाचर ने इनको नाग पाश से बाँधा, तब इनका ईश्वर होना कैसे सम्मत है।

प्रश्न– हे भगवन् ? '**रन रावनु मारा**' कहने का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर- श्रुति—तदा रामः क्रोधरूपी तानाहूयाथ वानरान्।
तैः सार्धमादायास्त्रांश्च पुरीं लङ्कां समाययौ ॥४॥
तां दृष्ट्वा तदधीशेनसार्धं युद्धमकारयत्।
घटश्रोत्रसहस्राक्षजिद्भ्यां युक्तं तमाहवे ॥

(श्रीराम पू० ता० उ० ६।४ से ६)

श्रुत्यर्थ—तब भगवान् रामजी ने क्रोध का अभिनय किया, रावण के प्रति क्रोधयुक्त होकर उन वानरों को बुलाया और उनके साथ अस्त्र–शस्त्र लेकर लङ्कापुरी पर आक्रमण किया। लङ्का का भली-भाँति निरीक्षण करके भगवान् राम ने वहाँ के राजा रावण के साथ युद्ध छेड़ दिया। उस युद्ध में रावण के भाई कुम्भकर्ण तथा रावण के पुत्र इन्द्रजित के सहित रावण को मार डाला।

प्रश्न– हे प्रभो ? '**जासु जपत त्रिपुरारि**' कहकर क्या प्रदर्शित किया है ?

उत्तर–प्रिय वत्स ! प्रदर्शित किया है कि अति समर्थ सेवक के द्वारा स्वामी का ईश्वरत्व प्रकट होता है। यथा—

चौ०—हे दससीस मनुज रघुनायक। जाके हनूमान से पायक ॥६।६३।२

इसी से यहां त्रिपुरारि विशेषण दिया, अर्थात्-त्रिपुर को भस्म करने वाले और काम-क्रोध जिनके वशवर्ती हैं वह शङ्कर जी भला कामी-क्रोधी को क्यों भजने लगे, इससे कहा—

'अपार अगोह' अर्थात् शिवजी के इष्टदेव के चरित्र अज्ञानता के नहीं हो सकते; अतः उनके इष्ट तो कोई और ही होंगे।

प्रश्न– श्री गुरुदेव ? **'सत्य धाम सर्वज्ञ तुम्ह'** कह कर क्या रहस्य प्रकट किया है ?

उत्तर–हे सौम्य ! रहस्य प्रगट किया है कि आप जो कहते हैं सत्य ही कहते हैं, सभी उसको प्रमाण मानते हैं। वक्ता सत्यवादी ही होना चाहिए। सत्य क्या है यह आप जानते हैं, क्योंकि आप **'सर्वज्ञ'** हैं **'सत्य धाम'** हैं, श्री भरद्वाज जी ने (रामनाम कर अमित प्रभावा ।१।४६।१ से लेकर प्रभु सोइ राम' १।४६ तक अपना मोह प्रकट किया) इसी से कहते हैं कि ज्ञान से विचार कर कहिये–

चौ.–जैसे मिटै मोर भ्रम भारी। कहहु सो कथा नाथ बिस्तारी।
तात सुनहु सादर मन लाई। कहउँ राम कै कथा सुहाई ।।७।।

अर्थ—हे नाथ ! जैसे मेरा बड़ा भारी भ्रम मिट जाय, आप वही कथा विस्तार पूर्वक कहिये। श्री याज्ञवल्क्य जी बोले–हे तात ? तुम आदर पूर्वक मन लगाकर सुनो, मैं श्रीराम की सुन्दर कथा का वर्णन करता हूँ ।।७।।

प्रश्न्– हे स्वामिन् ? **'मोरे मिटै'** कहने का क्या भाव है ?

उत्तर–हे सुव्रत ! भाव है कि जिस प्रकार से मेरा मोह (अज्ञान) मिटै, क्योंकि कथा तो वही है पर कहने-कहने का ढंग होता है सो इस प्रकार कहिए जिस से मेरा मोह (अज्ञान) मिट जाय **'भारी'** अर्थात् प्रथम संशय को बड़ा कह चुके हैं– नाथ एक संसउ बड़ मोरें ।१।४५।४ में इसी से मोह और भ्रम को भी भारी कहा। वहाँ बड़ा और यहाँ भारी कहने से तीनों एक समान बराबर पाए गए।

प्रश्न– हे भगवन् ? **'कहहु सो कथा नाथ बिस्तारी'** कहने का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—हे प्रिय दर्शन ? तात्पर्य है कि पूर्व भरद्वाज जी ने उनको **'सत्य धाम सर्वज्ञ तुम्ह, कहहु बिबेक बिचार'** कहा; इससे ऐसा समझ कर कि हमें पूर्वोत्तर मीमांसावान् कहा, जिससे वे यह न कहें कि यज्ञ करो, शमदम आदि करो, इनके करने से तुम्हारा मन ठीक व निर्मल हो जायगा, भ्रम मिट जायगा, अतः कहते हैं कि कथा से ही सन्देह मिटाओ। इसी लिये श्री याज्ञवल्क्य जी ने भी श्री रामचरित ही कहा। **'बिस्तारी'** का तात्पर्य है कि संशय, मोह और भ्रम भारी हैं, अतएव विस्तार से अच्छी प्रकार बढ़ाकर-समझाकर कहिये, जिससे तीनों (संशय, मोह, और भ्रम) की निवृत्ति हो जाय।

प्रश्नः—हे प्रभो ? श्रीराम चरित मानस का आविर्भाव किस प्रकार हुआ ?

उत्तर—प्रिय वत्स ? यही बात ग्रन्थकार यहाँ बता रहे हैं कि भरद्वाज जी के प्रश्नों से ही मानस का आविर्भाव हुआ 'कैसे मिटै मोर भ्रम भारी ।' इस प्रश्न के उत्तर में 'तात सुनहु सादर मनुलाई ।
कहउँ राम कै कथा सुहाई ।। १/४७/२

प्रश्नः—श्रीगुरुदेव ? सादर मनुलाई' कहने का क्या रहस्य है ?

उत्तर—हे सौम्य ? यहाँ पर गूढ़ विषय समझने की विधि बताई । इसके लिए दो बातें आवश्यक हैं, एक तो सादर अर्थात् आदर के साथ सुनना, दूसरे मन-बुद्धि और चित्त लगाकर सुनना । इनमें से एक की भी कमी होगी तो विषय समझ में न आवेगा । क्योंकि यह गूढ़ रहस्य है, यथा—

दो० कथा राम कै गूढ़ ।१।३० (ख) सो० उमा राम गुन गूढ, ३।—
चित्त तनिक भी हठा कि प्रसङ्ग समझ में न आएगा, प्रेम से मन-बुद्धि और चित्त को एकाग्र करके सुने जिससे एक भी शब्द व्यर्थ न जाय ।

प्रश्नः—हे स्वामिन् ? 'कहउँ राम कै कथा सुहाई ।' कहने का क्या भाव है ?

उत्तर—हे सुव्रत ? भाव है कि तुमने जो कहा कि वह कथा कहो जिससे मोहादि मिटें, सो वह कथा तो श्रीराम कथा ही है । इसी से मोहादि मिटेगें । यह कहकर याज्ञवल्क्य जी ने कथा का माहात्म्य कहा, उसी को कहते हैं यथा—

मूल दो० कहउँ सोमति अनुहारि अब, उमा संभु संवाद ।
भयउ समय जेहि हेतु जेहि, सुनु मुनि मिटिहि विषाद १/४७

अर्थ—अब मै अपनीं बुद्धि के अनुसार वहीं उमा और शिवजी का सम्वाद कहता हूँ । वह जिस समय और जिस हेतु हुआ उसे हे मुनि ? तुम सुनो, तुम्हारा विषाद मिट जायेगा । १/४७ ।

(यहाँ से उमा-महेश्वर सम्वाद आरम्भ होता है—)

प्रश्नः—हे भगवन् ! 'कहउँ सोमति अनुहारि अब' कहने का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—है प्रिय वत्स ? यह प्रतिज्ञा है, याज्ञवल्क्य जी की 'उमा संभु संवाद ?' (श्री पार्वती जी का संशय और महादेव जीं का विस्तार से रामचरित कथन और सम्वाद का हेतु) कहेंगे ।

प्रश्न:—हे प्रभो ? '**उमा संभु संवाद**' कहने का क्या अभिप्राय है ?

उत्तर—हे प्रिय दर्शन ! याज्ञवल्क्य जी का उमा-संभु संवाद कहने का अभिप्राय है कि भारद्वाज जी का विश्वास श्री महादेव जी के इष्ट पर है जैसा उनके बचन से स्पष्ट है यथा—

दो० प्रभु सोइ रामकि अपरकोउ, जाहि जपत त्रिपुरारि।१/४६॥

इसी से वे (याज्ञवल्क्य जी) शिवजी का ही कहा हुआ कहकर उनको बोध कराते हैं। जिसका जिसमें विश्वास हो उसी की बात कहकर जिज्ञासु का सन्देह दूर करना यह वक्तां की चतुरता का द्योतक हैं।

प्रश्न—श्री गुरुदेव ? '**भयउ समय जेहि हेतु जेहि**' कहने का क्या भाव हैं ?

उत्तर—हे सौम्य ? यहां सम्वाद का समय, सम्वाद का कारण और सम्वाद तीनों के कहने की प्रतिज्ञा है। '**एक बार त्रेता जुग माहीं**।' यह समय है। श्री पार्वती जी के प्रश्न। यथा—

चौ० कथा जो सकल लोक हितकारी। सोइ पूछन चह सैल कुमारी॥

१/१०७/३ से तुम्ह त्रिभुवन गुर वेद बखाना। १/१११/३ तक-यह कारण और सम्वाद सों वही आरम्भ किया जाता है। यथा—

मूल दो० प्रभु समरथ सर्वग्य सिव, सकल कला गुन धाम।
जोग ग्यान वैराग्य निधि, प्रनत कलपतरु नाम॥१/१०७॥

हे प्रभो ? आप समर्थ, सर्वज्ञ और कल्याण स्वरूप हैं सर्व कलाओं और गुणों के धाम हैं, और यौग, ज्ञान तथा वैराग्य के भण्डार हैं, आपका नाम शरणागतों के लिए कल्पवृक्ष हैं॥१/१०७॥ श्रुतियाँ भी कहती है। यथा—

श्रुति चिज्जडानां तु यो द्रष्टा सोऽच्युतो ज्ञान विग्रहः।
स एव हि महादेवः स एव हि महाहरिः॥ (स्कन्दोपनिषत् ४)

श्रुत्यर्थ-जो चैतन्य और जड़ों का द्रष्टा-(देखने वाला) वही ज्ञान मूर्ति, अच्युत है; वही महाविष्णु और वही महादेव है।

प्रश्न:—हे स्वामिन् ! इस दोहें के विशेषणों का क्या भाव है ?

उत्तर हे सुव्रत ! '**प्रभु**' कहने का भाव है कि ब्रह्माण्ड में जो जीव वसे हुए हैं (ईश्वरः सर्व भूतानाम्-श्रुतिः) उनके नाथ (प्रभु) कहती हैं। '**समरथ**' का भाव हैं-आप

कथा कहने तथा भ्रम दूर करने को (ईशानः-श्रुतिः) समर्थ हैं क्योंकि **'सर्वज्ञ'** (सर्वं विद्यानामीश्वरः-श्रुति) है, **'सिव'** का भाव कल्याण स्वरूप (शिवो में अस्तु-श्रुति) महा ना० उ० १७/५।। **'सकलकला गुन धाम'** अर्थात् सकल कलाओं सहित विद्या का आप में निवास है (अचिन्त्यशक्ति-भँगवान्गिरीशः श्रुति शरभ०उ०२०) अथवा-उत्पत्ति, पालन और संहार करने वाले (स्वात्रिच्छया कल्पितमान भूमि) श्रुति-शरभ०उ०२०।, तथा शापाशीर्वादादि देने को समर्थ जनाया। **'प्रणत'** को श्रुति ऐसे कहती है (वसिष्ठ वैयासकिवामदेवविरञ्चि मुहर्व्यहृ दि भव्यमानः। सतत्सुजातादि-सनातनाद्यै रीड्यो महेशो भगवानादि देवः।) श्रुति शरभ० उ० १९।।

अथवा-जो आपका पाद सेवन एवं भक्तिभाव से नाम जपते हैं, वे चारों पदार्थ (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) प्राप्त कर लेते हैं।

अथवा-आप शरणागतों के लिये कल्पवृक्ष हैं। इसीलिये कहती है। यथा-

मू.चौ.--जासु भवनु सुरतरु तर होई। सहि कि दरिद्र जनित दुखु सोई।।
ससिभूषन अस हृदय बिचारी। हरहु नाथ मम मति भ्रम भारी ८

जिसका घर कल्पवृक्ष के नीचे हो, वह भला दरिद्रता से उत्पन्न दुःख को क्यों सहेगा? हे शशि भूषण! हे नाथ! हृदय में ऐसा विचार कर मेरी बुद्धि के भारी भ्रम को दूर कीजिये ।।८।।

प्रश्न- हे भगवन्! **'जासु भवनु सुर तरु तर होई'** कहने का क्या तात्पर्य है?

उत्तर-हे प्रिय दर्शन! माता उमा कहती हैं, एक बार ही आपके पास आने से अज्ञान दूर हो जाता है। और मैं तो रात-दिन आपके पास ही रहती हूं (यही सुरतरु के तले भवन का होना है) दरिद्र से पैदा दुःख निवारण के लिये ही कहती हैं, हे शशि भूषण, यथा—धृतबालेन्दुमौलिनम्। श्रुति (योगतत्त्वोप० उ० ६९) अर्थात् धारण किया है शुक्ल द्वितीया का चन्द्रमा शिर पर आपने। आप मेरे मोहरूपी ताप को हर लीजिये।

प्रश्न- हे प्रभो? **'सुरतरु'** और **'शशिभूषण'** दो विशेषणों का अभिप्राय क्या है?

उत्तर-हे प्रिय वत्स! कहती हैं—आप कल्पवृक्ष हैं, चन्द्र भूषण हैं, अपने गुणों को विचार कर मेरा भ्रम दूर कीजिए; मेरे अवगुणों की ओर न देखिए। भ्रम निवृत्ति अधिष्ठान के ज्ञान से ही सम्भव है, अधिष्ठान के बिना जाने भ्रम निवृत्ति नहीं होता इसी लिये श्री पार्वती जी अधिष्ठान के सम्बन्ध में आगे कहती हैं।

मू० चौ०—प्रभु जे मुनि परमारथ बादी । कहहिं राम कहुँ ब्रह्म अनादी ॥
सेस सारदा बेद पुराना । सकल करहिं रघुपति गुन गाना ॥६॥

हे प्रभो ! जो मुनि मोक्ष मार्ग का कथन करने वाले हैं वे श्री रामचन्द्र जी को अनादि ब्रह्म कथन करते हैं और शेष जी, सरस्वती जी, वेद, पुराण सब श्री रघुनाथ जी का गुण गाते हैं ॥६॥

प्रश्न—श्री गुरुदेव ? '**जे मुनि परमारथ बादी**' कहने का क्या रहस्य है ?

उत्तर—हे सौम्य ! '**जे**' अर्थात् सब मुनि नहीं, केवल वही जो परमार्थ तत्त्व के ज्ञाता और वक्ता हैं वही श्री रामचन्द्र जी को अनादि ब्रह्म कहते हैं । यथा—

वदन्ति रामं परमेकमाद्यं निरस्तमायागुणसप्रवाहम् ।
भजन्ति चाहर्निशमप्रमत्ताः परं पदं यान्ति तथैव सिद्धाः ॥
(अध्यात्म रामायण १।१।१२)

अर्थात्—प्रमाद रहित सिद्धगण श्रीरामचन्द्र जी को परम, अद्वितीय, सबका आदि कारण और प्रकृति के गुण-प्रवाह से परे बताते हैं तथा वे अहर्निश उनका भजन करके परम पद भी प्राप्त करते हैं । श्रुति भी कहती है । यथा—

श्रुति—अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं तदेव ॥
(कठ० उ० १।३।१५ पैंगल० उ० ३।४—योगकुण्डल्य० उ० ३।३५)

श्रुत्यर्थ—अनादि, अनन्त (असीम) महतः (मह तत्त्व) से श्रेष्ठ एवम् सर्वथा सत्य तत्त्व हैं, वह श्रीराम चन्द्र जी ।

प्रश्न—हे स्वामिन् ? किन्हीं परमार्थवादी मुनियों को बतलाइये, जो श्री रामचन्द्र जी को अनादि ब्रह्म कहते हों ?

उत्तर—हे प्रिय वत्स ! श्री वाल्मीक जी कहते हैं । यथा—

सो०—रामस्वरूप तुम्हार, बचन अगोचर बुद्धि पर ।
अबिगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कहें ।२।१२६॥

हे राम ! आपका स्वरूप वाणी के अगोचर, बुद्धि से परे, अव्यक्त, अकथनीय और अपार है । वेद निरन्तर उसका 'नेति-नेति' कहकर वर्णन करते हैं ।

श्री अत्रि जी विविक्त वासिनः सदा । भजंति मुक्तये मुदा ।
निरस्य इंद्रियादिकं । प्रयांति ते गतिं स्वकम् ॥८॥
तमेकमद्भुतं प्रभुं । निरीहमीश्वरं विभुं ।
जगद् गुरुं च शाश्वतं । तुरीयमेव केवलम् ॥३।४।८,९॥

अर्थात्-जो एकान्तवासी पुरुष मुक्ति की आशा से, इन्द्रियादि का निग्रह करके (उन्हें विषयों से हटाकर) प्रसन्नता पूर्वक आपको भजते हैं वे स्वकीय गति को (अपने स्व-स्वरूप को प्राप्त होते हैं ॥ उन (आप) को जो एक (अद्वितीय) अद्भुत (मायिक जगत् से विलक्षण), इच्छा-रहित, ईश्वर (सबके स्वामी), व्यापक, जगद्गुरु, सनातन (नित्य) तुरीय (तीनों गुणों से सर्वथा परे) और केवल (अपने स्वरूप में स्थित) हैं। ऐसा मानते हैं।

श्री अगस्त जी, यथा—

चौ०—जद्यपि ब्रह्म अखंड अनंता । अनुभव गम्य भजहिं जेहि संता ॥३।१३।६
अस तव रूप बखानउँ जानउँ। फिर फिर सगुन ब्रह्म रति मानउँ ।३।१३।७

यद्यपि आप अखण्ड और अनन्त ब्रह्म हैं, जो अनुभव से ही जानने में आते हैं, और जिनका सन्त जन भजन करते हैं ॥ यद्यपि मै आपके ऐसे स्वरूप को जानता हूँ, तो भी लौट लौट कर मै सगुण ब्रह्म में (आपके इस सुन्दर रामस्वरूप में) ही प्रेम मानता हूँ।

प्रश्नः—हे भगवन् ? मुनि, शेष, शारदा, वेद और पुराण गान करते हैं इसका क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—हे प्रिय दर्शन ! मुनि, शेष और शारदा से मर्त्य, पाताल और स्वर्ग इन तीनों लोकों के प्रधान–प्रधान वक्ताओं को बता दिया। वेद और पुराण तीनों लोकों के वक्ता हैं। इसका ऐसा तात्पर्य है।

प्रश्नः—हे प्रभो ! '**सकल करहिं रघुपति गुन गाना ॥**' इसका क्या अभिप्राय है ?

उत्तर—हे प्रिय वत्स ? इसका अभिप्राय है कि जिनको वेदादि ब्रह्म कह कर गाते हैं वह रघुपति ये ही हैं या कोई और दूसरे रघुपति हैं।

प्रश्नः—श्रीं गुरुदेव ? रघुपति कहा राम क्यों नहीं कहा ?

उत्तर—हे सौम्य ? राम कहने से राम, परशुराम, बलराम और शालिग्राम आदि में अति व्याप्ति हो जाती अतः रघुपति कहा। और कहती हैं। यथा—

मूल चौ० तुम्ह पुनि रामराम दिन राती। सादर जपहु अनंग आराती ॥
राम सो अवधनृपति सुत सोई। की अज अगुन अलखगति कोई ॥१०

हे कामदेव के शत्रु प्रिय प्रीतम ? आप भी दिन-रात आदर पूर्वक राम-राम जपते हैं। ये राम महाराजा दशरथ के पुत्र हैं ? या अजन्मा, निर्गुण और जिसकी गति लखी नहीं जाती क्या वे कोई दूसरे राम है ?

प्रश्नः - हे स्वामिन् ! '**तुम्ह पुनि**' कहने का क्या रहस्य है ?

उत्तर—हे सौम्य ? इसका रहस्य है कि वे श्रीराम को अनादि ब्रह्म भले ही माने और कहें तथा उनका गुन गान करें तो भले ही करें, इसमें मुझे आश्चर्य नहीं, परन्तु आप तो प्रभु, समर्थ, नवंज्ञ, सकल कला गुणधाम, योग, ज्ञान, वैराग्य, निधि हैं तथा अनङ्ग आराती हैं अर्थात् कामना रहित पूर्ण काम हैं, इत्यादि विशेषणों और गुणों से युक्त होने पर भी आप राम-राम जपते हैं, इससे मुझे भारी सन्देह है कि आप किस राम को भजते हैं। '**दिन-राती**' अर्थात् निरन्तर जपते हैं-तेल धारावत् । इस पर भी '**सादर जपहु**' अर्थात् श्रीसीता जी के वियोग समय श्रीराम को अति शोंकातुर देखकर भी आपकी श्रद्धा में किञ्चित् मात्र भी न्यूनता न आई ।

अथवा—और लोग सकाम जपते हैं और आप निष्काम जपते हैं । और उस पर भी आदर पूर्वक जपते हैं ।

प्रश्नः—हे भगवन् ? '**रामसो**' कहने का क्या भाव है ?

उत्तर—हे प्रिय दर्शन ? '**रामसो**' आश्चर्य से कहती हैं कि '**राम**' अवधपति दशरथ नन्दन हैं या अजन्मा, निर्गुण और अगोचर कोई दूसरे 'राम' हैं ।

प्रश्नः—हे प्रभो ! '**अज**' कहने का क्या अभिप्राय है ?

उत्तर—हे प्रिय वत्स ? '**अज**' कहने का अभिप्राय हैं कि ब्रह्म तो जन्म नहीं लेता वह तो अजन्मा हैं, और ये तो राजपुत्र हैं । '**अगुन**' ब्रह्म तो मायिक गुणो से परे हैं, उन्हें कोई गुण छू नही पाते । ये तो रजो गुण वश सकाम होने से स्त्री में आसक्त, स्त्री वियोग होने से तमोगुण वश विलाप करते देखे गये । यथा—

चौ० आश्रम देखि जानकी हीना । भए विकल जस प्राकृत दीना ॥
हा गुन खानि जानकी सीता । रूप सील ब्रत नेक पुनीता ॥३/३०/३,३

इत्यादि '**अलख गति**' का अभिप्राय है कि ब्रह्म की तो गति कोई जान नहीं सकता, इनकी गति तो प्रत्यक्ष ही सबको दीख रही हैं,

'**देखा प्रगट बिरह दुखु ताके ॥१।४९।४**' और श्रुति ब्रह्म को इस प्रकार कहती है । यथा—

श्रुति नित्यः सर्वगतो ह्यात्मा कूटस्थो दोष वर्जितः (जावाल दर्शन० उ० १०/२

श्रुत्यर्थ—आत्मा ब्रह्म नित्य, सर्वव्यापी, कूटस्थ एक रस एवं सब प्रकार के दोषों से रहित है । हे प्राणनाथ—

मूल दो० जो नृप तनय त ब्रह्म किमि, नारि बिरहँ मति भोरि ।
देखि चरित महिमा सुनत, भ्रमति बुद्धि अति मोरि ॥१/१०८

यदि ये राजपुत्र हैं तो ब्रह्म कैसे ? (और यदि ब्रह्म है तो) स्त्री के विरह में उनकी मति बावली कैसे हो गयी ? इधर उनके ऐसे चरित्र देखकर और उधर उनकी महिमा सुनकर मेरी बुद्धि अत्यन्त भ्रम में पड़ गई। यथा—

यदि स्म जानाति कुतो विलापः सीता कृते ऽनेनकृतः परेण।
जानाति नैवं यदि केन सेव्यः समोहि सर्वैरपि जीव जातैः॥
अत्रोत्तरं किं विदितं भवद्भिस्तद् ब्रूत मे संशयभेदि वाक्यम्।
(अध्यात्म रामायण १/१/१४, १५)

अतः मैं पूछता हूँ कि यदि वे आत्मतत्त्व को जानते थे, तो उन परमात्मा ने सीता के लिए इतना विलाप क्यों किया ? और उन्हें आत्मज्ञान नहीं था, तो वे अन्य सामान्य जीवों के समान ही हुये, फिर उनका भजन क्यों किया जाय ? इस विषय में आपका क्या विचार है सो ऐसे वाक्यों में कहिये जिससे मेरा सन्देह निवृत्ति हो जाय।

प्रश्न– श्री गुरुदेव ? '**देखि चरित महिमा सुनत**' कहने का क्य रहस्य है।

उत्तर–हे सौम्य ! उनके चरित्र 'हा गुन खानि जानकी सीता।' ३।३०।४ से मनहु महा बिरही अति कामी ॥३।३०।८–जो ऐसे पागल हो रहे थे भला उनका गुण गान शेषादि कैसे गावेंगे। '**महिमा सुनत**' राम महिमा कुम्भज ऋषि तथा आपसे मुनी जिनकी ऐसी महिमा है, जिसको श्रुति यों गाती है। यथा—

श्रुति–ॐएतावानस्य महिमाततो ज्यायाँश्च पूरुषः।
पादोऽस्यसर्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवीति॥
(छा० उ० ३।१२।६)

श्रुत्यर्थ—यह भूत, भविष्य, वर्तमान से संबद्ध समस्त जगत् इन परम पुरुष का वैभव है। वे अपने इस विभूति विस्तार से महान् हैं। उनकी शेषत्रिपाद्विभूति में शाश्वत दिव्य लोक (वैकुण्ठ, गोलोक, साकेत, शिवलोक, आदि) हैं, महिमा ऐसी और चरित्र ऐसे देखकर मेरी बुद्धि निश्चय नहीं कर पाती कि दाशरथि राम—ब्रह्म ही हैं।

मू.चौ.-जौं अनीह व्यापक बिभु कोऊ। कहहु बुझाइ नाथ मोहि सोऊ॥
अग्य जानि रिस उर जनि धरहू। जेहि बिधि मोह मिटै सोइ करहू ११

यदि इच्छा रहित व्यापक, सर्व समर्थ ब्रह्म कोई और है, तो हे नाथ मुझे उसे समझा कर कहिये। मुझे अज्ञानी समझ कर मन में क्रोध न लाइये। जिस प्रकार मेरा मोह (अज्ञान) दूर हो, वही कीजिये ॥११॥

अथवा-उपनिषदों में विशेष रूप से निर्गुण, निर्विशेष का वर्णन आता है वह भी मैंने सुना है। यथा —

श्रुति——यत्तद्द्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुः श्रोत्रं तदपाणिपादम्।
नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं यद्भूतयोनिं परिपश्यन्तिधीराः॥
[मुण्डक० उ० १।१।६–रुद्रहृदय०उ० ३२–पाशुपत०उ० २६]

श्रुत्यर्थ—वह परब्रह्म परमात्मा देखने में नहीं आते, ग्रहण नहीं किये जाते, नाम, रूप और गोत्रादि से रहित, चक्षु और श्रोत्रादि ज्ञानेन्द्रियों से और हाथ-पैरादि कर्मेन्द्रियों से रहित हैं, विषयातीत हैं, वह नित्य, विभु और सर्वगत हैं, तथा वे अत्यन्त सूक्ष्म और वह कभी विकार को प्राप्त नहीं होते, समस्त प्राणियों के परम कारण को ज्ञानी जन सर्वत्र परिपूर्ण देखते हैं। ये ब्रह्म कोई और हैं तो हे नाथ ! मुझे वह भी समझा कर कहिये।

प्रश्न– हे स्वामिन् ? '**अग्य जानि रिस उर जनि धरहू**।' कहने का क्या रहस्य है ?

उत्तर–हे सुव्रत ! इस वचन से ज्ञात होता है कि–'**जो अनीह व्यापक बिभु कोऊ**।' इतना कहते ही शिवजी की चेष्टा बदल गई, क्रोध मुद्रा देखते ही पार्वती जी जान गई कि मुझ से कोई चूक हो गई, अब तो सारा गुड़-गोबर हो गया, इसलिये तुरन्त ही '**अग्य जानि रिस उर जनि धरहू**' कह कर प्रार्थना करने लगीं।

सू.दो.–बंदउँ पद धरि धरनि सिरु, बिनय करउँ कर जोरि।
बरनहु रघुबर बिसद जसु, श्रुति सिद्धान्त निचोरि॥१।१०९॥

मैं पृथ्वी पर सिर टेक कर आपके चरणों की वन्दना करती हूं, और हाथ जोड कर विनती करती हूं कि आप श्रुति अर्थात् उपनिषद् और उसका सिद्धान्त 'ॐ' का निचोड श्री रामचन्द्र जी का उज्वल यश वर्णन कीजिये।

नमोऽस्तुते देव जगन्निवास सर्वात्महक् त्वं परमेश्वरोऽसि।
पृच्छामि तत्त्वं पुरुषोत्तमस्य सनातनं त्वं च सनातनोऽसि॥
(अध्यात्म रामायण १।१।७)

(श्री पार्वती जी बोलीं) हे देव ! हे जगन्निवास ! आपको नमस्कार है, आप सबके अन्तःकरणों के साक्षी और परमेश्वर हैं मैं आप से श्री पुरुषोत्तम-भगवान् श्री राम का सनातन-तत्त्व पूछना चाहती हूं, क्योंकि आप भी सनातन हैं। यथा—

श्रुति—यत्सर्वं तद्गुह्यम्। तस्मै नमोमहादेवाय महा रुद्राय०॥
(पञ्च ब्रह्म० उ० १)

उपनिषदों में श्री राम जी को अपना वास्तविक स्वरूप कहा है जिसके जान लेने से मोह निवृति होकर मुक्ति होती है, उसी को श्री पार्वती जी इस वाक्य से पूछती हैं। यथा—

'बरनहु रघुबर बिसद जसु, श्रुति सिद्धान्त निचोरि।' और कहती हैं—

मू.चौ.- जदपि जोषिता नहिं अधिकारी। दासी मन क्रम बचन तुम्हारी॥
गूढ़उ तत्त्व न साधु दुरावहिं। आरत अधिकारी जहं पावहिं॥१२॥

यद्यपि स्त्री होने के कारण मैं अधिकारिणी नहीं हूँ तो भी मैं मन, वचन और कर्म से आपकी दासी हूं। साधु पुरुष जहां आरत-अधिकारी पाते हैं वहां गूढ तत्त्व को भी नहीं छिपाते। १२।

गोप्यं यदत्यन्तमनन्यवाच्यंः वदन्ति भक्तेषु महानुभावाः।
तदप्यहोऽहं तव देव भक्ता, प्रियोऽसि मे त्वं वद यत्तु पृष्टम्॥
ज्ञानं सविज्ञानमथानु भक्ति वैराग्ययुक्तं च मितं विभास्वत्।
जानाम्यहं योषिदपित्वदुक्तं यथा तथा ब्रूहि तरन्ति येन॥
(अध्यात्म रामायण १।१।८,९)

महानुभाव लोग जो अत्यन्त गोपनीय विषय होता है तथा अन्य किसी से कहने योग्य नहीं होता उसे भी अपने भक्त जनों से कह देते हैं। हे देव! मैं भी आपकी भक्तिनी हूं, मुझे आप अत्यन्त प्रिय हैं। इसलिये मैंने जो कुछ पूछा है वह वर्णन कीजिये॥ जिस ज्ञान के द्वारा मनुष्य संसार-समुद्र से पार हो जाते हैं, उस भक्ति और वैराग्य से परिपूर्ण प्रकाशमय आत्मज्ञान का वर्णन आप विज्ञान सहित इस प्रकार स्वल्प शब्दों में कीजिये जिससे मैं स्त्री होने पर भी आपके वचनों को (सहज ही) समझ सकूं॥८,९॥

प्रश्न– हे भगवन्? **'जदपि जोषिता नहिं अधिकारी।'** कह कर क्या प्रदर्शित किया है?

उत्तर–हे प्रिय दर्शन! दोहे में श्रुति सिद्धान्त कहने की प्रार्थना है, स्त्री को श्रुति सुनने क अधिकार नहीं है। यथा–

स्त्रीशूद्रद्विजबन्धुनां त्रयी न श्रुति गोचरा। (श्री मद्भागवत् १।४।२५।

अर्थात् स्त्री, शूद्र, द्विज बन्धू (जो तीनों द्विज वर्णों में अधम हो अर्थात् ब्राह्मण क्षत्री और वैश्य तीन वर्णों में पैदा होकर इनके कर्म सन्ध्या-बन्दनादि न करे उसको द्विज बन्धु कहते हैं) इनको वेद का अधिकार नहीं है। अथवा

श्रुति—वेदान्ते परमं गुह्यं पुरा कल्पे प्रचोदितम् ।
नाप्रशान्ताय दातव्यं नापुत्रायाशिष्याय वा पुनः ।।
(श्वेताश्वतर० उ० ६।२२)

श्रुत्यर्थ—उपनिषदों में परम गुह्य इस विद्या का पूर्व कल्प में उपदेश किया गया था। जिसका चित्त अत्यन्त शान्त न हो उस पुरुष को, तथा जो पुत्र या शिष्य न हो उसको नहीं देना चाहिये ।।

प्रश्न—हे प्रभो ? '**गूढ़ तत्त्व**' की परिभाषा क्या है ?

उत्तर—हे प्रिय वत्स ! गूढ = गहन, अथवा जो वेदों में श्री राम तत्त्व गुप्त है जो अनुभव गम्य है। 'तत्त्व' = ब्रह्म-आत्मा एक है जिसे जानकर मनुष्य जन्म-मृत्यु का उल्लङ्घन करके मुक्त हो जाता है, जिसे श्रुति इस प्रकार कहती है। यथा—

श्रुति परंब्रह्म परं सत्यं सच्चिदानन्द लक्षणम् ।
अप्रमेयमनिर्देश्यमवाङ्मनस गोचरम् ।।१६।।
शुद्धं सूक्ष्मं निराकारं निर्विकारं निरञ्जनम् ।
अनन्तमपरिच्छेद्यमनूपममनामयम् ।।१७।।
येन विज्ञान मात्रेण जन्म बन्धात्प्रमुच्यते ।
(योगशिख० उ० २।१६,१७—३।१)

श्रुत्यर्थ—परमब्रह्म, परमसत्य, सत्-चित्-आनन्द लक्षण वाले, बुद्धि से न जाने जा सकें, जिसका निर्देश न हो सके अर्थात् किसी प्रकार न कहे जा सकें, मन, वाणी के अविषय, शुद्ध, सूक्ष्म; निराकार, निर्विकार, निरञ्जन, अनन्त, अपरिच्छेद्य—देश, काल, वस्तु के परिच्छेद से रहित, उपमा रहित, रोग रहित, जिसके जानने मात्र से (जीव) जन्म-मरण बन्धन से छूट जाता है।

हे भूतभावन ! मैं आर्त-अधिकारिणी हूँ मेरे लिये परम रहस्य गूढतत्त्व को कहिये।

सम्बन्ध—अपर्णा की छल रहित वाणी सुन कर त्रिपुरारि परम प्रश्न हुए। क्योंकि इसी मिस से उन्हें प्रभु के गुणानुवाद गाने का एक सुअवसर प्राप्त हो गया। श्री प्रभु के स्वरूप का स्मरण होते ही श्री गङ्गाधर के नेत्र बन्द हो गये, हृदय में प्रेम प्रवाह उमड़ने लगा और और निजानन्द में मग्न हो गये। यथा—

**सू.दो.—मगन ध्यानरस दंड जुग, पुनि मन बाहेर कीन्ह ।
रघुपति चरित महेस तब, हरषित बरनै लीन्ह ।।१।१११।।**

श्री शिवजी दो घड़ी (एक मुहूर्त = ४८ मिनट) ध्यन के रस-अन्त-मुखीवृत्ति (निर्विकल्प समाधि) में मग्न रहे; फिर मन को बाहर किया और तब वे प्रसन्न होकर श्री रघुनाथ जी का चरित्र वर्णन करने लगे।

श्रुति भी कहती है यथा—

श्रुति—विचार्य सर्व वेदेषु मतं ज्ञात्वा पिनाकिनः ।
पार्वत्या कथितं तत्त्वम्० ॥ (हंसोपनिषद् २)

अर्थात् पिनाकधारी, भक्त भयहारी, कल्याणकारी, त्रिपुरारी भगवान् भूतभावन श्री शिवजी ने विचार करके सर्व वेदों का मत जानकर श्री गिरिराजनन्दिनीउमा जी से तत्त्व कथन किया—

मू.चौ.—झूठेउ सत्य जाहि बिनु जानें । जिमि भुजंग बिनु रजु पहिचानें ॥
जेहि जानें जग जाइ हेराई । जागे जथा सपन भ्रम जाई ॥१३॥

'जिसके बिना जाने झूठा संसार भी सत्य जान पड़ता है, जैसे बिना पहिचाने रस्सी में साँप का भ्रम हो जाता है; और जिसके जान लेने पर जगत् का उसी तरह लोप हो जाता है जैसे जागने पर स्वप्न का भ्रम जाता रहता है ॥१३॥

प्रश्न— श्री गुरुदेव ? '**झूठेउ सत्य जाहि बिनु जानें**' कहने का क्या रहस्य है ?

उत्तर— हे सौम्य ! कामारि, त्रिपुरारि श्री शंकर जी कहते हैं, तुम श्री रामरूप के न जानने से हीं उनको राजपुत्र मानती हो, श्री रामरूप का बोध होते ही राम मनुष्य हैं यह भ्रम जाता रहेगा । यथा—

श्रुति—यथा रज्जुं परित्यज्य सर्पं गृह्णाति वै भ्रमात् ॥२६॥
तद्वत्सत्यमविज्ञाय जगत्पश्यति मूढधी ।
रज्जुखण्डे परिज्ञाते सर्परूपं न तिष्ठति ॥२७॥
अधिष्ठाने तथा ज्ञाते प्रपञ्चे शून्यतां गते ।
(नादविन्दूपनिषद् २६ से २८)

श्रुत्यर्थ—जिस प्रकार भ्रम से मनुष्य रज्जु बुद्धि का त्याग करके उसे सर्प बुद्धि से ग्रहण करता है, उसी प्रकार अज्ञानी पुरुष सत्य (आत्मा) का ज्ञान न होने के कारण प्रपञ्च (जगत्) को देखता है । जब सामने रस्सी के टुकड़े को अच्छी तरह पहचान लेने पर जैसे उसमें प्रतीत होने वाला सर्परूप नहीं रह जाता, उसी प्रकार अधिष्ठान स्वरूप आत्मा (राम) का ज्ञान होने पर प्रपञ्च (जगत्) भी शून्यता को प्राप्त हो जाता है ।

अथवा श्रुति—सत्यवद्भाति तत्सर्वं रज्जुसर्पवदास्थितम् ।
तदेतदक्षरं सत्यं तद्विज्ञाय विमुच्यते ॥३४॥
ज्ञानेनैव हि संसारविनाशो नैव कर्मणा ।
(रुद्र हृदय० उ० ३४-३५)

अर्थ—जो जगत् सत्य की तरह प्रतीत होता है, वह सब ब्रह्म में उसी प्रकार स्थित है, जैसे रस्सी में सर्प। वही अविनाशी ब्रह्मराम सत्य हैं, जो इनको जानता है वह मुक्त हो जाता है। ज्ञान से ही संसार बन्धन का नाश होता है कर्म से नहीं। हे प्रिय उमे! जो अज्ञान से भासता है और ज्ञान से जिसका बाध हो जाता है, वह मिथ्या ही है। इसी से कहा कि जिनके जान लेने से जगत् ऐसे मिथ्या प्रतीत होने लगता है जैसे जागने से स्वप्न का भ्रम। तदनन्तर—

मू.चौ. करि प्रनाम रामहि त्रिपुरारी। हरषि सुधा समगिरा उचारी॥
धन्य धन्य गिरिराज कुमारी। तुम्ह समान नहिं कोउ उपकारी॥१४

त्रिपुरारि, कामरि, भक्तभय हारी श्री शिवजी श्री रामचन्द्र जी को प्रणाम करके आनन्द में भरके, अमृत के समान वाणी बोले, हे गिरिराज कुमारी उमे! तुम धन्य हो धन्य हो! तुम्हारे समान कोई उपकारी नहीं है॥१४॥

प्रश्न– हे स्वामिन्? '**करि प्रनाम रामहि**' कहने का क्या भाव है?

उत्तर–हे सुव्रत! भाव है कि—

त्वयाद्य भवत्या परिनोदितोऽहंवक्ष्ये नमस्कृत्यरघूत्तमं ते।
रामः परात्मा प्रकृतेरनादिरानन्द एकः पुरुषोत्तमो हि॥
(अध्यात्म रामायण १।१।१७)

'हे शिवे! आज तुमने मुझ से भक्ति पूर्वक प्रश्न किया है इसलिये मैं श्री रघुनाथ जी को प्रणाम करके तुम्हारे प्रश्न का उत्तर देता हूँ। श्री राम जी निःसन्देह प्रकृति से परे परमात्मा, अनादि, आनन्दघन, अद्वितीय और पुरुषोत्तम हैं॥

अथवा श्रुति—ततो रामो मानवो माययाध्यात्।
'जगत्प्राणात्मने ऽस्मै नमः। (श्रीराम पू० ता० उ० २।४)

अतः श्रीराम जी ने माया (लीला) से ही अपने को मानव माना। जगत् के प्राण एवम् आत्मरूप इन भगवान् श्रीराम जी को नमस्कार है।

प्रश्न– हे भगवन्? '**हरषि सुधा सम गिरा उचारि**' कहने का क्या तात्पर्य है?

उत्तर–हे प्रिय दर्शन! तात्पर्य है कि सुधासम अर्थात् मधुर है। तथा जन्म-मरण छुडाने वाली है। अथवा समुद्र से निकली सुधा पांच भौतिक-शरीर को युगान्त या कल्पान्त तक के लिये अमर बना देती हैं। परन्तु श्रीराम कथामृत तो जीव को मुक्त कर देता हैं, जिससे वह फिर जन्म-मरण को प्राप्त नहीं होता, यथार्थ अमर होना यही है। यथा—
'न च पुनरावर्तते 'न च पुनरावर्तते। श्रुति (छां० उ० ८।१५।१)

अथवा- अमृत पाँच स्थानों में बताया जाता है।

यथा— अब्धौ विधौ वधुमुखे फणिनां निवासे—
स्वर्गे सुधा वसति वै विबुधा वदन्ति।
क्षारं क्षयं मृतपतिर्विषेन्द्रनाशनं—
कण्ठे सुधा वसति वै भगवज्जनानाम् ॥ (शास्त्र)

अर्थात्-एक अमृत समुद्र में, दूसरा चन्द्रमा में, तीसरा स्त्रियों के ओष्ठों में (अधरामृत) चौथा पाताल में, पंचम स्वर्ग में ऐसा विद्वान कहते हैं। यदि समुद्र में सत्य-अमृत होता तो वह क्षार (खारी) न होता, यदि चन्द्रमा में सच्चामृत होता तो वह क्षयी रोग वाला न होता, यदि स्त्रियों के ओष्ठों (अधरों) में सत्य अमृत होता तो उसके पान करने वाला पति मृत्यु को प्राप्त न होता, यदि पाताल में सच्चामृत होता तो सर्प विषधर नहीं होते, यदि स्वर्ग में सच्चामृत होता तो इन्द्र को दुःख व उसका नाश नहीं होता। इसलिये यह सब बनावटी अमृत हैं, सच्चामृत तो श्री भगवत् जन ज्ञानी महात्माओं के महावाक्य रूपी वचनों में ही है, इस अमृत को पीकर पुरुष कृतकृत्य व अमर हो जाता है; वह फिर जन्म-मरण में नहीं आता ॥

प्रश्न—हे प्रभो ; '**धन्य धन्य गिरिराज कुमारी। तुम्ह समान नहिं कोउ उपकारी॥**' कह कर क्या प्रदर्शित किया?

उत्तर—हे प्रिय वत्स ! प्रदर्शित किया है कि तुम धन्य हो, गिरिराज धन्य हैं, जिनकी तुम पुत्री हो।

अथवा —धन्यासि भक्तासि परात्मनस्त्वं, यज्ज्ञातुमिच्छा तव रामतत्त्वम्।
पुरा न केनाप्यभिचोदितोऽहं, वक्तुं रहस्यं परमं निगूढ़म् ॥
(अध्यात्म रामायण १।१।१६)

हे उमा देवि ! तुम धन्य हो, तुम परमात्मा राम की परम भक्त हो, जो तुमने राम का तत्त्व जानने की इच्छा प्रकट की, अतएव तुम धन्य हो। प्रशंसा करने योग्य हो। इससे पूर्व, इस परम गूढ़ रहस्य का वर्णन करने के लिये मुझ से और किसी ने नहीं कहा। इसलिये धन्य-२ कहा। उमा को धन्यवाद देकर हर्ष युक्त वाणीबोले। यथा—

मू.चौ.—तदपि जथा श्रुत जसिमति मोरी। कहिहउँ देखि प्रीति अति तोरी॥
उमाप्रस्न तव सहज सुहाई। सुखद संत संमत मोहि भाई॥१५॥

तो भी तुम्हारी अत्यन्त प्रीति देखकर जैसा कुछ मैंने सुना है। अथवा जैसा श्रुति कहती हैं। (ऐसी श्री शिवजी की प्रतिज्ञा है कि मेरा रचा रामचरित मानस, आपके प्रश्न—दो० वरनहु रघुवर विसद जसु, श्रुति सिद्धांत निचोरि ॥१।१०६॥ के अनुकूल ही है

इसका अर्थ श्रुति प्रमाण से ही सिद्ध होता है क्योंकि यह 'अद्वैतवाद' है, बुद्धि कल्पित खींचातानी से नहीं) और जैसी मेरी बुद्धि में उसके रहस्य का अनुभव होता है, वह तुम्हारा प्रेम देखकर कहूंगा। अये प्यारी ! तुम्हारा यह प्रश्न स्वाभाविक ही सुन्दर, सुखदायक और सन्त सम्मत है, और मुझे तो बहुत ही अच्छा लगा है ॥१५॥

प्रश्न– श्रीगुरुदेव ! '**तदपि कथा श्रुति**' कहने का क्या रहस्य है ?

उत्तर–हे सौम्य ! यह वाक्य अभिमान शून्य है, मैं श्रुति अनुकूल कहूँगा, मनघडंत नहीं।

प्रश्न– हे स्वामिन् ? '**उमा प्रस्न तव सहज सुहाई।**' कहने का क्या भाव है ?

उत्तर–हे सुव्रत ! श्री शिवजी ने कहा–हे प्रिय उमे ! तेरे प्रश्न सहज सुन्दर हैं, क्योंकि श्री राम तत्त्व विषयक हैं इसी से सभी को सुख देने वाले हैं।

प्रश्न– हे भगवन् ! '**सुखद संत संमत मोहि भाई**' कहने का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर–हे प्रिय दर्शन ! सन्तो को श्रीभगवान् कथा ही सुखदाता होती है, प्रपञ्चकथा नहीं। '**मोहि भाई**' अर्थात् प्रभु विषयक प्रश्न तो सदा ही परमकल्याणकारी हैं, भक्त भय हारी हैं, सन्तसुखकारी हैं, संकट निवारी हैं, परन्तु—

मू.चौ.–एक बात नहिं मोहि सोहानी। जदपि मोह बस कहेहु भवानी॥
तुम्ह जो कहा राम कोउ आना। जेहि श्रुति गाव धरहि मुनि ध्याना।१६

हे पार्वती ! एक बात मुझे अच्छी नहीं लगी, यद्यपि प्रिये वह तुमने मोह (अज्ञान) वश कही है। तुमने जो यह कहा है कि वे राम कोई और हैं जिन्हें वेद गाते और मुनिजन जिनका ध्यान धरते हैं ॥१६॥

प्रश्न– हे प्रभो ? '**जदपि मोह बस कहेहु भवानी**॥' यह कह कर क्या प्रदर्शित किया है।

उत्तर– हे प्रिय वत्स ! प्रदर्शित किया है कि यह बात पक्ष-पात करके नहीं कही गई, अज्ञान वश कही गई है तब भी वह हमें अच्छी नहीं लगी। मोह का स्वरूप श्रुति ऐसा वर्णन करती है। यथा—

श्रुति—यः स्वरूपपरिभ्रंषश्चेत्यार्थे चिति मज्जनम्।
एतस्मादपरो मोहो न भूतो न भविष्यति॥ (मह० उ०५।४)

श्रुत्यर्थ—स्वरूपच्युत होकर वासनार्थ जो चित् में डूबना है, उससे बढ़कर कोई दूसरा मोह न हुआ और न होगा, यह मोह का स्वरूप है।

भवानी तुम तो भव पत्नी हो, हम से सम्बन्ध रखने वाले को—

'राम कोउ आना' ऐसा नहीं कहना चाहिए।

प्रश्न— हे स्वामिन् ? ऐसा कहने में क्या हानि है ?

उत्तर— हे प्रिये ! श्रुति ऐसा कहने में (आत्माराम और हैं ब्रह्म कोई और है, ऐसे भेद कर्ता को) हानि बताती है। यथा—

श्रुति-अविकल्पो ह्ययमात्माऽद्वितीयत्वादविकल्पो ह्ययमोंकारोऽद्वितीयत्वादेव चिन्मयो ह्ययमोंकारस्तस्मात्परमेश्वर एवैकमेव तद्भवत्यविकल्पोनाविकल्पोऽपिनात्र काचन भिदाऽस्ति नैवात्र काचन भिदाऽस्त्यत्र भिदामिव मन्यमानः शतधा सहस्रधा भिन्नो मृत्योर्मृत्युमाप्नोति तदेतद् द्वयं स्वप्रकाशं महानन्दमात्मैवैतद-मृतमभयमेतद् ब्रह्माभयं वै ब्रह्माभयं हि वै ब्रह्म भवति य एवं वेदेतिरहस्यम्।

(नृसिंहोत्तर ता० उ० ८)

श्रुत्यर्थ—अवश्य ही यह आत्मा अविकल्प (निर्विशेष) है; क्योंकि इसके सिवाय दूसरी कोई वस्तु नहीं है। निश्चय ही यह ॐ कार भी अविकल्प हैं। क्योकि वह भी अद्वितीय ही हैं। अवश्य हीं यह ॐ कार चिन्मय है। इसलिए परमेश्वर रूप ही हे। इस प्रकार वे दोनों एक मात्र ब्रह्म (राम) ही हैं; क्योंकि वह ब्रह्मराम विकल्प से शून्य है। वास्तव में परमात्मा अविकल्प भी नहीं हैं; क्योंकि उसमें कोई भेद नही है। भेद की सत्ता होने पर ही सविकल्प और अविकल्प आदि भेद हो सकते हैं। इस परमात्मा में कोई भी भेद उपलब्ध नहीं होता। इसमें जो भेद सा मानता हैं, वह सैंकड़ों और सहस्त्रों प्रकार से भेद को प्राप्त होकर सहस्त्रों भिन्न-भिन्न योनियों में जन्म लेकर मृत्यु से मृत्यु को प्राप्त होता रहता हैं। इसलिए यह अद्वितीय, स्वयं प्रकाश और महानन्द मय तत्त्व आत्मा (राम) ही है। यह ब्रह्म (राम) अमृत स्वरूप हैं, यह ब्रह्म सर्वथा भय से रहित है। ऐसी प्रसिद्धि है कि ब्रह्म भय शून्य ही है, जो इस प्रकार जानता हैं, वह भय शून्य ब्रह्म (राम) ही हो जाता है। ऐसा इस प्रकरण का गूढ रहस्य हैं।

अथवा—यस्तु भेदं प्रकुरुते स्वात्मनश्च परस्य च।
भिन्नदृष्टेर्भयं मृत्युस्तस्य कुर्यान्नसंशयः॥

(अध्यात्म रामायण ७।७।७७)

अर्थात्-जो आपने आत्मा और परमात्मा (आत्मा राम और परमात्म ब्रह्म) में भेदबुद्धि करता है, उस भेददर्शी को मृत्यु अवस्य भय उत्पन्न करती है अर्थात् वह जन्मता और मरता ही रहता है, इसमें सन्देह नहीं। यही हानि है।

अथवा – ऐसा सन्देह तो वेदार्थ का ठीक ज्ञान न रखने वाले ही करते हैं। यथा–

मूल दो०–कहहिं सुनहिं अस अधम नर, ग्रसे जे मोह पिसाच।
पाषंडी हरि पद बिमुख, जानहिं झूठ न सांच ॥१।११४

अये प्यारी शिवे ! ऐसा तो नीच पुरुष ही कहते हैं, जिनको अज्ञान रूप भूत चिपटा होता है, वे पाखण्डी (मायावी) भगवान् के चरणों अथवा पद (वाक्यों) से विमुख और जो झूठ-सत्य कुछ भी नहीं जानते ॥१।११४॥

प्रश्न– श्री गुरुदेव ! '**कहहिं सुनहिं अस अधम नर**' कहने का क्य तात्पर्य है ?

उत्तर–हे सौम्य ! देवेश्वर, भूतेश्वर भगवान् श्री शिवजी ने कहा, हे शिवे ! '**अस**' (ब्रह्म और है राम और है) ऐसा तो अधम=अधर्मी अर्थात् कर्मकाण्ड रहित, '**ग्रसे जे मोह पिसाच।**' अर्थात् मोह=अज्ञान ने जिन्हें ग्रस लिया है अर्थात् अज्ञानी (ज्ञान काण्ड रहित) '**हरि पद बिमुख**' अर्थात् हरि पद (विराट्, हिरण्यगर्भ, ईश्वर और ब्रह्म) से पराङ्मुख (अर्थात् उपासना काण्ड) रहित, अर्थात् वेद त्रयी (कर्म, ज्ञान उपासना) से रहित बताया और काण्ड त्रय रहित होने से इनकी मुक्ति कदापि नहीं हो सकती, क्योंकि '**पाखण्डी**' हैं।

प्रश्न– हे स्वामिन् ! '**पाखण्डी**' किसे कहते हैं ?

उत्तर–हे सुव्रत ! '**पाखण्ड**' दो०—जिमि पाखण्ड वाद ते गुप्त होहिं सद्ग्रन्थ ॥४।१४॥ अर्थात्=दुष्ट तर्क आदि द्वारा विपरीत मत का प्रतिपादन करना, जैसे कुछ कहते हैं कि राम को ब्रह्म कहना वेद विरुद्ध है, राम ब्रह्म नहीं, एक राजा है, हाँ महापुरुष कह सकते हैं, अथवा-जैसे श्रीरामजी अद्वैत ब्रह्म हैं, उनके चरित्र भी अद्वैत हैं, परन्तु भेदवादी अनेक प्रकार की दुष्ट दलीलें देकर कहते हैं कि यह राम चरित-मानस' अद्वैत वाद नहीं है। ऐसों के लिए ही श्री शिवजी कहते हैं कि इनकी मुक्ति नहीं होती।

प्रश्न– हे भगवन् ! '**जानहिं झूठ न सांच**' कहने का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर–हे प्रिय दर्शन ! यह संसार झूठा है, इसे ही जानते हैं, जो ब्रह्म राम सत्य है उन्हें नहीं जानते। अथवा श्री राघवेन्द्र सरकार के जाने बिना जिनको झूठ भी सत्य जान पड़ता है। अथवा जो झूठ या सत्य कुछ नहीं जानते ऐसे अधम मनुष्य ही इस तरह कहते-सुनते हैं कि वह आत्मा राम अन्य हैं। यथा—

श्रुति –अथ योऽन्यां देवतामुपास्तेऽन्योऽसावन्योऽहमस्मीति
न स वेद यथा पशुरेव्ँ स देवानाम् ॥ (बृ० उ० १।४।१०)

श्रुत्यर्थ– जो अन्य देवता की 'यह अन्य है और मैं अन्य हूं' इस प्रकार उपासना करता है, वह नहीं जानता। जैसे पशु होता है वैसे ही वह देवताओं का पशु है इस प्रकार उन द्वैतदर्शी अधम पुरुषों की श्रुति निन्दा करती है।

मू.चौ.–अग्य अकोविद अंध अभागी। काई बिषय मुकुर मन लागी।
लंपट कपटी कुटिल बिसेषी। सपनेहुं संत सभा नहिं देखी॥१७॥

जो अज्ञानी, शास्त्र से अन्धे, अभागे जिनके मनरूपी दर्पण में विषयरूपी काई लग रही है। वे कामी, ठग, कपटी और बड़े खोटे हैं। क्योंकि उन मूर्खों ने महात्माओं की सभा स्वप्न में भी नहीं देखी॥१७॥

प्रश्न– हे प्रभो? **'अग्य अकोविद अन्ध अभागी'** कहने का क्या अभिप्राय है?

उत्तर–हे प्रिय वत्स! **'अग्य'** से ज्ञान नेत्र हीन जनाया है जो श्रीराम अपनी आत्मा हैं जो सदा प्राप्त है, उसे तलाश (खोज) करने के लिये बाहर भटकते हैं वे अन्धे हैं। **'अकोविद'** शास्त्र जन्य ज्ञान से रहित। अथवा 'श्रुति-स्मृति नेत्र रहित, अथवा-**'अज्ञ अकोविद'** से भीतर (हृदय) के नेत्रों से हीन कहा और **'अन्ध'** से बाहर के नेत्रों से रहित जनाया (जिनको भीतर और बाहर की दोनों ही फूटी) क्योंकि सगुण-साकार ब्रह्म बाहर के नेत्रों से देख पड़ता है और निर्गुण-निराकार ब्रह्म का भीतर के नेत्रों से साक्षात्कार होता है अथवा-ज्ञान विराग नयन उरगारी॥७।१२०।७॥ इन से रहित।

प्रश्न– श्री गुरुदेव! **'लम्पट कपटी कुटिल'** कहने का क्या रहस्य है?

उत्तर–हे सौम्य! **'लम्पट'** = कामी-परस्त्री गामी, व्यभिचारी हैं, इसी से उनके मन में **'कपट'** रहता है अतः **'कपटी'** कहा, **'कुटिल'** = टेढ़ी-चाल चलने वाले।

प्रश्न– हे स्वामिन्! **सपनेहु सन्त सभा नहीं देखी॥'** कहने का क्या भाव है?

उत्तर–हे सुव्रत! स्वप्न का भाव है कि सन्त सभा का दर्शन बड़े भाग्य से होता है। यथा–चौ०–बड़े भाग्य पाइव सत संगा॥७।३३।४॥ जब बड़े भाग्य उदय हों तभी दर्शन होता है, सामान्य भाग्य से भी नहीं, इसका न तो बड़ा भाग्य हैं और न सामान्य ही ये तो **'अभागे'** हैं। इसी से इन्हें स्वप्न में भी सन्त सभा के दर्शन नहीं हुए। इसी से मलिन बुद्धि बने रहे। और–

मू.चौ.–कहहि ते बेद असंमत बानी। जिन्ह कें सूझ लाभु नहिं हानी।
मुकुर मलिन अरु नयन बिहीना। रामरूप देखहि किमि दीना॥१८

अर्थ—वेद विरुद्ध वचन कहते हैं जिन्हें अपना लाभ-हानि नहीं सूझता। उनका मन रूपी दर्पण मैला है और नेत्र रहित हैं वे दीन श्रीरामरूप कैसे देखें ॥१८॥

प्रश्न– हे भगवन्! **'कहहि ते वेद असंगत बानी।'** कहने का क्या तात्पर्य है?

उत्तर–हे प्रिय दर्शन! श्री हनुमान् स्तुति–मुक्तिक० उ० १।४-५।

श्रुति– राम त्वं परमात्मासि सच्चिदानन्द विग्रहः।
इदानीं त्वां रघु श्रेष्ठ ? प्रणमामि मुहुर्मुहुः॥

श्रुत्यर्थ–श्री राम जी ? आप परमात्मा हैं, सत्-चित्-आनन्द स्वरूप परब्रह्म के अवतार हैं, रघुवर ? इस अवसर पर मैं आपको बारम्बार प्रणाम करता हूँ॥ श्रुति राम और ब्रह्म को एक बताती है, और उनकी वाणी सन्त और श्रुति दोनों से विरुद्ध है, इससे कहा कि तुम्हारी यह बात **'राम कोउ आना'** सन्त–श्रुति असम्मत है।

प्रश्न– हे प्रभो ? **'जिन्ह के सूझ लाभु नहि हानी॥'** कह कर क्या प्रदर्शित किया है?

उत्तर–हे प्रिय वत्स! लाभ-हानि के लिये श्रुति इस प्रकार कहती है। यथा–

श्रुति—इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः॥

(केनोपनिषद् २।५)

भावार्थ–जब तक यह अति दुर्लभ मानव शरीर विद्यमान है, भगवत् कृपा से प्राप्त साधन सामग्री उपलब्ध है, तभी तक शीघ्र से शीघ्र परमात्मा (राम) को जान लिया तो सब प्रकार से कुशल है। मानव जन्म की परम सार्थकता है, यही लाभ है। यदि यह अवसर हाथ से निकल गया तो फिर महान् विनाश हो जायेगा; बार-२ मृत्यु-रूप संसार के प्रवाह में बहना पड़ेगा। फिर रो-रो कर पश्चाताप करने के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं रह जायगा। यही बड़ी हानि है. यह मूर्खों को नहीं दीखती या नहीं देखते। ऐसा ही 'कठोपनिषत् २।३।४ श्रुति में कहा। न सूझने का कारण है– **'मुकुर मलिन अरु नयन विहीना।'** अर्थात् मन रूपी दर्पण मैला है— श्री भगवान् रामजी तो निर्मल मन में देख पड़ते हैं। यथा—

चौ०–निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा।५।४४।३

ये तो लम्पट, कपटी, कुटिल हैं और ज्ञान वैराग्य रूपी नेत्रों से हीन हैं, तब वह विचारे राम का शुद्ध स्वरूप या माया सबल स्वरूप दोनों रूपो में से कोई सा रूप नहीं देख पाते, क्योंकि दीन है कृपण हैं, अथवा दर्पण स्थानीय गुरु हैं, जो तत्त्व वेत्ता नहीं, वेद शास्त्र का बोध नहीं ताते 'मलिन' हैं, और शिष्य जिज्ञासु जो हैं वह ज्ञान वैराग्य रहित नेत्र हीन है ताते दोनों अन्धे हैं। फिर श्रीराम रूप कैसे देखे विचारे दीन हैं। अज्ञानी अन्धे हैं।

श्रुति—स्वशरीरे स्वयंज्योतिः स्वरूपं सर्वं साक्षिणम् ।
क्षीण दोषाः प्रपश्यन्ति नेतरे माययावृताः ॥ (रुद्र हृदय० उ० ४६)

श्रुत्यर्थ—अपने अन्तःकरण में स्वयं ज्योतिः स्वरूप सर्व साक्षी परमात्मा राम-को वे ही पुरुष देखते हैं, जिनके दोष क्षीण हो गये हैं मन निर्मल हो गया है; जो माया से आवृत हैं- मलिन मन हैं वे इतर पुरुष नहीं देख पाते। इसीलिये श्रुति कहती है। यथा—

दूषणं ज्ञान हीनानां भूषणं ज्ञान चक्षुषाम् ।। (वज्र सूचिकोपनिषद्)

मू. चौ.—जिन्ह के अगुन न सगुन बिबेका। जल्पहिं कल्पित बचन अनेका ॥
हरि माया बस जगत भ्रमाहीं। तिन्ह कहत कछु अघटित नाहीं। १६

अर्थ—जिनको निर्गुण-सगुण का कुछ भी विवेक नहीं है, वे अनेक मनघडंत बातें बका करते हैं। जो श्री हरि (आत्मा) की माया के वश होकर जगत् में (जन्म-मृत्यु के चक्र में) भ्रमते फिरते हैं उनके लिये कुछ भी कह डालना असम्भव नहीं है ॥१६॥

प्रश्न— श्री गुरुदेव ? 'जिन्ह के अगुन न सगुन बिबेका ॥' कहने का क्या रहस्य है ?

उत्तर—हे सौम्य ! अगुन-सगुन का विवेक यह है कि जब वह तत्त्व अव्यक्त रहता है, तब अगुण-निर्गुण कहलाता है और जब प्रत्यक्ष दिखाई देता है तब वही तत्त्व सगुण कहा जाता है, दोनों में वास्तविक भेद नहीं है, इसे वे नहीं जानते हैं। यथा— चौ०- एक दारुगत देखिअ एकू। पावक सम जुग ब्रह्म बिबेकू ॥१।२३।२ अर्थात् 'निर्गुण' काष्ठ में अव्यक्त (अप्रकट) अग्नि के समान है, और 'सगुण' प्रत्यक्ष व्यक्त अग्नि के समान है, इसका ज्ञान उनको नहीं है। इसलिये वे **जल्पहिं कल्पित बचन अनेका ॥'** अर्थात् मनघडंत-डींग मारते रहते हैं क्योंकि '**हरि माया बस जगत् भ्रमाहीं।'** अर्थात् अविद्या के वश है अथवा—

श्रुति सर्वपरिपूर्णो नारायणस्त्वनयानिजया क्रीडति स्वच्छया सदा ।
तद्वदविद्यमानफल्गुविषयसुखाशयाः सर्वेजीवाः प्रधानवत्यासार-
संसारचक्रे। एवमनादिपरम्परा वर्ततेऽनादि संसारविपरीत भ्रमा-
दित्युपनिषत् ॥ (त्रिपाद्विभूतमहानारा० उ० ४)

श्रुत्यर्थ— सर्वतः परिपूर्ण श्री नारायण तो अपनी इस इच्छा शक्ति से सदा लीला किया करते हैं। इस प्रकार सब जीव अज्ञान (अविद्या) वश उन तुच्छ विषयों में जिनमें सुख नहीं है, सुख की प्राप्ति की आशा से असार-संसार चक्र में दौड़ते रहते हैं। इस प्रकार अनादि संसार वासना रूप विपरीत भ्रम के कारण ही जीवों की संसार चक्र में घूमने की अनादि परम्परा चलती रहती है। इसी से कहा कि '**तिन्हहि कहत**

कछु अघटित नाहीं' अर्थात् अज्ञान वश जो वे कहते हैं वे सब बातें उनमें घटित हैं, उनके योग्य ही हैं, वे मूढ पुरुष जो कुछ भी कहें असम्भव नहीं हैं। क्यों असम्भव नहीं हैं सो दृष्टान्त से दिखाते हैं। यथा—

मू.चौ.-बातुल भूत बिबस मतवारे। ते नहिं बोलहिं बचन बिचारे ॥
जिन्ह कृत महामोह मद पाना। तिन्ह कर कहा करिअ नहिं काना २०

अर्थ—जिन्हें वात-रोग [सन्निपात, उन्माद आदि] हो गया है, जो भूत के वश हो गये हैं, और जो नशे में हैं, ऐसे लोग विचार कर वचन नहीं बोलते, जिन्होंने महामोह रूपी मदिरा पी रक्खी है, उनके कहने पर कान न देना चाहिये ॥२०॥

प्रश्न– हे स्वामिन् ? **'बातुल भूत बिबस मतबारे।'** कहने का क्या रहस्य है ?

उत्तर–हे सुव्रत ! इस विषय पर यह श्रुति है। यथा—

श्रुति मदिरोन्मत्त इव मोह मदिरोन्मत्तं पाप्मना गृहीत इव भ्राम्यमाणं
महोरगदष्टइव विषयदष्टं महान्धकारमिव रागान्धम्,
शब्दस्पर्शादयो ह्यर्थामर्त्येऽनर्था इवाऽऽस्थिताः ॥
येषां सक्तस्तु भूतात्मा न स्मरेत्परमं पदम् ॥ (मैत्रायण्य० उ० ४।२)

श्रुत्यार्थ—मदिरा से उन्मत्त के समान मोह (अज्ञान) मदिरा से उन्मत्त, पापी मन से ग्रहण किये हुए के सदृशभ्रमित, महान् सर्प से डसे के समान विषयों से ग्रसित एवम् महान् अन्धकार वत् राग से अन्धे। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, और गन्ध जो अर्थ कहे गये हैं, वह अर्थ वास्तव में अनर्थ है, उनमें आस्थावान् होकर मनुष्य आसक्त हो जाता है, इस कारण सम्पूर्ण भूतों के आत्मा परमेश्वर रूप राम का स्मरण नहीं करता। राम गुणगान न करने वाले की बुद्धि मलिन हो जाती है, वह विचार हीन बातें बोलता है। तथा—

'जिन्ह कृत महामोह मदपाना।' अर्थात् मोह को पिशाच कहा– **ग्रसे जो मोह पिशाच'** महा मोह को मद (मद्य) कहा। रहस्य है कि पञ्चपर्वा अविद्या के भेदो में मोह और महामोह भी दो भेद हैं। यथा—

तमो मोहो महामोहस्तामिस्त्रो ह्यन्ध संज्ञितः।
अविद्या पञ्चपर्वैषा प्रादुर्भूता महात्मनः ॥ विष्णु पु० १।५।५)
अविद्या पञ्चपर्वैषा समुद्भूता महात्मनः ॥ (विष्णु पु० १।५।५)

अर्थात्- उस महात्मा से प्रथम 'तम' अज्ञान अविवेक को कहते हैं, मन के भ्रम को मोह, विषय सुख की इच्छा को महामोह, (अभिनिवेश) मरण को अन्धतामिस्त्र कहते हैं।

क्रोध को तामिस्र कहते हैं। इस प्रकार पर ब्रह्म परमात्मा से यह पाँच प्रकार की प्रकट हुई। अथवा महामोह (अज्ञान) रूपी मद पान कर रक्खा है जिन्होंने वह म' और 'शिव' में भेद देखने वाले, 'राम' और 'कृष्ण' में त्रिपुण्ड्र और उर्ध्वपुण्ड्र में, और शिव में, आत्मा' और 'परमात्मा' में तथा श्रीराम और ब्रह्म में भेद देखने वाले त्येक रूप आत्मा को न जानने वाले ऐसे जो महा अज्ञानी, भेददर्शी हैं उनके वचनों न नहीं देना चाहिये अर्थात् उनकी बात कभी नहीं सुननी चाहिये, वह सब कुछ कह सकते हैं। हे प्रिये ! तुम तो परीक्षा तक ले चुकी हो, तुम्हें राम कथा पर रुचि ऐसी बात मुँह से निकाली कैसे कि 'राम कोउ आना'

अस निज हृदय बिचारि, तजु संसय भजु राम पद।
सुनु गिरिराज कुमारि, भ्रम तम रबिकर बचन मम ॥१।११५॥

ने हृदय में ऐसा विचार करके, भेदवादियों के वचनों से जो संशय उत्पन्न हुआ है को छोड़ो और श्रीराम के पद (विराट्, हिरण्यगर्भ, ईश्वर का मूलभूत तुरीय (राम) भजो। हे शिवे ! तुम्हें जो द्वैतदर्शन से भ्रम रूप अन्धकार हुआ है। उसके नाश ने के लिये, सूर्य की किरणों के समान प्रकाशरूप मेरे वचन सुनो ॥१।११५।

प्र०– हे भगवन् ? '**अस निज हृदय बिचार, तजु संसय भज रामपद।**' कहने का क्या तात्पर्य है ?

उ०– हे प्रिय दर्शन ! '**अस**' यह लोग अप्रमाणिक बात करते हैं। इनके कथन पर कान न देना चाहिये अतः द्वैत भाव की शङ्का छोड़ो। राम को ब्रह्म जान कर भजो।

प्रश्न– हे प्रभो ? '**सुनि गिरिराज कुमारि। भ्रम तम रबिकर बचन मम।**' कह कर क्या प्रदर्शित किया है ?

उ०– प्रिय वत्स ! '**सुन**' कहकर प्रदर्शित किया है कि श्रवण, मनन और निदिध्यासन करो- सुनकर मनन, निदिध्यासन नहीं किया तो वस्तुतः उसने सुना ही नहीं। क्योंकि मका सुनना न सुनने के बराबर ही है। '**रबिकर बचन मम**' अर्थात् यहाँ वचन सूर्य की किरण कहा, अथवा शिवजी का ज्ञान ही '**रवि**' है और उनके बचन ही रण हैं। यथा–

जासु ज्ञान रवि भव निसि नासा। बचन किरन मुनि कमल बिकासा। अथवा

श्रु०– दिनकरकिरणैर्हि शार्वरं तमो निविडतरं झटिति प्रणाशमेति।
तरभवकारणं तमोयद्धरिदिनकृत्प्रभया न चान्तरेण ॥११॥

मम चरणस्मरणेन पूजया च स्वकतमसः परिमुच्यते हि जन्तुः । वा०उ०।३।११,१२।

भावार्थ—सूर्य की किरणों से रात्रिगत् घन अन्धकार शीघ्र प्रणाश को प्राप्त होता है । वैसे ही हरि रूप सूर्य प्रभा से भव कारण अज्ञान घनतर अन्धकार बिना अन्तर अर्थात् शीघ्र ही प्रनष्ट हो जाता है वैसे ही जन्तु मेरे चरण (विराट्, हिरण्यगर्भ, ईश्वर और ब्रह्म) के स्मरण और पूजन से अपने अज्ञान से छूट जाता है ।

मू चौ.—सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा । गावहिं मुनि पुरान बुधवेदा ।।
अगुन अरूप अलख अज जोई । भगत प्रेम बस सगुन सो होई ।२१।

अर्थ—सगुण और निर्गुण में कुछ भी भेद नहीं है, मुनि, पुराण, पण्डित और वेद सभी ऐसा कहते हैं । जो निर्गुण, अरूप, अलक्ष, और अजन्मा है, वही भक्तों के प्रेमवश सगुण (व्यक्त दिव्य गुण युक्त) हो जाता है ।।२१।।

प्रश्न— श्रीगुरुदेव ? 'सगुनहि अगुनहिं नहिं कछु भेदा ।' कहने का क्या रहस्य है ?

उत्तर—हे सौम्य ! अब निर्गुण-सगुन का विवेक कहते हैं । निर्गुण और सगुन में कुछ भेद नहीं है, रहस्य यह है कि जैसे निर्गुण में मोहादि विकार नहीं हैं, वैसे ही सगुन में भी विकार नहीं है । इसी से इनमें अभेद कहा । इसमें मुनि, पुराण, बुध और वेद का प्रमाण देते हैं । 'गावहि मुनि' यथा—

विकाररहितं शुद्धं ज्ञानरूपं श्रुतिर्जगौ ।
त्वां सर्वजगदाकारमूर्तिं चाप्याह सा श्रुतिः ।। (अध्यात्म रामायण ६।८।४०)

नारद मुनि कहते हैं हे प्रभो ? श्रुति ने विकार रहित, शुद्ध और ज्ञान स्वरूप कहकर आपका वर्णन किया है और वही आपको सम्पूर्ण जगद्रूप भी कहती है । यह प्रमाण मुनि का हुआ । 'गावहिं पुराण' यथा—

परमानन्द सन्दोहो ज्ञान मात्रश्चसर्वशः ।
सर्वैर्गुणैः परिपूर्णः सर्व दोषविवर्जितः ।। (वाराह पुराण)

भावार्थ—वह परमात्मा श्रेष्ठ, आनन्द से परिपूर्ण, ज्ञानस्वरूप और सर्वव्यापक है । वह सर्व [दिव्य] गुणों से परिपूर्ण और सर्व दोषों से रहित है । यह पुराण प्रमाण हुआ । "गावहिं वेदा' यथा—

श्रुति-भगवन्नखण्डाद्वैतपरमानन्दलक्षणपरब्रह्मणः साकार-निराकारौ विरुद्ध धर्मौ । विरुद्धो भयात्मकत्वं कथमिति । सत्यमेवेति गुरुः परिहरति । यथा पृथिव्यादीनां व्यापकशरीराणां देव विशेषाणां च तद्विलक्षणतदभिन्नव्यापका परिच्छिन्ना निजमूर्त्याकारदेवताः श्रूयते सर्वत्र तद्वत्परब्रह्मणः सर्वात्मकस्य—

साकार निराकार, भेद विरोधो नास्त्येव । तस्मात्पर ब्रह्मणः परमार्थतः साकार निराकारौ स्वभाव सिद्धौं । (त्रिपाद्विभूति महानारायण उ० २)

श्रुत्यर्थ — (शिष्य बोला) भगवन् ! अखण्ड, अद्वैत, परमानन्द स्वरूप ब्रह्म के लिये साकार और निराकार-ये दो विरोधी धर्म प्रतीत होते हैं । दो विरोधी धर्म उनमें किस प्रकार रह सकते हैं ।

(श्री गुरुदेव ने कहा—) जैसे पृथिवी आदि व्यापक शरीर वाले देवविशेषों के उनके उस व्यापक रूप से विलक्षण किन्तु उनसे अभिन्न तथा अपरिच्छिन्न होते हुये भी अपनी मूर्ति के आकार के देवता सर्वत्र सुने जाते हैं । अर्थात् जैसे पृथिवी आदि के अधिष्ठाता देवता अपने पृथिवीं रूपी भौतिक शरीर एवं देव शरीर दोनों से युक्त है । वैसे ही सर्वात्मक पर ब्रह्म में साकार एवं निराकार का भेद होने पर भी विरोध नहीं हैं। इसलिये परमार्थतः पर ब्रह्म के साकार एवं निराकार दोनों रूप स्वभाव सिद्ध हैं । यह श्रुति प्रमाण हुआ ।

प्रश्नः—हे स्वामिन् ? '**अगुन अरूप अलख अज जोई ।**' कहने का क्या भाव हैं ?

उत्तर— हें सुव्रत ? यह श्री पार्वती जी के '**राम सो अवध नृपति सुत सोई । की अज अगुन अलख गति कोई** ।।१।१०८।४ इस प्रश्न का उत्तर है । इन विशेषणों का भाव हैं–'**अगुन**'=अर्थात् सच्चिदानन्द मात्र, प्राकृत गुण (काम, क्रोधादि) रहित हैं । '**अरूप**' प्राकृत रूप रहित-निराकार, '**अलख**' प्राकृत नेत्रादि इन्द्रियों से अगोचर, किन्तु अपनी शक्ति से ही गोचर होते हैं, '**अज**' माता-पिता के रज वीर्य से उत्पन्न नहीं एवं जिनका जन्म मरणादि; विकार से रहित शुद्ध सत्त्वात्मक विग्रह हैं । .

प्रश्नः—हे भगवन् ? '**भगत प्रेम बस सगुन सो होई ।।**' कहने का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—है प्रिय दर्शन ? ऊपर जो कहे अगुणादि ब्रह्म के स्वरूप वहीं ब्रह्म भक्तों के प्रेम वश सगुण हो जाता है । यथा—

दो० भगत हेतु भगवान प्रभु, राम धरेउ तनु भूप ।७।७२ (क)

भगवती श्रुति भी कहती है । यथा—

श्रुति चिन्मयस्याद्वितीयस्य निष्कलस्याशरीरिणः ।
उपासकानाँ कार्यार्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना ।। (श्रीराम पू० ता० उ० १।७)

श्रुत्यर्थ—यद्यपि ब्रह्म चिन्मय, अद्वितीय, प्राकृत अवयव रहित और (पाञ्च भौतिक) शरीर से रहित हैं, तथापि भक्तजनों के अभीष्ट कार्य की सिद्धि के लिए वह

चिन्मय देह को प्रकट करता है, भक्तों के स्नेह वश निराकार ब्रह्म नराकार धारण कर लेता है। और दिखाने मात्र को प्राकृत गुणों को भी ग्रहण करता है। यथा

चौ० मनहुं महाविरही अति कामी ॥३।३०।८॥ यह सब उपाधि को स्वीकार करने पर ही होता है वैसे तो वह हमेशा शुद्ध ही है। यथा—

यथा जपाकुसुमसान्निध्याद्रक्तस्फटिकप्रतीतिस्तदभावे शुद्धस्फटिकप्रतीतिः। ब्रह्मणोऽपि मायोपाधि वशात्सगुणपरिच्छिन्नादि प्रतीतिरुपाधि विलयान्निर्गुणनिरवयवादि प्रतीतिरित्यु पनिषत् ॥

(त्रिपाद्विभूति महानारायणउ० ३)

श्रुत्यर्थ—जैसे जपा (जवा) पुष्प के सान्निध्य (समीपता) से स्फटिक में ललाई की प्रतीति होती है और उस (पुष्प) के अभाव में शुद्ध-स्फटिक प्रतीत होता है, वैसे ही ब्रह्म में भी मायारूप उपाधि से ही सगुणत्व, परिच्छिन्नत्व आदि की प्रतीति होती है। उपाधिकानाश हो जाने पर निर्गुणत्व, निरवयवत्व आदि की प्रतीति होती है॥ यह पार्वती जी के प्रथम प्रश्न यथा —

चौ० प्रथम सो कारन कहहु बिचारी। निर्गुन ब्रह्म सगुन वपुधारी ॥१।११०।२ के उत्तर में कहा। अब दृष्टान्त से समझाते हैं। यथा—

मूल चौ० जो गुन रहित सगुन सोइ कैसे। जलु हिम उपल बिलग नहिं जैसे।
जासु नाम भ्रम तिमिर पतंगा। तेहि किमि कहिअ बिमोह प्रसंगा ॥२२

अर्थः जो निर्गुण है वही सगुण कैसे है ? जैसे जल और ओले में भेद नहीं (दोनों जल ही हैं ऐसे ही निगुण और सगुण एक ही हैं)

जिसका नाम भ्रमरूपी अन्धकार (के मिटाने) के लिए सूर्य है, उस चेतन ब्रह्म राम के लिए मोहका प्रसङ्ग भी कैसे कहा जा सकता है ।।२२॥

प्रश्नः—हे प्रभो ? '**जो गुन रहित सगुन सोइ कैसे।**' यह कहकर क्या प्रदर्शित किया है ?

उत्तर—हे प्रिय वत्स ? इससे जो प्रदर्शित किया है इसमें यह श्रुति प्रमाण है। यथा—

श्रुति सोहं ब्रह्म न संसारी न मत्तोऽन्यः कदाचन।
यथा फेन तरङ्गादि समुद्रादुत्थितं पुनः ॥६॥
समुद्रे लीयते तद्वज्जगन्मय्यनुलीयते। जाबाल दर्शनोपनिषद् १०।६।७)

श्रुत्यर्थ—मैं वह परमात्मा ही हूँ, संसार बन्धन में बंधा हुआ जीव नहीं हूँ; इसलिए मुझसे भिन्न किसी भी वस्तु की किसी काल में सत्ता नहीं है। जैसे फेन और तरङ्ग समुद्र से ही उठते है और पुनः समुद्र में ही लीन हो जाते हैं, उसी प्रकार यह जगत् मुझमें ही उत्पन्न और विलीन होता रहता है ॥

अथवा--जैसे जल का स्वाभाविक गुण द्रवत्व है, परन्तु शीत के वश होकर उसमें दृढ़ता आ जाती हैं और वह पत्थर सा दृढ़ हो जाता है, जो बात उसमें नहीं थी वह आजाती हैं। इसी प्रकार निर्गुण ब्रह्म-सगुण हो जाता है। इन वाक्यों से 'जो नृप तनय त ब्रह्म किमि' इस मोहांश को मिटाया ॥

प्रश्न:—श्री गुरुदेव ? **'जासु नाम भ्रम तिमिर पतंगा।'** कहने का क्या रहस्य है ?

उत्तर—हे सौम्य ! जिसका नाम लेने से दूसरों के भ्रम मिट जाते हैं, जहां सूर्य प्रकाशता है वहां अन्धकार कैसा ? **'तेहि किमि कहिअ बिमोह प्रसंगा।।'** अर्थात् जिसके नाम का यह प्रभाव हैं कि वह दूसरे के मोह और भ्रम को दूर कर देता हैं, उसमें मोह सम्बन्ध असम्भव हैं, उसमें तो मोह की चरचा चलाना भी अयोग्य है। उन चैतन्य ब्रह्मराम में अज्ञान का प्रसंग ही नहीं, फिर द्वैत कहां **तुम जो कहा राम कोउ आना'** अथवा—

मू.चौ. राम सच्चिदानंद दिनेसा। नहिं तहँ मोह निसा लवलेसा ॥
सहज प्रकास रूप भगवाना। नहिं तहँ पुनि बिग्यान बिहाना।(२३)।

अर्थ—श्री रामचन्द्रजी सच्चिदानन्द स्वरूप सूर्य हैं। वहाँ मोहरूपी रात्री का लवलेश भी नहीं हैं। वे स्वभाव से ही प्रकाशरूप और (षडैश्वर्य युक्त) भगवान् हैं। वहाँ तो विज्ञान रूपी प्रातःकाल भी नहीं होता। (अज्ञानरूपी रात्रि हो तब तो विज्ञान रूपी प्रातःकाल हो; भगवान् तो नित्य ज्ञान स्वरूप हैं) २३॥

प्रश्न:—हे स्वामिन् ? **'राम सच्चिदानन्द दिनेसा। नहिं तहँ मोह निसा लवलेसा।'** कहने का क्या भाव है ?

उत्तर—हे सुव्रत ? इसका भाव श्रुति इस प्रकार बताती है। यथा—

श्रुति अस्तमनस्तमितो भास्वानजो देवो निरामयः ॥
सर्वदा सर्वकृत्सर्वः परमात्मैत्युदाहृतः ॥ (मह० उ० ४।५६)

श्रुत्यर्थ—जो आत्माराम सूर्य हैं कभी अस्त नहीं होता। जो जन्म रहित तथा सर्व दोष विवर्जित देव हैं सर्वदा, सर्वकरता तथा सर्व स्वरूप हैं वही परमात्माराम कहलाते है। वहां मोह निशा (अज्ञानरूप रात्रि) लेशमात्र भी नहीं हैं। जहाँ सत् है वहां असत् कहाँ, जहां चैतन है वहां जड़ का क्या काम और जहाँ आनन्द है वहां दुःख नहीं, जैसे सूर्य में रात्रि नहीं; वैसे ही ब्रह्मराम में अविद्या (अज्ञान) नहीं। जहां अविद्या होती हैं वहां ही द्वैत भासता हैं, श्रीराम तो अद्वितीय ब्रह्म है, वहां भेद कहाँ, **'तुम जो कहा राम कोउ आना।'**

प्रश्न,—हे भगवन् ? 'सहज प्रकाश' कहने का क्या तात्पर्य हैं ?

उत्तर—हे प्रिय दर्शन ? 'सहज' स्वाभाविक प्रकाश जो उदय हो न अस्त हो। यथा—

श्रुति-हृदाकाशे चिदादित्य सदा भासति भासति।
नास्तमेति न चोदेत,......................(मैत्रेय्युपनिषद् २।१४)

श्रुत्यर्थ-हृदयरूपी आकाश में चित् रूपी सूर्य सदैव प्रकाशित होता रहता हैं। वह न अस्त होता है न उदय।

'भगवाना' अर्थात्-ज्ञान शक्ति वलैश्वर्यवीर्य तेजांस्यशेषतः।
भगवच्छब्दवाच्यानि विना हेयैंगुंणादिभि.॥ (नारद पु० ४६।२२-विष्णु पु० ६।५।७९)

भावार्थ-त्याग करने योग्य (त्रिविधि) गुण (और उनके क्लेशः) आदि को छोडकर, ज्ञान, शक्ति, वल, ऐश्वर्य, वीर्य और तेज आदि सद्गुण ही भगवान् शब्द के वाच्य हैं। (चौ० २ पृष्ठ २० चौपाई २९ दो० १/११८ पृष्ठ ६७ पर विशेष वर्णन उदाहरण सहित देखें—) उन्हीं के लिये कहा।

मू. दो. पुरुष प्रसिद्ध प्रकास निधि, प्रगट परावर नाथ।
रघुकुलमनि मम स्वामि सोइ, कहि सिव नायउ माथ॥ १।११६

अर्थ—जो (पुराण) पुरुष प्रसिद्ध हैं, प्रकाश के भण्डार हैं, सब रूपों में प्रकट हैं, जीव, माया और जगत् के स्वामी हैं, वे ही रघुकुलमणि श्रीरामचन्द्रजी मेरे स्वामी हैं, ऐसा कहकर शिवजी ने उनको मस्तक नवाया। (प्रणाम किया) १।११६॥

प्रश्नः—प्रभो ? 'पुरुष प्रसिद्ध प्रकाश निधि' कहने का क्या अभिप्राय है ?

उत्तर—हे प्रिय वत्स ? 'पुरुष' अर्थात्—

श्रुति-सवेत्तिवेद्यं न च तस्यास्तिवेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम्॥
श्वेताश्व०उ० ३।१९।

श्रुत्यर्थ-वह जो कुछ भी जानने में आने वालीं वस्तुयें हैं, उन सबको जानता है और उसको जानने वाला कोई नहीं ज्ञानी पुरुष उसे महान सबका आदि पुरुष कहते हैं॥ 'प्रसिद्ध प्रकास निधि' अर्थात् सबकी आत्मा होने से प्रसिद्ध हैं विख्यात हैं और समस्त देह इन्द्रिय आदि को प्रकाशित करते हैं, अतः प्रकाश के समुद्र हैं। यथा— सब कर परम प्रकाशक जोई।१।११७।३॥ '**प्रगट परावर नाथ।**' अर्थात् यह आत्मा राम सदा प्रकट है, अथवा-जो निर्गुण है, वह अब महाराजा श्री दशरथ जी के यहाँ प्रकट हैं। और हिरण्य गर्भ आदि जो 'पर' शब्द से कहे गये हैं वह भी जिससे नीचे हैं, जो उनका भी नाथ है। अथवा-निर्गुण और सगुण के भी स्वामी-

सर्वेश्वर हैं। अथवा-पुरुष, प्रसिद्ध, प्रकाशनिधि और परावर नाथ, इन स्वरूपों व विशेषणों से युक्त हैं वे श्रीराम प्रकट हैं वे रघुकुलमणि हैं, अर्थात् उन्होंने रघुकुल में जन्म लिया है, वह श्रीराम जी मेरे स्वामी हैं, ऐसे कहकर मस्तक झुकाया। यथा—

श्रुति–एवं भूतो जगदाधार भूतं रामंवन्दे सच्चिदानन्दरूपम्।

(श्रीरामपू० ता० उ० १०।८)

श्रुत्यर्थ–ऐसी महिमा वाले जगत् के आधार भूत और सत्-चित्-आनन्द-स्वरूप उन भगवान् श्रीरामचन्द्रजी को मैं प्रणाम करता हूँ॥

अथवा–मुनीन्द्रगुह्यं परिपूर्णमेकं कलानिधिं कल्मषनाश हेतुम्।
परात्परं यत्परमं पवित्रं नमामि राम महतो महान्तम्॥

(श्री व्यास वाक्यं युधिष्ठिर प्रति-सनत्कुमार संहिता)

भवार्थ–मुनीन्द्रों के गुप्त तत्त्व, एक मात्र परिपूर्ण, कला भण्डार, पापनाश के कारण, परसेपर एवं जो परम पवित्र तथा महान से भी महतम हैं उन श्रीराम का नमन करता हूँ॥ प्रणाम करके भोले भण्डारी भक्त भय हारी, कामादि भवभय हारी, त्रिपुरारि श्री शिवजी श्रुति सिद्धान्तसार कथन करने लगे।

॥इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकल कलिकलुष विध्वंसने॥

❋ बालकाण्डान्तर्गत प्रथमः सोपानः समाप्तः ❋

॥ श्री गणेशाय नमः॥

अथ द्वितीय-सोपान

मू.चौ० विषय करन सुर जीव समेता। सकल एक ते एक सचेता॥
सब कर परम प्रकाशक जोई। राम अनादि अवधपति सोई॥२४॥

अर्थ–विषय, इन्द्रियाँ, इन्द्रियों के देवता और जीवात्मा, ये सब एक की सहायता से एक-एक चेतन होते हैं (अर्थात् विषयों का प्रकाश इन्द्रियों से, इन्द्रियों का इन्द्रियों के देवताओं से और इन्द्रियों के देवताओं का चतन जीवात्मा से प्रकाश होता है) इन सब का जो परम प्रकाशक है, (अर्थात् जिससे इन सब का प्रकाश होता है।) वही अनादि ब्रह्म अयोध्या नरेश श्री रामचन्द्र जी हैं॥२४॥

प्रश्न– श्री गुरुदेव? 'विषय करन ··· । ·· एक से एक सचेता॥' इस अर्धाली का क्या रहस्य है?"

उत्तर—हे सौम्य ! विषयों से इन्द्रिया, इन्द्रियों से इन्द्रियों के देवता, देवताओं से जीव उत्तरोत्तर सचेत हैं। अर्थात् विषयों में इन्द्रियों का आकर्षण करने की शक्ति है, यही विषयों की चैतन्यता है, परन्तु विषय इन्द्रियों को जानते नहीं, किन्तु इन्द्रियाँ विषयों को जानती हैं, वह अपने अपने विषय को ग्रहण कर लेती हैं, यही विषयों से इन्द्रियों की चैतन्यता है, विषय और इन्द्रियाँ-देवताओं को नहीं जानते परन्तु देवता-इन्द्रियों को जानते हैं, वह अपनी-२ इन्द्रियों पर ही बैठते हैं। यथा—

चौ०—इंद्री द्वार झरोखा नाना। तहँ तहँ सुर बैठे करि थाना॥
आवत देखहि विषय बयारी। ते हठि देहि कपाट उघारी॥७।११८।६॥

विषय, इन्द्रियाँ और इन्द्रियों के देवता-जीवात्मा को नहीं जानते, परन्तु जीवात्मा विषय आदि को जानता है, इसी से कहा कि ये एक से एक सचेत हैं। इन्द्रियों में चेतनता उनके देवताओं से आती है, यदि देवता अपना वास उन पर से हटालें तो वे कुछ कार्य नहीं कर सकती, इसी भाँति इन्द्रियों के देवता जीवात्मा से प्रकाश पाते हैं। शरीर के जीव रहित होने पर देवता-इन्द्रियों को सचेत नहीं कर सकते। जीवात्मा भी बिना श्रीराम जी की सत्ता के कुछ नहीं कर सकता। यहाँ पर विषय, करण और देवताओं के मिलने से त्रिपुटी बनती है, जिससे जागृत् का कार्य होता है। वह त्रिपुटी इस प्रकार है।

ज्ञानेन्द्रियों की त्रिपुटी

विषय अधिभूत	करण (इन्द्रियाँ) अध्यात्म	सुर (देवता) अधिदैव
शब्द	श्रवणेन्द्रिय (कान)	दिशा
स्पर्श	त्वगिन्द्रिय (त्वचा)	पवन (वायु)
रूप	नेत्रेन्द्रिय (आँख)	सूर्य
रस	रसेन्द्रिय (जीभ)	वरुण वा प्रचेता
गन्ध	घ्राणेन्द्रिय (नाक)	अश्विनी कुमार

कर्मेन्द्रियों की त्रिपुटी

भाषण (बोलना)	वाणी (मुख)	अग्नि
लेना-देना	हाथ	इन्द्र
चलना	पैर	विष्णु—उपेन्द्र
मलत्याग	गुदा (पायु)	यम वा मित्र
मैथुन-मूत्रत्याग	उपस्थ (शिश्न)	प्रजापति

अन्तःकरण की त्रिपुटी

विषय अधिभूत	बयय इन्द्रियाँ अध्यात्म	सुर (देवता) अधिदेव
संकल्प	मन	चन्द्रमा
निर्णय-करना	बुद्धि	ब्रह्मा
चिन्ता करना वा धारण करना	चित्त	अच्युत या वासुदेव
अहङ्कार करना (अहंता)	अहङ्कार	शिव (रुद्र)

प्रश्न—हे स्वामिन ? "सब कर परम प्रकासक जोई। राम अनादि……।" कहने का क्या भाव है ?

उत्तर—हे सुव्रत ? भाव है कि करण, सुर और जीवात्मा ये सब एक ही एक के प्रकाशक हैं। और श्रीराम सब के प्रकाशक हैं, अथवा—

इन्द्रियाँ, इन्द्रियों के देवता और जीवात्मा ये सब प्रकाशक हैं, और श्रीराम परम प्रकाशक हैं। इनका आदि कोई नहीं, ये अनादि हैं, वही अवध=अयोध्या, अथवा-अवध=जहाँ से आगे सीमा नहीं है उस सीमा के पति, नाथ, सर्वेश्वर श्री राम जी ही हैं।

अथवा—श्रुति— इन्द्रियेभ्यः पराह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः।
मनसस्तु पराबुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान् परः॥
महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः
पुरुषान्न परं किञ्चित्सा काष्ठा सा परागतिः॥ (कठो॰ १।३।१०।११)

श्रुत्यर्थ—इन्द्रियों से शब्दादिविषय बलवान् हैं और शब्दादि विषयों से मन प्रबल है और मन से भी बुद्धि बलवतीं हैं बुद्धि से महान् आत्मा (समष्टिबुद्धि) अत्यन्त श्रेष्ठ और बलवान् है॥ समष्टि बुद्धि से भगवान् की माया बलवती है, अव्यक्त माया से भी पुरुष श्रेष्ठ है, पुरुष से श्रेष्ठ और बलवान् कुछ भी नहीं है वही सब की परम अवधि और परम गति हैं॥ तथा—

मू. चौ. जगत प्रकाश्य प्रकासक रामू। मायाधीस ग्यान गुन धामू॥
जासु सत्यतां तें जड़ माया। भास सत्य इव मोह सहाया॥२५॥

अर्थ—यह सब जगत् प्रकाश्य है। माया अधिष्ठाता, ज्ञान और गुणों के धाम श्रीराम जी प्रकाशक हैं॥ जिनकी सत्यता से मोह की सहायता पाकर जड़ माया भी सत्य सीभासित होती हैं॥२५॥

प्रश्न: हे भगवन् ? 'जगत प्रकास्य प्रकासक रामू ।' कहने का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर- हे प्रिय दर्शन ? इसको श्रुति इस भाँति कहती है । यथा—

श्रुति—येन प्रकाशते विश्व यत्रैव प्रविलीयते ।

तद् ब्रह्म परमं शान्तं तद् ब्रह्मास्मि परं पदम् ॥ (पञ्च ब्रह्मोपनिषत् २०)

श्रुत्यर्थ—जिस राम से संसार प्रकाशित हो रहा है और जिसमें ही विलीन होता है । वह ब्रह्म राम परम शान्त तथा श्रेष्ठ स्वरूप हैं वह ब्रह्म राम मैं हूँ ॥ 'मायाधीस ग्यान गुन धामू ।' अर्थात् जगत् प्रकाशमान है, श्रीरामजीं प्रकाश कर्ता हैं, उसमें प्रकाश कहकर अब जगत् के कारण में प्रकाश कहते हैं, जगत् का कारण माया है । श्रीराम जी मायापति हैं, माया के भी प्रकाशक हैं । ज्ञान गुण के धाम हैं ।

प्रश्न:—हे प्रभो ? 'जासु सत्यता तें जड माया । भास सत्य इव मोह सहाया ।' कथन का क्या अभिप्राय है ?

उत्तर-श्रुति-यः सर्वज्ञः सर्व विद्यो यस्य ज्ञानमयं तपः ।

तस्मादत्रान्नरूपेण जायते जगदावलिः ॥३३॥

सत्यवद्भाति तत्सर्वं रज्जुसर्पवदास्थितम् ।

तदेतदक्षरं सत्यं तद्विज्ञाय विमुच्यते ॥ ३४॥

ज्ञानेनैव हि संसार विनाशो नैव कर्मणा । रुद्र हृदयोपनिषत् ३३ से ३५

श्रुत्यर्थ—जो सर्वज्ञ हैं, जिसे भूत, भविष्य, वर्तमान का ज्ञान है, जो सम्पूर्ण विद्याओं का आश्रय है ज्ञात ही जिसका तप हैं उसीसे भोक्ता एवं (योग्य) अन्नरूप में यहाँ समस्त जगत् उत्पन्न होता है । जो जगत् सत्य की तरह भासमान होता है वह सब ब्रह्म राम में उसी प्रकार स्थित है, जैसे रज्जु में सर्प । वही यह अविनाशी ब्रह्मराम सत्य हैं (इनकी सत्यता से ही जड माया सत्यसी भासती हैं) जो इस तरह जानता है, वह मुक्त हो जाता है । ज्ञान से ही संसार बन्धन का नाश होता है, कर्म से नहीं ॥ शशाङ्कशेखर श्री शिवजीं कहते हैं कि श्रीरामजी में जो 'विरह विकलतादि' तुमने देखा वह माया थी, सत्य नहीं था । जब श्रीरामजी में सारा संसार, बिना हुए दिखाई पडता है तो उनका विरह विकलता आदिका बिना हुए दिखाई पडना कौनसी बडी बात थी । तुम्हारे अज्ञान की सहायता से वह सब सत्य दिखाई पडा : इसीको आगे दृष्टान्त से दिखाते हैं । यथा—

मूल दो० रजत सीप महुं भास जिमि, जथा भानु कर बारि ।

जदपि मृषा तिहुं काल सोइ, भ्रम न सकइ कोउ टारि ॥१।११७॥

अर्थ जैसे सीप में चाँदी की और सूर्य की किरणों में पानी की (बिना हुए भी) प्रतीति

होती हैं। यद्यपि यह प्रतीति तीनों कालों में झूठ है, तथापि इस भ्रम को कोई हटा नहीं सकता। (भाव हैं कि भ्रम हो ही जाता है) ॥१।११७॥

प्रश्न;—श्री गुरुदेव ? 'रजत सीप महुं भास जिमि, जथा भानु कर वारि ॥' कथन का क्या रहस्य है ?

उत्तर—हे सोम्य ? जैसे सीप में चाँदी का भास होता है और सूर्य किरणों में जल का, वैसे ही श्रीरामजी कीं सत्यता से माया सत्य भासती हैं (पिछली चौपाई) यथा—

चौ० जासु सत्यता तें जड माया। भास सत्य इव मोह सहाया ॥

में जो कहा उसीका दृष्टान्त इस दोहें में दे रहे हैं। वहाँ माया का स्वरूप कहा, यहाँ उसीं का दृष्टान्त दिया। सींप सत्य है, उसमें चाँदी का भास मिथ्या है। सूर्य किरण सत्य हैं, उनमें जल का भास मिथ्या हं। ऐसे ही श्रीरामजी सत्य हैं माया मिथ्या है ॥

प्रश्नः—हे स्वामिन् ? दो दृष्टान्त देने का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—हे सुव्रत ? दो दृष्टान्त देने का तात्पर्य हैं कि श्रीरामजी के दो रूप हैं—एक निर्गुण दूसरा सगुण इन्हीं दो का प्रसङ्ग यहाँ चल रहा है। दो रूप यथा—

छं० जय राम रूप अनूप निर्गुन सगुन गुन प्रेरक सही ।३।३२।१

सगुण--व्यक्त--स्थूल है, इसीसे सगुण रूप के लिए दृष्टान्त में 'सीप को कहा; । निर्गुण रूप अव्यक्त-सूक्ष्म है, उसके लिये रवि किरणका दृष्टान्त दिया।

अथवा—रज्जु-सर्प अंधेरे का दृष्टान्त है और रजत-सीप तथा मृगजल पूर्ण प्रकाश के दृष्टान्त हैं, जिनमें से एक निकट का और दूसरा-दूर का है। अथवा

श्रुति—द्विचन्द्र शुक्तिकारूप्य मृगतृष्णादि भेदतः। (मह०उ० ५।१५)

श्रुत्यर्थ—एकचन्द्र में दो चन्द्रों का भान होगा, शुक्ति (सीप) में रजत (चाँदी) का भान होना, मृगातृष्णा में जल का भान होना, इत्यादि भ्रम हैं। 'यदपि मृषा तिहूं काल' अर्थात्-शुक्ति (सीप) में रजत (चाँदी) का दृष्टान्त देते हैं, रजत समझकर जब उसको उठाया तब हाथ में सीप आई तब ध्यान में आजाता है कि जिसको हम रजत समझते थे वह चाँदी नहीं है सीप है। अतः सिद्ध हुआ कि सीप अनुभव काल में रजत न थी, अब भी नहीं हं। अतएव आगे भी नहीं होगी। इस प्रकार तीनों काल में उसका 'मृषत्व' सिद्ध हो गया। इसीसे कहा 'तदपि मृषातिहुं काल' 'भ्रम न सके कोउ टारि ।।' अर्थात्-जेठ की कडी धूप में जल का भ्रम होता है। वह जल तीनों कालों में मिथ्या हं। पर दिखाई पडता है। ज्ञान से भ्रम की निवृत्ति हो जाती है परन्तु उसका भासना निवृत्ति नहीं होता, वह तो उसी भाँति भासित होता रहता है इसींसे कहा कि—'भ्रम न सके कोउ टारि ॥' तथा

सू.चौ.-एहि बिधि जग हरि आश्रित रहहि। जदपि असत्य देत दुःख अहई।
जौं सपने सिर काटै कोई। बिनु जागे न दूरि दुख होई ॥२६॥

अर्थ–इसी प्रकार जगत् भगवान् के आश्रित रहता है, यद्यपि वह असत्य है, भ्रम से भासता है, फिर भी अज्ञानियों को जन्म-मरण रूपी दुःख देता ही है, जिस प्रकार स्वप्न में कोई सिर काट ले तो बिना जागे वह दुःख दूर नहीं होता। इसी प्रकार बिना ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान के यह जन्म-मृत्युरूप संसार नहीं टलता ॥२६॥

प्रश्न–हे भगवन्? "एहि विधि जग हरि आश्रित रहई।" कथन का क्या तात्पर्य है?

उत्तर–हे प्रिय दर्शन! तात्पर्य है कि जैसे रजत-सीप के आश्रित है, मृगजल रविकिरणों के आश्रित है, वैसे ही यह जगत् श्रीराम जी के आश्रित है, जगत् भ्रम रूप है, और भ्रम बिना अधिष्ठान के होता नहीं, इसलिये इस भ्रम रूप संसार के अधिष्ठान श्रीराम जी ही हैं। जैसे भ्रम रूप रजत का अधिष्ठान शुक्ति (सीपी) है।

अथवा–अहोविकल्पितं विश्वमज्ञानान्मयि भासते।
रौप्यं शुक्तौ फणीरज्जौवारि सूर्य करे यथा ॥ (अष्टावक्र वेदान्ते २।९)

श्री अष्टावक्र जी कहते हैं कि हमको अज्ञान के कारण यह जगत् सीप में चाँदी, सूर्य किरणों में जल और रस्सी में सर्प की नाई भासता है॥ यही तीनों दृष्टान्त श्री गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी दिये हैं। 'जदपि असत्य देत दुख अहई॥' अर्थात् असत्य होते हुए भी दुःख देत है।

प्रश्न:—हे प्रभो? जो वस्तु है ही नहीं वह दुःख कैसे देगी?

उत्तर—हे प्रिय वत्स? जैसे रस्सी में सर्प नहीं होते हुए भी भ्रम से सर्प जानकर डरना, भागना, भागने में पैर फिसलकर या ठोकर लगकर गिर जाना हाथ पैर में चोट लग जाना, महीनों तक इलाज करना, दुःख भोगना, यह दुख सर्प न होते हुए ही तो हुआ। इसी को आगे स्वप्न के दृष्टान्त से समझाते हैं। जैसे कोई स्वप्न में सिर काटे। सिर तो वस्तुतः सुरक्षित है, सिर का काटना बिल्कुल असत्य है। पर स्वप्न देखने वाला सिर कटने की पीड़ा और मरने का दुःख ठीक-ठीक अनुभव करता है। उसे उस दुख से कोई छुड़ा नहीं सकता। उसका दुःख एक मात्र जागने से ही मिटता है। यथा—

'सपने के दोष दुख जागे ही पै जाहिरे। (विनय) वैसे ही जगत्-स्वप्न है। यथा- चौ० उमा कहउ मैं अनुभव अपना। सत हरि भजनु जगत सब सपना॥ ३।३।९।३ स्वप्न में देखे हुए सब पदार्थ मिथ्या होते हुए भी सुख-दुःख देते हैं वैसे ही जगत् मिथ्या होते हुए भी सुख-दुःख देता है। यथा–

तस्मादिदं जगदशेषमसत्स्वरूपं स्वप्नाभ्रमस्तधिषणं कुरु दुःख-दुःखम् ।

(भा० १०।१४।२२)

अर्थात्–यह सम्पूर्ण जगत् स्वप्नवत् असत्य, अज्ञान रूप और दुःख पर दुःख देने वाला हैं ॥

मू.चौ० जासु कृपा अस भ्रम मिटि जाई । गिरजा सोइ कृपाल रघुराई ॥

आदि अंत कोउ जासु न पावा । मति अनुमानि निगम अस गावा ॥२७॥

अर्थ—हे गिरिराज नन्दिनी उमा ? जिनकी कृपा से इस प्रकार का भ्रम मिट जाता हैं, वही कृपालु श्री रघुनाथ जी हैं । जिनका आदि और अन्त किसी ने नहीं पाया । वेदों ने अपनी बुद्धि से अनुमान करके (आगे लिखे अनुसार) गाया हैं ॥२७॥

प्रश्न:—श्री गुरुदेव ? 'जासु कृपा अस भ्रम मिटि जाई ।' कहने का क्या रहस्य है ?

उत्तर—हे सोम्य ? 'अस' जैसे जागने से स्वप्न भ्रम मिट जाता है । उसी प्रकार जगत कीं सत्यता का भ्रम मिट जाता है । अथवा-जो किसी के टाले न टल सका था, यथा– 'भ्रम न सके कोउ टारि' वह भ्रम मिट गया । भ्रम कैसे मिटता है इसे श्रुति इस प्रकार कहती है । यथा—

श्रुति–सदोज्ज्वलोऽविद्यातत्कार्यहीनः स्वात्मबन्धहरः सर्वदा द्वैतरहित आनन्दरूपः सर्वाधिष्ठानः सन्मात्रो निरस्ताविद्यातमोमोहोऽहमेवेति सम्भाव्याहमित्यों तत्सद्यत्परंब्रह्म रामचन्द्रश्चिदात्मकः । सोऽहमों तद्रामभद्र परंज्योतिः सोऽहमोमित्यात्मानमादाय मनसा ब्रह्मणैकी कुर्यात् ॥

सदारामोऽहमस्मीति तत्त्वतः प्रवदन्ति ये ।
न ते संसारिणो नूनं राम एव न संशयः ॥ इत्युपनिषत् ।

(श्रीरामोत्तर० ता० उ० ५)

श्रुत्यर्थ–वे पूर्ण ब्रह्म परमात्मा (श्रीराम) सदा उज्ज्वल हैं । अविद्या और उसके कार्यो से सर्वथा रहित हैं । अपने भक्तों के आत्मा का अज्ञानमय बन्धन वे हर लेते हैं । उनमें द्वैत का सर्वदा अभाव हैं । वे आनन्द मूर्ति हैं । सबके अधिष्ठान हैं । सत्तामात्र उनका स्वरूप हैं । अविद्या जनित अन्धकार और मोह उनमें स्वभावतः नहीं है, अथवा-उनका साक्षात्कार होते ही अविद्यामय अन्धकार और मोह का सर्वथा नाश हो जाता हैं ऐसे जो परमातमा श्रीराम हैं 'वह मैं ही हूँ ? इस प्रकार चिन्तन करना चाहिए, ॐ तत्,सत्,यत् और परब्रह्म आदि नामों से प्रति पादित होने वाले जो चिन्मय श्रीरामचन्द्रजी है 'वह में हूँ' । इस प्रकार अपने को सामने लाकर मन के द्वारा पर ब्रह्म परमात्मा श्रीराम जी के साथ एकता करे, भगवान् के साथ अपनी अभिन्नता का चिन्तन करे ॥ जो लोग सदा यथार्थ रूप से समझकर 'मैं राम हूँ' यों कहते हैं; वे संसारी नहीं हैं । निश्चय ही वे राम हैं इसमें तनिक भी सन्देह नहीं हैं ॥

यह उपनिषत् है । इस प्रकार जो आत्मानुभव से अपने को ब्रह्म रूप जानते हैं उनका आदि-अन्त किसी ने नहीं पाया वेदों ने अपनी बुद्धि से अनुमान करके इस प्रकार (जो आगे कहेंगे) गाया है ॥ यथा—

मू. चौ० बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना । कर बिनु करम करइ बिधि नाना ॥
आनन रहित सकल रस भोगी । बिनु बानी बकता बड़ जोगी ॥२८॥

अर्थ—वहां ब्रह्म बिना ही पैर के चलता है, बिना ही कान के सुनता है, बिना ही हाथ के नाना प्रकार के काम करता है, बिना मुंह (जिह्वा) के ही सारे (छहों) रसों का आनन्द लेता है, और बिना ही वाणी के बहुत योग्य वक्ता है ॥२८॥

मू. चौ० तन बिनु परस नयन बिनु देखा । ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा ॥
असि सब भांति अलौकिक करनी । महिमा जासु जाइ नहिं बरनी ॥२९॥

अर्थ बिना ही शरीर (त्वचा) के स्पर्श करता है, बिना ही आँखों के देखता है, और बिना ही नाक के सब गन्धों को ग्रहण करता (सूंघता) है । उस ब्रह्म की करनी सभी प्रकार से ऐसी अलौकिक है कि जिसकी महिमा कहीं नहीं जा सकती ॥२९॥

यथा-श्रुति-अपाणिपादो जवनो गृहीता, पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः ।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता, तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम् ॥
(श्वेताश्व० उ० ३।१९—नारद परि० उ० ९।१४)

श्रुत्यर्थ—वह परमात्मा हाथ, पैरों से रहित होकर भी समस्त वस्तुओं को ग्रहण करने वाला तथा वेग पूर्वक सर्वत्र गमन करने वाला है, आंखों के बिना ही वह सब कुछ देखता है, और कानों के बिना ही सब कुछ सुनता है, वह जो कुछ भी जानने में आने वाली वस्तुएँ है, उन सबको जानता है, और उसको जानने वाला कोई नहीं है, ज्ञानी पुरुष उसे महान् सबका आदि पुरुष कहते हैं ॥

प्रश्नः—हे स्वामिन् ? 'असि सब भांति अलौकिक करनी ।' कथन का क्या भाव है ?

उत्तरः—हे सुव्रत ? जैसीं करनी प्रभु की हैं कि बिना इन्द्रियों के सब कार्य करते हैं, वैसी करनी त्रिलोक मे किसी कीं नहीं है, यह अलौकिकता हैं । यही अद्वैतता है ।

अथवा—पर ब्रह्म परमात्मा राम अचिन्त्य शक्ति हैं । इसी से वे सूक्ष्म से सूक्ष्म और महान् से महान् बताये गये हैं, यथा—

श्रुति-अणोरणीयान्महतोमहीयान् ॥ (कठ० उ० १।२।२०)
यही अलौकिकता है, यही अद्वैतता है ॥

मूल दो० जेहि इमि गावहिं बेद बुध, जाहि धरहिं मुनि ध्यान ।
सोइ दसरथ सुत भगत हित, कोसलपति भगवान ॥१।११८॥

अर्थ—जिसका वेद और पण्डित इस प्रकार वर्णन करते हैं, और मुनि जिनका ध्यान धरते हैं, वही दशरथ नन्दन, भक्तों के हितकारी, अयोध्या के स्वामी भगवान् श्रीरामचन्द्रजी हैं ॥१।११८॥

प्रश्नः—हे भगवन् ? 'जेहि इमि गावहि वेद बुध' कहने का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—हे प्रिय दर्शन ? जिसका वेद और पण्डित इस प्रकार वर्णन करते हैं और मुनि इसी प्रकार ध्यान धरते हैं। यथा—

श्रुति–सत्यं विज्ञानमनन्तं ब्रह्म यस्मिन्निदमोतं च। यस्मिन्निदं स च वि चैति सर्वं यस्मिन्विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति। तदपाणिपादमचक्षुरश्रोत्रमजिह्वम–शरीरमग्राह्यमनिर्देश्यम्। यतो वाचो निवर्तन्ते। अप्राप्य मनसा सह। यत्केवलं ज्ञानगम्यम्। प्रज्ञा च यस्मात्प्रसृता पुराणी। यदेकमद्वितीयम् ॥

(शाण्डिल्योपनिषत् २)

श्रुत्यर्थ–जो सत्य विज्ञान स्वरूप अनन्त ब्रह्म राम है जिसमें यह सब ओत-प्रोत है। जिसको यह सब सत्य हैं ऐसा विचार कर जिसके जान लेने से यह सब जाना जाता है, वह इस प्रकार है, विना चरण के चलता है, विना हाथों के, विना चक्षु के, विना श्रोत्र के, विना जिह्वा के है, अशरीर, जो ग्रहण नहीं हो सकता, जो कथन में नहीं आ सकता, जहाँ से मन सहित वाणी उसे प्राप्त न करके लौट आती है, जो केवल ज्ञान से हीं अनुभव में आता हैं। उसीसे यह शुद्ध बुद्धि जो आतम ज्ञान को ग्रहण करने योग्य है, प्रकट हुई हैं। जो ब्रह्मादि परम्परा से चली आती हैं, वह भक्तों के हित के लिए दशरथ के पुत्र कोसलपति भगवान् है। 'भगवान्' अर्थात् षडैश्वर्य युक्त। यथा–

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा ॥

(विष्णु पु० ६।५।७४-नारदपु० ४६।६७)

भावार्थ–जो समस्त ऐश्वर्यवान हो, पूर्ण धर्मवान् हो, पूर्ण कीर्तिमान् हो, पूर्ण लक्ष्मीवान् हो, पूर्णज्ञानवान् हो, सम्पूर्ण वैराग्य युक्त हो, जिसमें यह छः भग हो वह भगवान् हैं। श्रीरामचन्द्रजी में यह छः भग हैं, क्रम से उदाहरण। यथा–

(१) ऐश्वर्य=दो० रामराज नभगेस सुनु, सचराचर जग माहि।
काल कर्म सुभाउ गुन, कृत दुख काहुहि नाहि ॥७।२१॥

ऐश्वर्यं स्वस्य पूजनात (श्रीराम पू० ता० उ० १।५) अर्थात् श्रीराम अपने दिव्य विग्रह की पूजा करने पर ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ॥

(२) धर्म=चौ० चारिउ चरन धरम जग माहीं। पूरि रहा सपनेहु अघ नाहीं ॥७/२१/२
राज्यार्हाणां महीभृताम्। धर्ममार्गं चरित्रेण ॥ (श्रीराम पू० ता० उ० १/५)

अर्थात् वे राज्य पाने के अधिकारी महीपालों को अपने आदर्श चरित्र के द्वारा धर्ममार्ग का उपदेश देते हैं ।। अथवा-रामो विग्रहवान् धर्मः ।।

(३) यश=चौ० सकुल सदल प्रभु रावन मारयो । पावन जस त्रिभुवन बिस्तारयो ।। ६/११६/२

छं-कहि नेति निगम पुरान आगम जासु कीरति गावहीं (राम० वा०-५१ छं० २ पंत)

(४) श्रीः दो० रमानाथ जहँ राजा, सो पुर वरनि कि जाइ ।
अनिमादिक सुख संपदा, रहीं अवध सब छाइ ।।७/२९।।
श्रीधरं श्रीकरं श्री शं श्रीनिवासं परात्परम् ।। (श्रीरामस्तवराज श्लो० ३७)

अर्थात् श्रीको धारण करने वाले, श्रीं की प्राप्ति कराने वाले, श्री के निवास (लक्ष्मी) के स्वामी परात्पर श्रीराम को नमस्कार ।।

(५) ज्ञान =चौ० नीति प्रीति परमारथ स्वारथु । कोउ न राम सम जान जथारथु ।।
अथवा-तुरीयमेव केवलं ।।३/४/९, विशुद्ध बोध विग्रहं ।।३/४/५
गतक्रोध सदा प्रभु बोधमय ।।६/१११/३
... । ग्यानधाम श्रीपति असुरारी ।। (राम० वा० ५१/१)

ज्ञानमार्गं च नामतः । श्रुति (श्रीराम पू० ता० उ० १/५) अर्थात् नाम उच्चारण करने पर ज्ञान मार्ग की प्राप्ति कराते हैं ।।

(६) वैराग्य=दो० नव गयंदु रघुवीर मनु, राजु अलान समान ।
छूट जानि बन गवनु सुनि, उर अनंदु अधिक न ।।२/५१

अथवा-राजिव लोचन राम चले तजि बाप को राज बटाउ की नाईं (कविता)

तथा ध्यानेन वैराग्यम् । श्रुति (श्रीराम पू० ता० उ० १/५) अर्थात् ध्यान करने पर वैराग्य देते हैं ।।

अथवा-चौ० २ पृष्ठ २०/चौ०२३ पृष्ठ ५६ । पर अवलोकन करें ।

मूल चौ० कासीं मरत जंतु अवलोकी । जासु नाम बल करउ बिसोकी ।।
सोइ प्रभु मोर चराचर स्वामी । रघुबर सब उर अंतरजामी ।।३०।।

अर्थ—(हे प्राणप्रिये उमे ?) जिनके नाम के बल से मैं काशी के जीवों को मरते हुए देखकर अर्थात् उनके प्राणों के निकलने का समय जानकर उन्हें (राममन्त्र देकर) शोक रहित कर देता हूँ (मुक्त कर देता हूँ) वे ही मेरे प्रभु अर्थात् इष्टदेव हैं, चराचर के स्वामी रघुवर और सबके हृदय के भीतर की जानने वाले हैं ।।३०।।

प्रश्नः—हे प्रभो ? 'कासी मरत जन्तु अवलोकी । जासु नाम बल करउ बिसोकी'।। कहने का क्या अभिप्राय है ?

उत्तर—हे प्रिय वत्स ! इसके विषय में श्रुति इस प्रकार कहती हैं । यथा—

श्रुति–अत्र हि जन्तो, प्राणेषूत्क्रममाणेषु रुद्रस्तारकंब्रह्मव्याचष्टे येनासावमृतीभूत्वा मोक्षी भवति। (श्रीरामोत्तत ता० उ० १।१।–तारसा०उ० १-जावाल०उ० १)

श्रुत्यर्थ–यहीं (काशी जी में) जींव के प्राण निकलते समय भगवान् रुद्र तारक (राम) ब्रह्मका उपदेश करते हैं, जिससे वह अमृत मय होकर मोक्ष प्राप्त कर लेता है ॥ 'सोइ प्रभु मोर चराचर स्वामी।' अर्थात् श्रीशिवजी कहते हैं कि जीवों को मुक्त करने का सामर्थ्य उन्हीं (श्रीराम) ने मुझको दिया है, यह प्रभुत्व उन्हीं का है। वही जड़-चेतन सभी का पालन पोषण करते हैं, सभी के स्वामी हैं। 'सब उर अंतर जामी।' अर्थात्—

श्रुति–कूटस्थाद्युपहितभेदानां स्वरूपलाभ हेतुर्भूत्वा।
मणिगणसूत्रमिव सर्वं क्षेत्रेष्वनुस्यूतत्वेन
यदा प्रकाशत आत्मा तदान्तर्यामीत्युच्यते ॥ (अथर्वणीय सर्वसार० उ० ३)

श्रुत्यर्थ–जैसे सूत्र में मणियाँ पिरोई हुई हैं, वैसे ही सब क्षेत्रों (देहों) में उपाधि भेद से कूटस्थ हीं अपर स्वरूप लाभ के लिये जब प्रकाशित होता है तब आत्मा को अन्तर्यामी कहते हैं ॥

मूल चौ० राम सो परमात्मा भवानी। तहँ भ्रम अति अविहित तव बानी ॥
अस संसय आनत उर माहीं। ग्यान बिराग सकल गुन जाहीं ॥३१॥

अर्थ—(हे शिवे)? वही परमात्मा श्रीरामचन्द्रजी अद्वैत स्वरुप है। उनमें भ्रम (द्वैत देखना वा कहना वा उनके प्रति तुम्हारे भ्रम) के वचन अत्यन्त ही अनुचित हैं वेद विरुद्ध हैं। ऐसा सन्देह (संशय) हृदय में लाते ही मनुष्य के ज्ञान-वैराग्य आदि समस्त सद्गुण चले (अर्थात् नष्ट हो) जाते हैं ॥३१॥

प्रश्नः—श्री गुरुदेव? 'राम सो परमात्मा भवानी।' कहने का क्या रहस्य है?

उत्तर—हे सौम्य? इसको श्रुति इस प्रकार कहती है। यथा—

श्रुति–एतद्वस्तुचतुष्टयं यस्य लक्षण देशकाल वस्तु निमितेष्वव्यभिचारि।
स तत्पदार्थः परमात्मा परं ब्रह्मेत्युच्यते ॥ (सर्वसार० उ० ४)

श्रुत्यर्थ–चारों पदार्थ (विराट्, सूत्रात्मा, ईश्वर और ब्रह्म वा धर्म, अर्थ काम और मोक्ष) जिसके लक्षण (स्वरूप) हैं। जो देश, काल और वस्तु परिच्छेद से रहित हैं उसतत् पदार्थ के अर्थ को परमात्माराम कहते हैं। 'तहँ भ्रम अति अविहित तव-वानी ॥' अर्थात्-भ्रम की वाणी यह हैं। यथा—

दो० जौ नृप तनय त ब्रह्म किमि। १।१०८॥ अथवा अद्वैत राम में द्वैत देखना ही वेद विरुद्ध है।

अथवा–दुःखहर्षभयक्रोधलोभमोह मदादयः ॥५१॥
अज्ञानलिङ्गान्येतानि कुतः सन्ति चिदात्मनि। अध्यात्म रामायण ६।१।५१,५२)

भावार्थ–दुःख, हर्ष, भय, क्रोध, लोभ, मोह, मद इत्यादि अज्ञान के ही लिङ्ग (चिन्ह) हैं; चिदात्मा राम में ये कैसे हो सकते हैं ?

प्रश्नः—हे स्वामिन् ? 'अस संसय आनत उर माहीं। ग्यान बिराग सकल गुन जाहीं॥ कहने का क्या भाव है ?

उत्तर—हे सुव्रत ? भाव है कि ऐसा (राम कोउ आना) संशय हृदय में लाना बड़ा भारी पाप है। अथवा-हेशिवे ? राम ही अपनी आत्मा हैं सो अपने में भ्रम होना बड़ा अनुचित हैं।

अथवा–श्रीरामजी ज्ञान-वैराग्यादि गुणों के मूल कारण हैं। जब कारण में ही भ्रम हो गया तब कार्य में ज्ञान-वैराग्य कैसे रह सकते हैं। भ्रम से सब चल देते हैं अथवा नाश हो जाते हैं। इस ध्वनि से यह एक प्रकार का श्रीशिवजी का श्रीदाशरथि राम में उनकी लीला और धाम में अद्वैत नहीं मानने वाले वा संशय करने वालों के लिये शाप ऐसा सिद्ध होता है॥

मू. चौ० सुनि सिव के भ्रम भंजन बचना। मिटिगै सब कुतरक कै रचना॥
भइ रघुपति पद प्रीति प्रतीती। दारुन असंभावना बीती॥३२॥

अर्थ—शिवजी के भ्रम नाशक वचनों को सुनकर पार्वती जी की सब कुतर्कों की रचना मिट गई॥ उनको श्रीरघुनाथजी के चरणों में प्रेम और विश्वास हो गया, और कठिन असम्भावना (जिसका होना सम्भव नहीं) ऐसी मिथ्या कल्पना जाती रही॥३२॥

प्रश्नः—हे भगवन् ? 'सुनि सिव के भ्रम भंजन वचना। मिटि गै सब कुतरक कै रचना॥ कहने का क्या तात्पर्य हैं ?

उत्तर हे प्रिय दर्शन ? सो० सुनि गिरिराज कुमारि। १।११५ से उपक्रम हैं और 'सुनि सिव के भ्रम भंजन वचना॥, यह उप संहार है-इन वचनों को सुनने से "'कुतरक कै रचना' अर्थात्—

दो० ब्रह्म जो व्यापक बिरज अज, अकल अनीह अभेद।
सो कि देह धरि होइ नर,जाहि न जानत वेद॥१।५०॥
जौं नृप तनय त ब्रह्म किमि,इत्यादि कुतर्क मिट गई।
और 'दारुण असम्भावना बीती॥' अर्थात् कठिन असम्भावना (राम-ब्रह्म नहीं हैं तथा जीवात्मा ब्रह्म नहीं होता) जाती रही और फिर—

मूल दो० पुनि पुनि प्रभुपद कमल गहि, जोरि पंकरुह पानि।
बोली गिरजा वचन बर, मनहुं प्रेम रस सानि॥१।११९॥

अर्थ—वार-वार प्रभु (शशिभूषण मन्मथारि भक्त भयहारी, संशय निवारी श्रीशिवजी) के चरण कमलों को पकड़कर और अपने कर कमलों को जोडकर श्रीं गिरिराज नन्दिनी सुन्दर वचन मानों प्रेम रस में सानकर बोलीं ॥१।११६॥

प्रश्नः—हे प्रभो ? 'पुनि पुनि प्रभु पद कमल गहि' इस दोहे का क्या अभिप्राय हैं ?

उत्तर हे प्रिय वत्स ? वार-वार चरण कमलों को पकडकर जनाती है कि इन्हीं के प्रसाद से मैं सुखी हुई। यथा-सुखी भयउँ प्रभुचरन प्रसादा ॥१/१२०/२॥

अथवा–'कवि' श्री शिवजी में पार्वती जी की भक्ति मन, क्रम, और वचन तीनों से दिखाते हैं। 'चरण पकडना और हाथजोडना, 'कर्म भक्ति' बोली गिरजा बचन वर' यह वचन की भक्ति है और प्रेम रस' से सानना यह मन की भक्ति है। प्रेम होना मन का धर्म है। प्रेम रस से सान कर सुन्दर वचन बोलीं। यथा—

मू- चौ० ससि कर सम सुनि गिरा तुम्हारी। मिटा मोह सरदा तप भारी॥
तुम्ह कृपाल सब संसय हरेऊ। राम स्वरूप जानि मोहि परेऊ ॥३३॥

अर्थ—आपकी चन्द्रमा की किरणों के समान शीतल वाणीं सुनकर मेरा भारी मोहरूप शरदा तप (क्वाँर की धूप) का ताप मिट गया। हे कृपालो ? आपने मेरा सव सन्देह हर लिया, अब श्रीरामचन्द्रजी का यथार्थ स्वरूप मेरी समझ में आ गया ॥३३॥

प्रश्नः—श्री गुरुदेव ? 'ससि कर सम सुनि गिरा तुम्हारी।' कहने का क्या रहस्य है ?

उत्तर—हे सौम्य ? यहां वाणी को शशि किरण कहकर मुख को शशी जनाया। यथा—

दो० नाथ तवानन ससि स्रवत, कथा सुधा रघुवीर। ७।५२ (ख)

'मिटा मोह सरदातप भारी।' अर्थात्-शशि किरण में मृग तृष्णा का भ्रम भी नहीं होता, अन्धकार भी मिटता हैं और शरद के चित्रा की कडी धूप का ताप भीं मिटता है। 'सब संसय हरेऊ।' अर्थात् अपार संशय जो हुआ था, यथा—

'अस संसय मन भयउ अपारा।' १/५०/२। वह सब हर लिया।

श्रुति–अविद्यायाः परं पार तारयसीति।

नमः परम ऋषिभ्यो नमः परम ऋषिभ्यः॥ (प्रश्नोपनिषत् ६।८)

श्रुत्यर्थ–जिन आपने विद्यारूपी नौकाके द्वारा हमें अविद्या से अर्थात् जन्म, जरा, व्याधि और दुःखादि ग्रहों के कारण जो अपार है, उस भवसागर से उस और 'पर' पार के समान अपुनरावृत्तिरूप मोक्ष संज्ञक दूसरे पार पर पहुंचा दिया, अतः ब्रह्म संम्प्रदाय के प्रवर्तक ऋषियों को 'नमस्कार हो, नमस्कार हो।' (द्विरुक्त आदर सूचक हैं)

'राम स्वरूप जानि मोहि परेऊ॥' अर्थात् संशय दूर हुआ, तब रामस्वरूप की प्राप्ति हुई, जिससे विषाद दूर हुआ। तब कहा—

मू. चौ० राम ब्रह्म चिन्मय अबिनासी। सर्ब रहित सब उर पुर बासी ॥

नाथ धरेउ नर तनु केहि हेतू। मोहि समुझाइ कहहु बृषकेतू ॥ ३४॥

अर्थ—श्रीराम जी ब्रह्म हैं, चिन्मय (ज्ञानस्वरूप), अविनाशी (एक रस) हैं, सबसे रहित अर्थात् निर्लिप्त और सबके हृदयरूपी नगरी में निवास करने वाले हैं। फिर हे भूतनाथ गणनाथ ! दीनानाथ ! उन्होंने मनुष्य शरीर किस कारण से धारण किया ? हे धर्मो की ध्वजा धारण करने वाले प्राणेश ? यह मुझे समझाकर कहिये ? ॥३४॥

प्रश्न:—हे स्वामिन्? राम ब्रह्म चिन्मय अविनासी। सर्व रहित सब उर पुर बासी ॥' कहने का क्या भाव है ?

उत्तर—हे सुव्रत ! श्रीराम जी को श्रुति ऐसा कहती हे। यथा—

श्रुति—ततो विशुद्धं विमलं विशोक मशेष लोभादि निरस्त सङ्गम् ॥

(गोपाल पू० ता० उ० १/८)

श्रुत्यर्थ—विशुद्ध, निर्मल, शोक रहित, समस्त लोभ आदि सङ्ग से रहित वह आत्मा राम हैं।

प्रश्नः—हे भगवन् ? 'नाथ धरेउ नर तनु केहि हेतू।' कथन का क्य रहस्य है ?

उत्तर—हे प्रिय दर्शन ? रहस्य है उमा कहती है ऐसा ब्रह्म नरतन कैसे धरता हैं ? ब्रह्म तो वृहत हैं। यथा—श्रुति-अखण्ड मण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ॥ अर्थात् जो अखण्ड, मण्डलाकार हैं, चर और अचर में व्याप्त हे वह एक देशीय और वह भी छोटे से शरीर वाला, अतिलघु स्थूल शरीर वाला। तथा जो अविनाशी हैं वह नाशवान् नरतन (मनुष्य) कैसे होता है ? जो सर्व रहित है, वह सब उर पुर वासी कैसे ?

अथवा—पहले पार्वती जी ब्रह्मराम को निर्गुण-निराकार ही मानती थीं, अब श्रीराम जी का स्वरूप जान गई। यथा-'राम स्वरूप जानि मोहि परेऊ ॥' अब संशय नहीं है कि राम ब्रह्म है या नहीं। राम स्वरूप में जो सन्देह था वह तो निवृत्ति हो गया। परन्तु ब्रह्म के अवतार में अभीं सन्देह है। अब राम कथा और देह धारण का कारण जानने की इच्छा है। यह प्रश्न शशाङ्क शेखर शिवजी को प्रिय लगा। यथा—

मूल दो० हियँ हरषे कामारि तब संकर सहज सुजान।

बहु बिधि उमहि प्रसंसि पुनि, बोले कृपानिधान ॥१।१२० (क)

अर्थ—तब कामदेव के शत्रु, स्वाभाविक ही सुजान, कृपानिधान श्री शिवजी मन में बहुत ही हर्षित हुए और बहुत प्रकार से पार्वती जी की बडाई करके फिर बोले। १/१२०(क)

प्रश्न:—हे भगवन् ? 'हियँ हरषे कामारि तब' कथन का तात्पर्य हैं ?

उत्तर—हे प्रिय दर्शन ? पार्वती जी के बचन प्रेम रस साने तथा कथा में पुनीत प्रेम देखकर हर्ष हुआ, 'कामारि' अर्थात् कामनाओं के नष्ट करने वाले। यथा

'यदासर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदिश्रिताः, श्रुतिः (कठोप० उ० २।३।१४)
अथवा–कथा के वक्ताको काम रहित, शान्त, सुजान और रामभक्त होना चाहिए। जो वक्ता ऐसा होता हैं उसकी कथा से श्रोताओं का कल्याण होता हैं।

'बहूविधि उमहि प्रसंसि पुनः' अर्थात् धन्य हो, इतना कष्ट सहने पर भी जब तक सन्देह निवृत्त नहीं हुआ, तब तक प्रश्न करना न छोड़ा, फिर 'बोले कृपा निधान ॥' अर्थात् उमा जी पर कृपा करिके रामचरित्र सुनाकर इसी बहाने जगत्मात्र पर कृपा कर रहे हैं, और अवतार का हेतु बताते हैं। यथा—

मू. चौ० जब जब होइ धर्म की हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी ॥
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा ॥३५॥

अर्थ—जब जब धर्म का ह्रास होता है, और नींच अधर्मी, अभिमानी असुर बढ़ जाते हैं। तब तब दया सागर प्रभु तरह-तरह के दिव्य शरीर धारण कर सज्जनों की पीडा हरते हैं ॥३५॥

प्रश्नः—हे प्रभो ? 'जब-जब हंइ घरम की हानी।' कहने का क्या अभिप्राय है ?
उत्तर—हे प्रिय वत्स ? श्री गीता आदि ग्रन्थों में भी यही हेतु कहा। यथा—

यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजास्यहम् ॥ गी० ४।७)

हे भारत ! जब जब धर्म की हानि और अधर्म कीं वृद्धि होती है तब तब ही मै अपने रूप को रचता हूँ अर्थात् प्रकट करता हूँ ॥ 'बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी ॥' अर्थात् अधम अभिमानी असुरों कीं बाढ़ ही धर्म की हानि का हेतु हैं।

प्रश्नः—श्री गुरुदेव ? तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा।' कहने का क्या रहस्य है ?
उत्तर यथा चौ० मीन कमठ सूकर नर हरी। वामन परसुराम बपुधरी ॥
जब जब नाथ सुर ह दुख पायो। नाना तनु धरि तुम्हइँ नसायो ॥६।११०।४
जिस तरह से पीडा हरते हैं, सो अब कहते हैं। यथा—

मूल दो० असुर मारि थापहिं सुरन्ह, राखहिं निज श्रुति सेतु।
जग बिस्तारहि बिसद जस, राम जन्म कर हेतु ॥१।१२१॥

अर्थ—वे असुरों को मारकर देवताओं को स्थापित करते हैं। अपने वेदों की मर्यादा की रक्षा करते हैं और जगत् में अपना निर्मल यश फैलाते हैं। श्रीरामचन्द्र जी के अवतार का यह कारण है ॥१।१२१॥

प्रश्नः—हे स्वामिन् ? 'असुर मारि थापहिं मुरन्ह' कहने का क्या भाव है ?
उत्तर—हें सुव्रत ! श्री गीताजी आदि ग्रन्थों में भी यही अवतार का कारण कहा है। यथा—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥ (श्री गी० ४।८)

अर्थ—साधु पुरुषों का उद्धार और दूषित कर्म करने वालों का नाश करने तथा-धर्म स्थापन करने के लिये युग-युग में प्रकट होता हूँ ॥

'राखहिं निज श्रुति सेतु ।' अर्थात् वेद की मर्यादा भगवान् की बाँधी हुई हैं । यथा–

छं० श्रुति सेतु पालक राम तुम्ह जगदीस······ ।२।१२६।

'जग बिस्तारहिं बिसद जस' अर्थात् अपने निर्मल यश से जगत् को पवित्र करते हैं। यथा-चौ० 'चरित पवित्र किसे संसारा ॥१।१२३।२ यह सन्तों का कार्य करते हैं क्योंकि 'सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं । कृपा सिंधु जनहित तनु धरहीं ॥१।१२२।१' ये सब राम जन्म के हेतु हैं तथा अन्य हेतु बताते हैं । यथा–

*** श्रीमनु–शतरूपा प्रकरण ***

मू.चौ० अपर हेतु सुनु सैल कुमारी । कहउँ बिचित्र कथा बिस्तारी ॥
जेहि कारन अज अगुन अरूपा । ब्रह्म भयउ कोसलपुर भूपा ॥३६॥

अर्थ—हे गिरिनन्दिनि पार्वती ! अब भगवान् के अवतार का दूसरा कारण सुनो । मैं विस्तार पूर्वक उसकी विचित्र कथा कहता हूँ ॥ जिस कारण से जन्म रहित, निर्गुण और रूप रहित ब्रह्म अवधपुरी के राजा हुए ॥३६॥

प्रश्नः—हे भगवन् ? 'अपर हेतु सुनु' कथन का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर हे प्रिय दर्शन ? तात्पर्य है कि राम जन्म के हेतु अनेक और विचित्र हैं । यथा—

चौ० राम जनम के हेतु अनेका । परम बिचित्र एकते एका ॥१।१२२।१

उनमें से तीन हेतु कहे-जय विजय, जलधर और नारद । तीनों को कहकर अब अन्य हेतु कहते हैं, जेहि कारण अज अगुन अरूण । ब्रह्म भयउ ··· यथा—

श्रुति–नित्यः सर्वत्रगो ह्यात्मा कूटस्थो दोष वर्जितः । (अन्न पूर्ण० उ० ५।७५)
एकः संभिद्य ते शक्तया मायया न स्वभावतः ॥ जाबाल दर्शन उ० १०।२)
तस्मादद्वैतमेवाहुर्मुनयः परमार्थतः ।
(इत्यार्ष अद्भुत रामायणे उत्तर का० सांख्य यो० ११ सर्ग)

श्रुत्यर्थ–वस्तुतः आत्मा नित्य, सर्वव्यापी, कूटस्थ, दोष रहित तथा अद्वितीय हैं । यह माया शक्ति से ही भेद या नानात्व को प्राप्त होता है, स्वरूप से नहीं । इसलिए ऋषि-मुनियों ने अद्वैत को ही पारमार्थिक सिद्धान्त बताया है । वही राम हैं ।

मू.चौ० स्वायंभू मनु अरु सतरूपा । जिन्ह तें भै नर सृष्टि अनूपा ॥
दंपति धरम आचरन नीका । अजहुँ गाव श्रुति जिन्ह कै लीका ॥३७॥

अर्थ—स्वयम्भू मनु और (उनकी पत्नी) शतरूपा, जिनसे मनुष्यों की यह अनुपम सृष्टि हुई, इन दोनों पति पत्नी के धर्म और आचरण बहुत अच्छे थे। आज भी वेद जिनकी मर्यादा का गान करते हैं ॥३७॥

प्रश्न:—हे प्रभो ? 'स्वयंभू मनु अरु सतरूपा' कहने का क्या अभिप्राय है ?

उत्तर—हे प्रिय वत्स ? श्री मद्भागवत स्कंध ३ आध्याय १२ में सृष्टि की उत्पति का वर्णन है। ब्रह्माजी से अविद्या माया, सनकादि ऋषि, रुद्र, मारीच आदि दश मानस पुत्र क्रमशः उत्पन्न किये। परन्तु इनसे सृष्ठि की वृद्धि न होते देख, श्री ब्रह्माजी दैव की शरण गये, त्योंही उनके शरीर के दो भाग हो गये। यथा—

श्रुति—स वै नैव रेमे तस्मादेकाकी न रमते स द्वितीयमैच्छत्। स हैतावानास यथा स्त्रीपुमाꣳसौ संपरिष्ठक्तौ स इममेवात्मानं द्वेधाऽपातयत्ततः पतिश्च पत्नी चाभवतां तस्मादिदमर्धबृगलमिव स्व इति ह स्माह याज्ञवल्क्यस्तस्मादयमाकाशः स्त्रिया पूर्यंत एव ताꣳसमभवत्ततो मनुष्या अजायन्त ॥३॥ (बृ० उ० १।४।३

श्रुत्यर्थ—वह रमण नहीं कर सका, इसी कारण अब भी एकाकी पुरुष रमण नहीं करता उसने दूसरे की इच्छा की। जिस प्रकार परस्पर आलिङ्गित स्त्री और पुरुष होते हैं, वैसा ही उसका परिमाण हो गया। उसने इस अपने देह के ही दो भाग किये। उससे पति (मनु) और पत्नी (शतरूपा) हुए, इसलिये यह शरीर अर्द्ध बृगल (अन्न के द्विदल) के समान हैं, ऐसा याज्ञवल्क्य ने कहा। इसलिये यह (पुरुषार्द्ध) आकाश स्त्री से पूर्ण होता है, उस स्त्री पुरुष से मनुष्य सृष्टि उत्पन्न हुई। इति श्रुतिः।

मू. सो०-होई न विषय बिराग, भवन बसत भा चौथपन।
हृदय बहुत दुःख लाग, जनम गयउ हरि भगति बिनु ॥१।१४२॥

अर्थ घर में रहते हुए बुढापा आगया, परन्तु विषयों से वैराग्य न हुआ, (इस बात को सोच कर) उनके मन में बडा दुःख हुआ कि जन्म हरि भक्ति बिना व्यर्थ बीत गया ।१।१४२।

प्रश्नः—श्रीं गुरुदेव ? 'होइ न विषय बिराग, भवन बसत भा चौथपन।' कहने का क्या रहस्य हैं ?

उत्तर—हे सौम्य ? चौथापन वैराग्य का समय है। चौथेपन में राजाओं के लिए बन जाने को नीति शास्त्र कहता है। चौ० संत कहहिं असि नीति दसानन। चौथेपन जाइहि नृप कानन ॥६।७।२ 'अंतहु उचित नृपहि बनबासू ।२।५६।२ अतः जब चौथापन आया तब भी वैराग्य उत्पन्न नहीं हुआ। 'जनम गयउ हरि भगति बिनु ॥' अर्थात् वैराग्य न हुआ, जन्म हरि भक्ति बिना व्यर्थ बींता जा रहा है। 'हृदय बहुत दुख लाग' अर्थात् भोग-भोगते-भोगते युग के युग बीत गये, घर में वसते हुए चौथापन आगया, अतः विषय भोग और भवन में बने रहने-इन दोनों की ओर से ग्लानि हुई। क्योंकि धर्म से सुख भोग प्राप्त होता हैं, भगवत् प्रेम नहीं, और बिना प्रेमा भक्ति के मुक्ति नही। यथा-

दो० बिनु हरि भजन न भव तरिय, यह सिद्धांत अपेल ॥७।१२२ (क) ऐसा विचार कर

मू.चौ.–बरबस राज सुतहि तब दीन्हा। नारि समेत गवन बन कीन्हा॥

तीरथ बर नैमिष बिख्याता। अति पुनीत साधक सिधि दाता ॥३८

अर्थ—तव मनु जी ने अपने पुत्र को हठात् राज्य देकर स्वयं स्त्री सहित वन को गमन किया। अत्यन्त पवित्र और साधकों को सिद्ध देने वाला तीर्थों में श्रेष्ठ नैमिषारण्य प्रसिद्ध है वहाँ जाकर तप किया ॥३८॥

प्रश्न– हे स्वामिन् ! 'बरबस राज सुतहि तब दीन्हा। नारि समेत गवन बन कीन्हा॥ कथन का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर–हे सुव्रत ! पुत्र राज्य नहीं लेना चाहता था, उसे वल थूर्वक राज्य दिया और 'नारि समेत गवन बन कीन्हा' अर्थात् रानी का पातिव्रत धर्म दिखाया और जनाया कि उन्होंने वानप्रस्थ धर्म धारण किया। 'तीरथ वर नैमिष विख्याता।' अर्थात् यह स्थान अवध के सीतापुर जिले में है। इसके सम्बन्ध में वाराह पु० में आया है कि इस स्थान पर गौरमुख नामक मुनि ने निमिष मात्र में असुरों की वड़ी भारी सेना भस्म कर दी थी, इसीलिये इसका नाम नैमिषारण्य पड़ा। 'अति पुनीत साधक सिद्धि दाता॥' अर्थात् साधक लोग सिद्धि पाकर सिद्ध हो जाते हैं और साधन रहित होकर वसते हैं। विषयी, साधक और सिद्ध तीन प्रकार के जीव संसार में हैं। चौ० विषयी साधक सिद्ध सयाने। त्रिविध जीव जग वेद वखाने॥ २।२२७।२ इनमें से यहाँ केवल साधक और सिद्ध वसते हैं; विषयी नहीं अतः दो का वसना कहा। इसीसे वहाँ जाकर तपकिया और–

मू. चौ० उर अभिलाष निरंतर होई। देखिअ नयन परम प्रभु सोई॥

अगुन अखंड अनंत अनादी। जेहि चिंतहिं परमारथ बादी ॥३९।

अर्थ—हृदय में निरन्तर यह अभिलाषा हुआ करती कि हम (कैसे) उन पर ब्रह्म-परमात्मा को आँखों से देखें, जो निर्गुण, अखण्ड, आदि और अन्त (अर्थात् जन्म-मरण) से रहित हैं, जिनका चिन्तन परमार्थवादी (ब्रह्मज्ञानीतत्त्ववेत्ता) लोग करते हैं ॥३९॥

प्रश्नः—हे भगवन् ? 'परम प्रभु सोइ।' कथन का क्या भाव हैं ?

उत्तर—हे प्रिन दर्शद भाव है 'सोइ' का जिस प्रभु को सुमिरते हैं उस अद्वैत ब्रह्म सच्चिदानन्द घन को आँखों से देखें। 'अगुन अखंड अनंत अनादि।' अर्थात् इसकेलिये श्रुति ऐसा कहती है। यथा–

श्रुति–अखिलकार्यकारण स्वरूपमखण्डचिद्घनानन्दस्वरूपमतिदिव्यमङ्गलाकारं निरतिशयानन्दतेजोराशिविशेषं सर्वपरिपूर्णानन्त चिन्मयास्तम्भाकारं शुद्धबोधानन्द विशेषाकारमनन्तचिद्विलासविभूति समष्ट्याकारमङ्गलानन्दाश्चर्य विभूति विशेषाकारमनन्त परिपूर्णानन्ददिव्यसौदामिनीनिचयाकारम्। एवमाकारमद्वितीयाखण्डानन्द ब्रह्मस्वरूपं निरूपितम्।

(त्रिपाद्वि भूति महानारायण० उ० ४)

श्रु त्यर्थ—वह ब्रह्म समस्त कार्य-कारण स्वरूप, अखण्ड चिद्घनानन्द स्वरूप, अति दिव्य मङ्गलाकार, निरतशय आनन्दरूप, तेजोराशि विशेष, सर्वपरिपूर्ण, अनन्त चिद्विलासमय विभूति का समष्टिरूप, अद्भु त आनन्दमय, आश्चर्य पूर्ण, विभूत विशेषस्वरूप, अनन्त-चिन्मयस्तम्भाकार, शुद्ध ज्ञान आनन्द विशेष स्वरूप, अनन्त परिपूर्णानन्द मय दिव्य विद्यु न्माला स्वरूप है। इस प्रकार ब्रह्म का अद्वितीय, अखण्डानन्द मय स्वरूप वर्णित हुआ।। उसको आँखों से देखें ।। अथवा—

श्रुति–साक्षी चेता केवलो निर्गु णश्च ।। (श्वेता० उ० ६।११)

अर्थात्–जो सबका साक्षी, सबको चेतनत्व प्रदान करने वाला शुद्ध और निर्गु ण हैं, उसको नेत्रों द्वारा देखें। तथा—

मू. चौ० नेति नेति जेहि बेद निरूपा। निजानंद निरुपाधि अनूपा।।
संभु बिरंचि बिष्नु भगवाना। उपजहि जासु अंस से नाना।।४०।।

अर्थ—जिन्हें वेद 'नेति-नेति' (यह भी नहीं, यह भी नहीं) कहकर निरूपण करते हैं। जो आनन्द स्वरूप, उपाधि रहित और उपमा रहित हैं। जिनके अंश से अनेकों शिव, ब्रह्मा और विष्णु भगवान् प्रकट होते हैं।।४०।।

प्रश्न:—हे प्रभो ? 'नेति नेति जेहि बेद निरूपा।' कहने का क्या अभिप्राय है ?

उत्तर–यथा–श्रु ति–जींवेश्चरौं मायिकौ विज्ञाय सर्वविशेषं नेति नेतीति विहाय यदवशिष्यते तदद्वयं ब्रह्म ।। (अद्वैयतारको पनिषद्)

श्रु त्यर्थ - जींव- ईश्वर को मायिक जानकरके और सर्वविशेष 'नहीं हैं नहीं है' ऐसा त्याग करके जो अब शेप बचे वह अद्वय ब्रह्म हैं।। अथवा-कारण नहीं, कार्य नहीं, स्थूल नहीं-सूक्ष्म नहीं, सत् नहीं-असत्-नही, साकार नहीं-निराकार नहीं इत्यादि 'नेति-नेलि से कहा। 'निजानन्द' अर्थात् पहले जो कहा 'नेति-नेति' यह भी नहीं, यह भी नहीं, ऐसे निपेध से कोई अभावात्मक न समझले, इसलिए निजानन्द अर्थात् स्वस्वरूपानन्द अपना स्वरूप ही कहा।

प्रश्नः श्री गुरुदेव ? 'सभु विरंचि बिष्नु भगवाना। उपजहि जासु अंस भे नाना।।' कहने का क्या रहस्य है ?

उत्तर—हे सौम्य ? यही श्रु ति कहती हैं। यथा—

श्रु ति–कविं पुराणं पुरुषोत्तमोत्तमं सर्वेश्वरं सर्वदेवैरुपास्यम्।
अनादिमध्यान्तमनन्तमव्ययं शिवाच्युताम्भोरुह गर्भभूधरम् ।।
(नारद परि ब्राजक० उ० ९।१७)

श्रु त्यर्थ वह कवि (त्रिकालज्ञ). पुराण पुरुष तथा सबसे उत्तम है। वही सबका ईश्वर तथा सम्पूर्ण देवताओं द्वारा उपासना करने योग्य है। वह आदि, मध्य, और अन्त रहित है।

उनका कभी विनाश नहीं होता। वही शिव-विष्णु तथा कमल जन्मा ब्रह्मा रूपी अनेक वृक्षों को प्रकट करने वाला महान् भूधर (पर्वत) है।

अथवा–ब्रह्मा विष्णु महेशाद्या यस्यांशा लोक साधकाः।
तमादि देवं श्रीरामं विशुद्धं परमं भजे ॥ (स्कंद पु०)

भावर्थ—ब्रह्मा, बिष्णु, महेश आदिक लोंक साधक अर्थात् सृष्टि पालन, संहार कर्ता जिसके अंश हैं, उस आदि देव परम विशुद्ध श्रीराम को भजता हूँ ॥

मू. चौ० एहि बिधि बीते बरष षट्, सहस बारि आहार।
संवत सप्त सहस्र पुनि, रहे समीर अधार ॥१।१४४॥

अर्थ—इस प्रकार जल का आहार करके तप करते छः हजार वर्ष बीत गये। फिर सात हजार वर्ष वे वायु के आधार पर रहे ॥१।१४४॥

प्रश्नः—हे स्वामिन् ? 'एहि बिधि बीते बरष षट् सहस' कहने का क्या भाव है ?

उत्तर हे सुव्रत ? उत्तरोत्तर कठिन तप करते जाते हैं यह दिखा रहे हैं। जल आहार कठिन हैं यह तप छः हजार वर्ष किया। उस से कठिन पवन का आहार-उसे सात हजार वर्ष किया। इस तरह यहाँ मनुजी के तप की तीन कोटियां (दर्जे) दिखाई। (१) अन्न का त्याग-शाकादि का आहार,(२) केवल जलाहार,(३) पवनाहार-यह उत्तरोत्तर तप कहा।

मू. चौ० बिधि हरि हर तप देखि अपारा। मनुसमीप आए बहु बारा ॥
मागहु बर बहु भांति लोभाए। परम धीर नहिं चलहिं चलाए ॥४१॥

अर्थ—उनका अपार तप देखकर ब्रह्मा, विष्णु, और महेश कई बार मनुजी के पास आए। उन्होंने इन्हें अनेक प्रकार से लालच दिया और कहा कि वर मांगों पर ये परमधैर्यवान् अपने तपसे किसी के डिगाये नहीं डिगे ॥४१॥

प्रश्नः—हे भगवन् ? 'बिधि हरि हर तप देखि अपारा' कथन का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—हे प्रिय दर्शन ? तप के फल दाता त्रिदेव हैं, इसी से वे मनुजी के पास आए। कर्म फल देने में बिधाता मुख्य हैं। यथा–

चौ० कठिन कर्म गति जान बिधाता। जो सुभ असुभ सकल फल दाता ॥२।२८२।२

इसीसे बिधि को पहले लिखा। 'तप देखि अपारा।' अर्थात् तप का पार नहीं, यह वर पाकर तप छोड़ दें। इसलिये मनुजी के पास 'बहु' (तीन) बार आए।

प्रश्नः—हे प्रभो ? 'माँगहु बर बहु भाँति लोभाए।' कहने का क्या अभिप्राय हैं ?

उत्तर—हे प्रिय वत्स ? अभिप्राय हैं कि जो आप की इच्छा हो सो माँग लो। और अनेक प्रलोभन दिए, ब्रह्माजीं ने ब्रह्मलोक का प्रलोभन दिया, शिवजी ने कहा कैलाश चलो, बिष्णु भगवान् ने कहा तुम वैकुण्ठ पधारो। अथवा-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष (सालोक्य सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य-चारों के माँगने) का लोभ दिखाया।

यदि कोई कामना नही है तो कैवल्य मोक्ष मांगलो इत्यादि लोभ दिये। परन्तु लोभ में नहीं पड़ते, तप नही छोड़ते, वे ब्रह्मादि से वर नही मांगते।

मू.चौ० प्रभु सर्वग्य दास निज जानी। गति अनन्य तापस नृप रानी।।

मागु मागु बरु भै नभ बानी। परम गभीर कृपामृत सानी।।४२।।

अर्थ — सबके हृदय की जानने वाले प्रभु ने तपस्वीं राजा-रानी को अनन्य गति देखि उनको निज दास जाना। तब परम गम्भीर और कृपारूपी अमृत से सनी हुई। यह आकाश वाणी हुई कि ' 'बर मांगो' 'बर मांगो' ।।४२।।

प्रश्न:—श्री गुरुदेव ? 'प्रभु सर्वग्य दास निज छाती। गति अनन्य।' कथन का क्या रहस्य है ?

उत्तर — हे सौम्य ? 'सर्वज्ञ' हैं। यथा—सर्वश्चासौज्ञश्चेति 'सर्वज्ञ' अर्थात् जो सर्व हैं और ज्ञाता हैं वह सर्वज्ञ है। सर्वं जानातीति सर्वज्ञः। सर्वज्ञः सर्वविन्। (मुण्ड० उ० १।१।९) इति श्रुतिः। अर्थात् सब कुछ जानते हैं इसलिये सर्वज्ञ है। श्रुति कहती है जो सर्वज्ञ और सर्वविद् है। 'गति अनन्य' अर्थात् हमको छोडकर दूसरी गति नहीं है। यथा— तुम्हहि छाडि गति दूसर नाहीं ।।२।१३०।३

प्रश्न — हे स्वामिन् ? त्रिदेव राजा के समीप आए और परम प्रभु की आकाशवाणीं हुई, वे समीप न आए, इसका क्या कारण है ?

उत्तर हे सुव्रत ? कारण है कि जैसे रूप के दर्शन की चाह दास की होगी वैसा रूप धरकर प्रकट होंगे, यद्यपि प्रभु सर्वज्ञ हैं, दास कीं रुचि जानते है, परन्तु प्रभु का यही नियम है कि दास मुख से जो कहे वही करें। आगे जैसा मनुजी ने कहा वैसे ही रूप से प्रकट हुए। अतः आकाशवाणी हुई, कृपारूपीं अमृत से सनी हुई। यथा—

मूल दो० श्रवन सुधासम बचन सुनि, पुलक प्रफुल्लित गात।

बोले मनु करि दंडवत, प्रेम न हृदयँ समात ।।१।१४५।।

अर्थ - कानों में अमृत के समान वचन सुनते ही उनका शरीर पुलकित और प्रफुल्लित हो गया। तब मुनीजी दण्डवत करके बोले प्रेम हृदय में समाता नहीं था ।।१।१४५।।

प्रश्न: हे भगवन् ? 'श्रवन सुधा सम वचन सुनि' कहने का क्या भाव है ?

उत्तर—हे प्रिय दर्शन ? अमृत सदृश्य वाणी ने शरीर को पुष्ठ और सुन्दर कर दिया, यह आकाशवाणी का कृत कहा। फिर राजा का कृत कहते हैं, मुख से प्रभु का दर्शन मागते हैं, यथा 'बोले मनु' शरीर से 'दंडवत्' करते हैं, 'हृदय' में भगवान् का 'प्रेम' है। भाव है कि राजा-रानी मन, वचन, और कर्म से शरण हुए। और बोले। यथा—

मू.चौ० सुनु सेवक सुरतरु सुरधेनू। बिधि हरि हर बंदित पद रेनू।।

जौं अनाथ हित हम पर नेहू। तौं प्रसन्न होइ यह बर देहू ।।४३।।

अर्थ हे प्रभो ? सुनिये, आप सेवकों के लिये कल्पवृक्ष और कामधेनु हैं । आपकी चरणरज की ब्रह्मा, विष्णु और शिवजी भी वन्दना करते हैं । हे अनाथों के कल्याण करने वाले यदि हम पर आप का स्नेह हैं, तो प्रश्न होकर यह वर दीजिये ॥४३॥

प्रश्नः - हे प्रभों ? 'सेवक सुरतरु सुरधेनू' कहने का क्या अभिप्राय हैं ?

उत्तर—हे प्रियवत्स ? सुरतरु और सुरधेनू-दोनों की उपमादी, यह दोनो मनोरथपूर्ण करने वाले हैं । प्रथम सुरतरु सम कहा, फिर सोचे कि कल्पवृक्ष तो स्थावर है, जब कोई उसके पास जाय तब वह मनोंरथ को पूरा करें, और हम वहाँ पहुंचने में असमर्थ हैं, आप तक पहुंच नहीं सकते, आप ही कृपा करके हमारे पास आकर हमारे मनोरथ पूर्ण करें, इस लिये सुरधेनु सम कहा ।

प्रश्नः—श्री गुरुदेव ? 'विधि हरि हर बंदित पद रेनू ॥' कथन का क्या रहस्य है ?

उत्तर—हे सौम्य ? त्रिदेव आपके चरण रज की वन्दना करते हैं, अर्थात् जिनकी सेया, ब्रह्मादि करते हैं, वे परम प्रभु स्वयं सेवक की सेवा करते हैं क्योंकि प्रभु सेवक की रुचि पूरी करते हैं ।

प्रश्नः—हे स्वामिन् ? 'जौं अनाथ हित हम पर नेहू ।' कहने का क्या भाव हैं ?

उत्तर—हे सुव्रत ? भाव है कि भगवान् अनाथ पर कृपा करते हैं । यथा

चौ० तात कबहूं मोहि जानि अनाथा । करिहहि कृपा भानुकुल नाथा ॥५।७।१॥

यदि आप हमारे ऊपर प्रसन्न हैं तो यह वर दीजिये, कहते हैं, यथा—

मू चौ० जो सरूप बस सिव मन माहीं । जेहि कारन मुनि जतन कराहीं ॥
जो भुसुंडि मन मानस हंसा । सगुन अगुन जेहि निगम प्रसंसा ॥४४॥

अर्थ—आपका जो स्वरूप शिवजी के मन में बसता है और जिस (की प्राप्ति) के लिए मुनि यत्न करते हैं । जो काकभुशण्डिजी के मनरूपी मानसरोवर में बिहार करने वाला हंस हैं, सगुण और निर्गुण कहकर वेद जिसकी प्रशंसा करते हैं ॥४४॥

प्रश्नः—हे भगवन् ? 'जो सरूप बस सिव मन माही ।' कहने का क्या तात्पर्य हैं ?

उत्तर—हैं प्रिय दर्शन ? ब्रह्म को आँख से देखना चाहते हैं, ब्रह्मअशरीर हैं, इसी से कहा था कि भक्तों के लिये 'लीला तनु गहई' पर लीला तनु तो चतुर्भुज, शेषशायी, अष्टभुज, भूमा पुरुष, सहस्रभुज, विराट् पुरुष, मच्छ, कच्छ, वाराह नृसिंह इत्यादि अनेक हैं, तुम किस लीला तन का दर्शन चाहते हो, इस पर कहते हैं कि जो स्वरूप शिवजी के मन में बसता है, जिस स्वरूप के लिए मुनि यत्न करते हैं कि हमारे हृदय में बसे । 'सगुन अगुन जेहि निगम प्रसंसा ।' अर्थात्-वेद निर्गुण ब्रह्म का निरूपण करते हैं, यथा—

चौ० नेति नेति जेहि वेद निरूपा ॥१।१४४।३॥ और सगुण ब्रह्म की प्रसंसा करते हैं ।

छं० अवतार नर संसार भार विभंजि दारुन दुख दहे । (७।१३ छं० २) सगुण और निर्गुण को श्रुति यों कहती है । यथा—

श्रुति-यथा सर्वगतस्य निराकारस्य महावायोश्च तदात्मकस्य त्ववयतित्वेन प्रसिद्धस्य साकारस्य महावायु देवस्य चाभेद एव श्रूयते सर्वत्र। ...अन्यथा सर्वपरिपूर्णस्य परब्रह्मणः परमार्थः साकारं बिना केवल निराकारत्वं यद्यभिमतं तर्हि केवल निराकारस्य गगनस्येव परब्रह्मणोऽपि जडत्वमापद्येत। तस्मात्परब्रह्मणः परमार्थतः साकार निराकारौ स्वभाव सिद्धो। (त्रिपाद्वि भूति महानारायण० उ० २)

श्रुत्यर्थ-जैसे सर्वव्यापी निराकार महावायु का और उसी के स्वरूपभूत त्वक् इन्द्रिय के अधिष्ठाता रूप में प्रसिद्ध साकार महावायु-देवता का अभेद ही सब कहीं सुना जाता है। ...अन्यथा यदि सर्व परिपूर्ण परब्रह्म का साकार रहित केवल निराकार स्वरूप ही वास्तव में अभिप्रेत हो, तब तो केवल निराकार आकाश के समान परब्रह्म में भी जड़ता आ जायगी। इसलिये परमार्थतः परब्रह्म के साकार एवं निराकार दोनों रूप स्वभावतः सिद्ध हैं। इस प्रकार जिस ब्रह्म की साकार-निराकार रूप से वेद गायन करते हैं, उन्हीं परम प्रभु को आखों से देखें। यथा—

मू.चौ.—देखहिं हम सो रूप भरि लोचन। कृपा करहु प्रनतारति मोचन।
भगत बछल प्रभु कृपा निधाना। बिस्वबास प्रगटे भगवाना ।।४५।।

अर्थ—हे शरणागत के दुःख मिटाने वाले प्रभो ? ऐसी कृपा कीजिये। कि हम उसी रूप को नेत्र भर कर देखें। भक्तवत्सल, दयासागर, सम्पूर्ण विश्व के निवास स्थान (या समस्त विश्व में व्यापक) प्रभु (सर्वसमर्थ) प्रकट हो गये ।।४५।।

प्रश्न:—हे प्रभो ? 'देखहिं हम सो रूप भरि लोचन।' कहने का क्या अभिप्राय है ?

उत्तर: हे वत्स ? अभिप्राय है कि जो रूप शिवादि के हृदय में बसता है, वही रूप हम प्रत्यक्ष नेत्र भर कर देखें, आप प्रणत कीं आर्ति हरते हैं, हम प्रणत हैं हमारी आर्ति हरण कीजिए। क्योंकि आप भक्त वत्सल हैं, कृपाके समुद्र हैं।

प्रश्न:—श्री गुरुदेव ? 'विस्ववास प्रगटे भगवाना ।।' कथन का क्या रहस्य हैं ?

उत्तर—हे सौम्य ? रहस्य हैं कि वे कहीं अन्यत्र से नहीं आए, उनका वास तो विश्वभर में है, वे वहीं से, उसी जगह, जहाँ के तहाँ ही प्रकट हो गये। अथवा जिनका मन्त्र जपते थे और जिनके दर्शनों की अभिलाषा से तप कर रहे थे वह अभी तक गुप्त थे सो अब प्रकट हो गये। श्रुति भी ऐसा ही कहती है। यथा –

श्रुति-तंतथा यथोपासते तथैवभवति। तस्माद् ब्राह्मणः पुरुषरूपं ।।
पर ब्रह्मैवाहमिति भावयेत। तद्रूपोभवति। य एवं वेद ।। (मुद्गलोपनिषत् ३।३)

श्रुत्यर्थ-इस ब्रह्म की जो जिस भाव से उपासना करता है, वह परम तत्त्व उसके लिए उसीरूप का हो जाता है। इसलिए ब्रह्मज्ञानीं को पुरुषरूप परम ब्रह्म 'मैं ही हूँ' यह भावना करनी चाहिए। ऐसी भावना से वह उसी स्वरूप को प्राप्त हो जाता हैं और जो इस रहस्य को इस प्रकार जानता है वह भीं तद्रूप हो जाता है ।। उनके प्रकट होने में यह श्रुति हैं।

श्रुति–एको देवौ बहुधा निविष्ट अजाय मानो बहुधा विजायते। (मुद्गल० उ० ३।१)

अर्थात्–एक ही देव बहुत प्रकार से प्रविष्ट होकर स्वयं अजन्मा रहते हुए भी बहुत प्रकार से प्रकट होता है॥ जिस स्वरूप से प्रकट हुए वह कहते हैं। यथा—

मूल दो० नील सरोरुह नील मनि, नील नीरधर स्याम।

लाजहि तन सोभा निरखि, कोटि कोटि सत काम॥१।१४६॥

अर्थ– भगवान् के नीले कमल, नीलमणि और नील (जलयुक्त) मेघ के समान (कोमल, प्रकाशमय और सरस) श्यामवर्ण (चिन्मय) तन की शोभा देखकर करोड़ों-अरबों कामदेव भी लज्जित हो जाते हैं॥१।१४६॥

प्रश्न: हे स्वामिन् ? 'नील सरोरुह नील मनि, नील नीरधर स्याम।' कथन का क्या भाव है ?

उत्तर—हे सुव्रत ? भाव है कि नीले कमल के समान कोमल और सुगन्धित, नीलमणि के समान चिक्कन और दीप्तिमान् और नीले मेघ के समान गम्भीर श्याम शरीर हैं, एक उपमा में ये सब गुण नहीं मिले, इससे तीन उपमायें दी।

अथवा–संसार में जल, थल और नभ ये तीन स्थान हैं, इन तीनों स्थानों की एक-एक वस्तु की उपमा दी। जल से कमल की, पृथिवी से मणि की और आकाश से मेघ की उपमा दी। इन तीनों नीलिमाओं की शोभा सलोने श्याम सुन्दर में हैं।

प्रश्नः—हे भगवान् ? 'लाजहिं तन शोभा निरखि, कोटि कोटि सतकाम॥' कहने का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर– हे प्रिय दर्शन ? श्याम तन के लिये उपमा पर उपमा देते गये, फिर भी समानता न देखकर अन्त में कहा कि 'लाजहि' ऐसा कहकर उपमेय का अनुपम, अद्वितीय होना दिखाया। 'कोटि-कोटि सत' असंख्य अर्थात् संख्या रहित का वाचक है, तात्पर्य यह है कि जैसा शरीर का रंग और शोभा है वह तो किसी से कहते नहीं बनती, उपमा जो दी गई वह किञ्चित एक देश में जानिये, नहीं तो निरुपम की उपमा कैसी? अद्वितीय की समता कहां ?

श्रुति–श्यामः पीतवासा। द्विभुजः कुण्डली रत्नमाली धीरो धनुर्धरः॥ प्रसन्न वदनः। (श्रीराम पू० ता० उ० ३।७)

भावार्थ–उनका वर्ण श्याम है वे पीताम्बर धारण किये हुए हैं। उनके दो भुजायें हैं। कानों में कुण्डल शोभा पा रहे हैं। गले में रत्नों की माला चमक रही है। वे स्वभावतः धीर (निर्भय एवं गम्भीर) हैं। धनुष धारण किये हुए हैं। उनके मुख पर सदा प्रसन्नता छायी रहती है। ॥इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकल कलिकलुष विध्वंसने॥

* बाल काण्डान्तर्गत द्वितीयः सोपानः समाप्तः *

अथ तृतीय--सोपान

मूल चौ० जासु अंस उपजहिं गुन खानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानीं॥
भृकुटि विलास जासु जग होई। रामबाम दिसि सीता सोई॥४६॥

अर्थ— जिनके अंश से गुणों की खान अगणित लक्ष्मी, पार्वती, और ब्रह्मानी (त्रिदेवों की शक्तियाँ) उत्पन्न होती हैं, तथा जिनकी भौंहके इशारे से हीं जगत् की रचना हो जाती हैं, वही (भगवान् की स्वरूपा शक्ति) श्री सीताजीं श्रीराम की वागीं ओर स्थित है।४६।

प्रश्नः—हे प्रभो? 'जासु अंस उपजहिं गुन खानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी॥' कहने का क्या अभिप्राय है?

उत्तर—हे प्रिय वत्स? यह आदि शक्ति की व्याख्या है। जैसे श्रीरामजी के अंश से नाना ब्रह्मादि उत्पन्न होते हैं, यथा-शंभु बिरंचि बिष्नु भगवाना। उपजहिं जासु अंस तें नाना॥१।१४४।३ वैसे ही श्रीसीताजी के अंश से अगणित, रमा उमा, ब्रह्माणी उत्पन्न होती हैं। वहाँ 'नाना' यहाँ 'अगणित' वहाँ संभु आदि यहाँ रमा आदि।

प्रश्नः—श्री गुरुदेव? भृकुटि विलास जासु जग होई।' कथन का क्या रहस्य हैं?

उत्तर हे सौम्य? यह जगमूला की व्याख्या हैं। भृकुटि बिलास अर्थात् कटाक्षमात्र से जगत् उत्पन्न होता हैं। अथवा-'जग होई' अर्थात् जगत् का व्यापार-सृष्टि, पालन और लय होता है। यथा—

श्रुति-श्रीराम सान्निध्यवशाज्जगदानन्ददायिनी।
उत्पत्तिस्थिति संहार कारणी सर्व देहिनाम्॥३।
सासीता भवतिज्ञेया मूलप्रकृति संज्ञिता।
प्रणवत्वात् प्रकृतिरिति वदन्ति ब्रह्मवादिनः॥४॥

(सीतोपनिषत्-श्रीरामोत्तर ता० उ० ३, ४)

श्रुत्यर्थ-श्रीराम के सामीप्यमात्र से जो सम्पूर्ण देह धारियों की उत्पत्ति, पालन और संहार करने वाली हैं। वे जगदानन्ददायिनी विदेहनन्दनी सीता नाद-बिन्दु स्वरुपा हैं। वे हीं मूल प्रकृति के नाम से जानने योग्य हैं। प्रणव से अभिन्न होने के कारण हीं उन्हें ब्रह्म वादी जन 'प्रकृति' कहते हैं। इन्हीं के अंश से गुणों की खान अगणित लक्ष्मीजी, पार्वतीजी, एवं ब्रह्माणीजी उत्पन्न होंती हैं। 'राम वाम दिसि सीता सोई॥' अर्थात् इनको श्रुति इस प्रकार कहती है। यथा—

श्रुति-भगवत्सहचारिण्यनपायिन्यनवरतसहाश्रयिण्युदितानुदिताकारा

निमेषोन्मेषसृष्टि स्थिति संहार निरोधानानुग्रहादि
सर्व शक्ति-सामर्थ्यात्साक्षाच्छक्तिरिति गीयते ॥ (सीतोपनिषत् ६)

अत्यर्थ—श्री भगवान् के साथ चलने वाली (उनके संकल्प से ही गति करने वाली) श्रीभगवान् से कभी विलग न होने वाली एवं अविनाशिनी, निरन्तर श्रीभगवान् के साथ का ही आश्रय करने वाली, कहे हुए और न कहे हुए सभी स्वरूपों वाली, निमेष-उन्मेष से लेकर सृष्टि, स्थित, संहार तिरोधान, अनुग्रह आदि समस्त सामर्थ्यों से युक्त होने के कारण साक्षात् शक्ति रूपा में वर्णित होती हैं ॥आदिशक्ति के साथ दर्शन दिया और कहा-

मूल दो० बोले कृपानिधान पुनि, अति प्रसन्न मोहि जानि ।
मांगहु बर जोइ भाव मन, महादानि अनुमानि ॥१।१४८॥

अर्थ—फिर कृपानिधान भगवान् बोले-मुझे अत्यन्त प्रसन्न जानकर और बडा भारी दानी मानकर, जो मनको भाये वही वर माँगलो ॥१।१४८॥

प्रश्नः—हे स्वामिन् ? 'अति प्रसन्न मोहि जानि ।' कहने का क्या भाव है ?

उत्तर—हे सुव्रत ? भाव हैं कि जो तुमने माँगा, सो तो हमने दे दिया, पर हम प्रसन्न ही नहीं किन्तु अति प्रसन्न हैं, इसीसे हम-तुम से कहते हैं कि और भी जो कुछ चाहो सो माँग लो । दर्शन देने मात्र से हमें सन्तोष नहीं हुआ, अतः और भी माँगलो, कृपा की बलिहारी यथा—

चौ० जासु कृपा नहीं कृपा अघाती ॥१।२८।२॥ जो तुम माँगो सो दें ।

'महादानि अनुमानि ॥' अर्थात्-महादानी समझकर वर माँगों, सङ्कोच न करो । इस पर मनुजी बोले । यथा—

मू. चौ० एक लालसा बडि उर माहीं । सुगम अगम कहि जाति सो नाहीं ॥
तुम्ह हि देत अति सुगम गोसाई । अगम लाग मोहि निज कृपनाइ ॥४७

अर्थ—मेरे हृदय में एक बहुत बडी लालसा हैं उसका पूरा होना सहज भी हैं और अत्यन्त कठिन भी, इसीसे उसे कहते नही बनता । हे स्वामिन् आपके लिए तो उसका पूरा करना बहुत सहज है, पर मुझे अपनी कृपणता के कारण वह अत्यन्त कठिन मालूम होती है ॥४७॥

प्रश्नः—हे भगवन् ? 'एक लालसा बडि उर महीं ।' कहने का क्या तात्पर्य हैं ?

उत्तर—हे प्रिय दर्शन ! लालसा एक ही है जों पूर्व थी वही है दूसरी नहीं है । प्रथम रूप प्रकट होने की थी, अब उसके सदा संयोग की है इसी से यह बडी हैं । 'सुगम अगम कहि जाति सो नाहीं ।' अर्थात् इतनी अगम हैं कि वर माँगने की बात मुँह से भी कही नहीं जाती ।

अथवा–सुगम है या अगम यह भी कहा नहीं जा सकता। परन्तु 'तुम्हिं देत अति सुगम गोसाई।' अर्थात् दानी को सुगम है, और आप तो महादानी ठहरे, अतएव आपके लिये उसका देना अति सुगम है। 'गोसाई' अर्थात् आप तो 'गौ' (कामधेनु के) स्वामीं हैं। परन्तु 'अगम लाग मोहि निज कृपनाई ।।' अर्थात् अपनीं कृपणता के कारण वह लालसा हमें इतनी अगम लग रही है, कि मुँह से निकालने में भी सङ्कोच होता है (मुझे जान पडता है कि आप शायद न दें सकें) इसी से मांगा नहीं जाता। और कहते हैं। यथा—

मू. चौ० सो तुम्ह जानहु अंतरजामी। पुरवहू मोर मनोरथ स्वामी ।।
सकुच बिहाइ मागु नृप मोही। मोरे नहि अदेय कछु तोही ।।४८।।

अर्थ—हे स्वामिन् ? आप अन्तर्यामी हैं, इसलिये उसे जानते हीं हैं। मेरा वह मनोरथ पूरा कीजिए (भगवान् ने कहा-) हे राजन् ? सङ्कोच छोडकर मेरे को माँगलो। तुम्हें न दे सँकू ऐसा मेरे पास कुछ भी नहीं है ।।४८।।

प्रश्नः—हे प्रभो ? 'सो तुम्ह जानहु अतरजामी।' कहकर क्या प्रदर्शित किया है ?

उत्तर—हे प्रिय वत्स ? प्रदर्शित करते हैं कि मैं आंपके प्रभाव को नहीं जानता, मैं ज्ञानरङ्क हूँ, आप मेरे हृदय को जानते हैं, क्योंकि आप अन्तर्यामीं हैं। यथा—

अहंहि सर्वभावानामन्तस्तिष्ठामि सर्वगः।
माँ सर्व साक्षिणं लोका न जानन्ति प्लवंगम ।।

(अद्भुत रामायण उत्तर का० सर्ग १३)

(श्रीरामजी भी ऐसा ही कहते हैं–हनुमान जी के प्रति) कवि श्रेष्ठ ? मै हीं सम्पूर्ण पदार्थो के भीतर अन्तर्यामीरूप से स्थित हूँ, सर्वत्र व्याप्त हूँ। मैं हीं सबका साक्षी हूँ। किन्तु संसार के लोग मुझे इस रूप में नहीं जानते ।। इससे कहते हैं मै ज्ञानरङ्क हूँ आप सब जानते हैं मेरे हृदय की लालसा पूरी करें।

प्रश्नः श्री गुरुदेव ? 'सकुच बिहाइ मागु नृप मोही।' कथन का क्या रहस्य है ?

उत्तर—हे सौम्य ? प्रभु अन्तर्यामीं हैं, इसी से कहते हैं कि सङ्कोच छोडकर मुझे हीं माँगलो। इसपर मनुजी बोले। यथा—

मू. दो० दानि सिरोमनि कृपानिधि, नाथ कहउँ सतिभाव।
चाहउँ तुम्हहि समान सुत, प्रभुसनकवन दुराउ ।।१।१४६।।

अर्थ—राजाने कहा-हे दानियों में शिरोमणि ? हे कृपा के भण्डार ? हे नाथ ? मैं अपने मन का सच्चा भाव कहता हूँ, कि मैं आपके समान पुत्र चाहता हूं। प्रभु से भला क्या छिपाना ।।१।१४६।।

प्रश्नः—हे स्वामिन् ? 'दानि सिरोमनि कृपानिध, नाथ कहउँ सति भाउ।' कहने का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—हे सुव्रत ? भगवान् ने कहा था 'महादानि अनुमानि' इसी से कहा-दानि सिरोमनि' जो कृपा का पुञ्ज हो वही दानि शिरोमणि होता हैं, इसीसे कहा कृपानिधि' और आप समस्त ब्रह्माण्ड नायक हैं इसीसे कहा 'नाथ'। यहाँ पर यह प्रश्न उठ खड़ा होता है कि जिसकी सन्तान से सृष्टि भरी पड़ी हैं, वह सुत क्यों माँगता है ? अतः कहते हैं 'सतिभाउ' अर्थात् मुझे प्रभु को देखकर लालसा हुई है कि मेरे ऐसा पुत्र हो यह मैं सही कह रहा हूँ।

प्रश्नः—हे भगवन् ? 'चाहउँ तुम्हहि समान सुत, प्रभुसन कवन दुराउ ॥' कहने का क्या तात्पर्य हैं ?

उत्तर—हे प्रिय दर्शन ? भगवान् के इतने कहने पर 'सकुच बिहाइमागु नृपमोही' सङ्कोच बना ही रहा, स्पष्ट यह न कहकर कि आप मेरे पुत्र हों, सङ्कोचवश उनके समान पुत्र होने का वर माँगा। अथवा-राजा जानते है कि भगवान् अद्वैत स्वरूप हैं, उनके समान कोई हैं ही नही पहले कह हीं आये हैं। यथा—

चौ० नेति नेति जेहि वेद निरूपा। निजानंद निरुपाधि अनूपा ॥१।१४४।३॥

जब अनूपा हैं, उपमा कोई है हीं नहीं। तब समान कहाँ हो सकता है। यथा—
जेहि समान अतिसय नहिं कोई।३।६।४ अर्थात् अद्वितीय हैं, इसीसे कहते हैं, प्रभु से क्या छिपाना। ऐसी प्रीति देखकर प्रभु ने कहा। यथा

मू. चौ० देखि प्रीति सुनि बचन अमोले। एवमस्तु करुना निधि बोले ॥
आपु सरिस खोजौं कहँ जाई। नृप तब तनय होब मैं आई ॥४६॥

अर्थ—राजा की प्रीति देखकर और उनके अमूल्य वचन सुनकर करुणानिधि भगवान् बोले-ऐसा ही हो। हे राजन् ? मै अपने जैसा (दूसरा) कहाँ जाकर खोजूँ ? अतः मै ही आकर तुम्हारा पुत्र बनूँगा ॥४६॥

प्रश्नः—हे प्रभो ? 'बचन अमोले।' कहने का क्या अभिप्राय है ?

उत्तर—हे प्रिय वत्स ? ब्रह्मा और देवादि से पिता-भाव के बचन सुनते हैं, पर यह पुत्र भाव के अपूर्व बचन आज ही सुने। अतः अमूल्य हैं।

अथवा-कोई भुक्ति चाहता हैं, कोई मुक्ति और कोई भक्ति चाहता है, मनुजी ने इनमें से कुछ नहीं चाहा, बालरूप से प्रभु को गोद खिलाने और लालन पालन का सुअवसर चाहा ऐसी बात चाही जिससे जगत् का कल्याण हुआ, जिसकी कोई क़ीमत नहीं। अतः इस बचन के पीछे प्रभु स्वयं बिक गये, और कह दिया एवमस्तु, और 'आप सरिस खोजों कहँ जाई। नृप तव तनय होब मै आई ॥' अर्थात् मेरे समान तो कोई है ही नहीं

'एक मेवा द्वितीयं ब्रह्म' इति श्रुति (पैंङ्गलोपनिषद् १।१) इस प्रकार मैं ही तुम्हारा पुत्र होऊँगा, और कहा। यथा—

मूल चौ० इच्छामय नरबेष संवारे। होइहउँ प्रगट निकेत तुम्हारे ॥

अंसन्ह सहित देहधरि ताता। करिहउँ चरित भगत सुख दाता ॥५०॥

अर्थ-- इच्छा निर्मित मनुष्यरूप सजकर मैं तुम्हारे घर प्रकट होऊँगा। हे तात ? मै अपने अशों सहित देह धारण करके भक्तों को सुख देने वाले चरित्र करूँगा ॥५०॥

प्रश्नः—श्री गुरुदेव ? 'इच्छामय नरवेष सँवारे।' कथन का क्या रहस्य है ?

उत्तर—हे सौम्य ? 'नर' का अर्थ है, पाञ्चभौतिक माया मय शरीर वाला इसलिये कहते हैं कि मेरा नर शरीर मायामय पाञ्चभौतिक नहीं होगा। तथा जीवों की तरह कर्म का परिणाम वह शरीर नहीं होगा, किन्तु इच्छामय नरवेप होगा। यथा—

दो० निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गो पार।१।१६२॥

अथवा-श्रुति–स्वभूर्ज्योतिर्मयोऽनन्तरूपो स्वेनैव भास्ते ॥ (श्रीराम पू० ता० उ० २।१)

भावार्य -- भगवान् किसी कारण की अपेक्षा न रखकर स्वतः प्रकट होते या नित्यविद्यमान रहते हैं, इसलिए 'स्वभू' कहलाते हैं। चिन्मय प्रकाश ही उनका स्वरूप है, अतः वे ज्योतिर्मय हैं। रूपवान होते हुए भी अनन्त हैं, देश, काल और वस्तु की सीमा से परे हैं। उन्हें प्रकाशित करने वाली कोई दूसरी शक्ति नहीं है, वे अपने ही प्रकाश से प्रकाशित होते हैं।

प्रश्नः—हे स्वामिन् ? 'अंसन्ह सहित देह धरि ताता।' कहने का क्या भाव है ?

उत्तर—हे सुव्रत ! भाव है कि इनसे रहित हमारा चरित्र सुन्दर नहीं बनेगा। अथवा-मेरे अंश (विराट्, हिरण्य गर्भ और ईश्वर हैं। उनके सहित तुरीय रूप से देह धारण करूंगा, उनमें से विराट अंश जो पृथिवी को धारण करते हैं सो लक्ष्मणजी के रूप में हिरण्यगर्भ अंश जो शत्रुओं के हन्ता शत्रुघ्न के रूप में। ईश्वर अंश जो पृथिवी का भरण-पोषण करते हैं सो भरत जी के रूप में और मैं स्वयं तुरीय पुरुषोत्तम रामरूप अवतार लूंगा) और भक्तों को सुख देने वाले अद्वितीय चरित्र भी करूंगा।

मू.चौ० जे सुनि सादर नर बड़ भागी। भव तरिहहिं ममतामद त्यागी ॥

आदि शक्ति जेहि जग उपजाया। सोउ अवतरिहि मोर यह माया ॥५१॥

अर्थ – जिन (चरित्रों) को बड़े भाग्यशाली मनुष्य आदर सहित सुनकर, ममता और मद त्याग कर, भव सागर से तर जायेंगे। आदि शक्ति यह मेरी (स्वरूपभूता) माया भी जिसने जगत् को उत्पन्न किया है, अवतार लेगी ॥५१॥

प्रश्नः—हे भगवन् ? 'जे सुनि सादर नर बड़ भागी। भव तरिहहिं ममतामद त्यागी।' कहने का क्या तात्पर्य है ?

उत्तरः—हे प्रिय दर्शन ? तात्पर्य है कि जो अभागे हैं वे न सुनेगें । यथा—

चौ० अतिखल जे बिषई बग कागा । एहि सर निकट न जाहिं अभागा ॥ १।३८।१

आदि पुरुष परमात्मा कहते हैं कि मेरे अद्वितीय चरित्र (रामचरितमानस अद्वैतवाद) को बड भागी (श्रेष्ठ भाग्यवान्) पुरुष आदर सहित सुनकर ममता जो बन्धन का कारण हैं और उसका त्याग मोक्ष का कारण हैं । यथा—ममता = मेरा—

श्रुति–ममेति वध्यते जन्तुर्नममेति मुच्यते ॥

(वाराह० उ०–२।४४, मह० उ०–४।७२, पैङ्गलोपनिषत् ४।२०)

मद = अभिमान, बन्धका कारण है उसका त्याग मोक्ष है । यथा—

श्रुति–देहादीनात्मत्वेनाभि मन्यते सो अभिमान आत्मनो बन्धस्तन्निवृत्ति मौक्षः ।

(सर्वसार० उ० १)

अर्थात् रामचरित अद्वैतवाद के सुनने से ममता और मद का नाश होने पर भव (जन्म-मृत्यु) से पार हो जायेंगे । अर्थात् ममता-मद-जन्म-मरण के कारण हैं, अतएव इनका त्याग होना कहकर फिर भव सागर से तरना कहा ।

प्रश्न–हे प्रभो ? 'आदि शक्ति जेहिं जग उपजाया । सो अवतरिहि मोरि यह माया ॥ कहने का क्या अभिप्राय है ?

उत्तर–हे प्रिय वत्स ! आदि शक्ति के लिये श्रुतियाँ कहती हैं । यथा—

श्रुति–मूलप्रकृतिरूपत्वात्सा सीता प्रकृतिः स्मृता ।
प्रणवप्रकृतिरूपत्वात्सा सीता प्रकृतिरुच्यते ।
सीता इति त्रिवर्णात्मा साक्षान्मायामयीभयेत् । (सीतोपनिषत् १)

श्रुत्यर्थ–मूल प्रकृति स्वरूपा होने के कारण वे सीताजी ही प्रकृति कहलाती है । वे सीताजी प्रणव (राम) की प्रकृति स्वरूपा होने से भी प्रकृति कही जाती है । 'सीता' यह उनका नामात्मक रूप तीन वर्णो का है, और वे साक्षात् योगमाया स्वरूपा हैं ॥

मू. दो० यह इतिहास पुनीत अति, उमहि कही बृषकेतु ।
भरद्वाज सुनु अपर पुनि, राम जनम कर हेतु ॥१।१५२॥

अर्थ—(याज्ञवल्क्यजी कहते हैं–) हे भरद्वाज ? इस अत्यन्त पवित्र इतिहास (अद्वैतवाद) को धर्मध्वजशिवजी ने उमा से कहा था । अब और भी श्रीराम के अवतार लेने का कारण सुनो ॥१।१५२॥

प्रश्नः—श्रीगुरुदेव ? यह इतिहास पुनीत अति' कथन का क्या रहस्य है ?

उत्तर—हे सोम्य ? यह इतिहास सामान्य मनुष्यों का नहीं हैं, यह तो साक्षात् पर ब्रह्म परमात्मा अद्वैत स्वरूप श्रीराम का है । इस से पुनीत हीं नहीं, अति पुनीत हैं क्योंकि अद्वैतवाद हैं ।

प्रश्न—हे स्वामिन ? 'उमहि कही बृषकेतु।' कथन का क्या रहस्य है ?

उत्तर—हे सुव्रत ? यह मनु-शतरूपा प्रकरण 'लगे वहुरि वरनै बृषकेतू १।१४१.४ से उपक्रम करके यहाँ 'उमहि कही बृषकेतु।' उपसंहार किया। 'भरद्वाज सुनु अपर पुनि' अर्थात् 'अपर' और दूसरा, तथा पश्चात्। भाव है श्रीराम के अवतार के एक हेतु तो श्रीमनु-शतरूपाजी हुए, उन्हीं के अवतार का अन्य हेतु अब कहते हैं।

(देवताओं का अभय दान) यथा—

मू. दो०—जानि सभय सुर भूमि सुनि, बचन समेत सनेह।
गगन गिरा गंभीर भइ, हरनि सोक संदेह ॥१।१८६॥

अर्थ देवताओं और पृथ्वी को भयभीत जानकर और उनके प्रेमयुक्त वचन सुनकर शोक तथा संदेह को हरने वाली गम्भीर आकाशवाणी हुई ॥१।१८२॥ +

~~अर्थ—हे भगवन्~~ ? भगवान् की प्रतिज्ञा है। 'अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम' देवता आदि भयभीत हैं इसी से शोक और संदेप हारिणी आकाशवाणी हुई। 'गगन गिरा गंभीर भइ' अर्थात् इसमें अक्षर थोड़े हैं, पर अर्थ अधिक है। अथवा बोलने वाला अदृश्य है और शब्द सुनाई पड़ रहा है, कितने ऊपर से वाणी आ रही है इसकी थाह न होने से गगन गिरा गम्भीर कहा। गगन गिरा ने कहा। यथा—

मू.चौ०—जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा। तुम्हहि लागि धरिहउँ नर वेसा॥
अंसन्ह सहित मनुज अवतारा। लेहउँ दिनकर बंस उदारा ॥५२॥

अर्थ हे मुनिसिद्ध और देवताओं के स्वामियों ? डरो मत। तुम्हारे लिये मैं मनुष्य का रूप धारण करूँगा, और उदार (पवित्र) सूर्यवंश में ा़शों अ, उ, म तथा अर्धमात्रा व अमात्र) सहित मनुष्य रूप से अवतार लूँगा ॥५२॥

प्रश्न हे प्रभो ? 'जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा।' कहने का क्या अभिप्राय है ?

उत्तर—हे प्रिय वत्स ? यह अभय वाणी है, अतः आकाश वाणी कहती है कि हम तुम्हें शरण लेते हैं, तुम सभीत हो, हम तुम्हारे भय का हरण करेंगे। किस तरह रक्षा करोगे सो कहते हैं, 'तुम्हहि लागि धरिहउँ नर बेसा।' अर्थात् यह वाणी 'हरनि शोक सन्देह है।' जनि डरपहु' से शोक हरण किया और 'धरिहउँ नर देसा' से सन्देह दूर किया।

अथवा—वैसे तो ईश्वर के लिये नर शरीर धारण करना न्यूनता की बात है पर तुम्हारे हितार्थ हम यह भी करेंगे। यथा—

पृष्ठ १२१ + प्रश्न—हे भगवन 'जानि सभय सुर भूमि सुनि,' बचन समेत सनेह' कहने क्या तात्पर्य है : उत्तर—हे प्रिय दर्शन

श्रुति - उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो रूप कल्पना ।। (श्री राम पू० ता० उ० १।७) अर्थात् भक्तजनों के अभीष्ट कार्य की सिद्धि के लिये वह चिन्मय देह को प्रकट करता है। भक्तों के स्नेहवश निराकार ब्रह्म भी नराकार धारण कर लेता है।

प्रश्न - श्रीगुरुदेव ? 'अंसन्ह सहित मनुज अवतारा।' कथन का क्या रहस्य है ?

उत्तर—हे सौम्य ? रहस्य है कि मैं (अर्धमात्र अमात्र स्थानीय निरंश ब्रह्म) अपने अंश (अकार, उकार, मकार इति) श्रुति, इनके सहित मनुष्य शरीर धारण करूँगा।

प्रश्न—हे स्वामिन् ? लेहउँ दिनकर बंस उदारा।' कहने का क्या भाव है ?

उत्तर हे सुव्रत ? इस वंश में समस्त राजा चक्रवर्ती और उदार, दानी होते आए हैं, इस कुल में अवतार लेने से अवतार गुप्त रहेगा।

अथवा सूर्य वंश में अवतार बारह (१२) कलाओं से ही पूर्ण हो जायेगा। क्योंकि सूर्य में बारह कलाएँ हैं। चन्द्रवंश में अवतार सोलह (१६) कलाओं से ही पूर्ण होता है। क्योंकि चन्द्रमा में सोलह कलाएँ हैं। और कहते हैं। यथा –

मू.चौ०—कस्यप अदिति महातप कीन्हा। तिन्ह कहुँ मैं पूरब बर दीन्हा ।।
ते दशरथ कौसल्या रूपा। कोसलपुरी प्रगट नर भूपा ।।५३।।

अर्थ—कस्यप और अदिति ने बड़ा भारी तप किया था। मैं पहले ही उनको वर दे चुका हूँ। वे ही दशरथ और कौसल्या के रूप में मनुष्यों के राजा होकर श्री अयोध्यापुरी में प्रकट हुए हैं ।।५३।।

प्रश्न—हे भगवन् ? कस्यप अदिति महा तप कीन्हा। तिन्ह कहुं मैं पूरव वर दीन्हा।' कहने का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—हे प्रिय दर्शन ? इससे बताया कि महर्षि कश्यप और अदिति प्रायः दशरथ और कौसल्या होते हैं। अथवा चार कल्पों के रामावतार का हेतु कहा गया है। उन तीन कल्पों में कश्यप-अदिति ही दशरथ-कौसल्या हुए उनके यहाँ अवतार होनासब जानते हैं। यथा—
चौ० कस्यपि अदिति तहाँ पितु माता। दसरथ कौसल्या विख्याता ।।१।१२३।२

जय-विजय कल्प के प्रसग में शिव जी ने 'विख्याता' शब्द कहकर बता दिया कि कश्यप-अदिति का दशरथ-कौसल्या होना सब जानते हैं। मनु-शतरूपा का दशरथ-कौसल्या होना सब नहीं जानते। इससे कहा कि कश्यप-अदिति जी ने बड़ा तप करा, उनको मैंने पहले वर दिया है। वे ही कश्यप-अदितिजी कौसलपुरी में दशरथ-कौशल्या रूप से प्रकट हैं अर्थात उपस्थित हैं।

मू०चौ०—तिन्ह के ग्रह अवतरिहउँ जाई। रघुकुल तिलक सो चारिउ भाई॥
हरिहउँ सकल भूमि गरु आई। निर्भय होहु देव समुदाई॥५४॥

अर्थ—उन्हीं के घर जाकर मैं रघुकुल शिरोमणि चार भाइयों के रूप में अवतार लूंगा। मैं पृथ्वी का सब भार हरूँगा। हे देववृन्द ! तुम निडर हो जाओ॥५४॥

प्रश्न—हे प्रभो? 'तिन्ह के ग्रह अवतरिहउँ जाई। रघुकुल तिलक सो चारिउ भाई॥ कहने का क्या अभिप्राय है ?

उत्तर—हे प्रिय वत्स ? 'जाई' से बताया कि हम शीघ्र ही अवतार लेंगे क्योंकि कश्यप-अदितिजी-दशरथ-कौसल्या रूप से प्रकट हो चुके हैं।

प्रश्न—श्री गुरुदेव ! हरिहउँ सकल भूमिगरु आई। निर्भय होहु देव समुदाई। कथन का क्या रहस्य है ?

उत्तर हे सौम्य ! यह आकाशवाणी का अन्तिम वचन है। आदि में 'जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा कहा है। क्योंकि, ब्रह्मांजी ने कहा था कि सब परम भयातुर हैं, सुरयूथ आपकी शरण हैं, इसी से ब्रह्म वाणी ने आदि और अन्त दोनों में 'निर्भय' होने को कहकर उनको आश्वासन दिया और

मूल दो०—बिप्र धेनुसुर संत हित, लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु, माया गुन गोपार॥१।१९२॥

अर्थ—ब्राह्मण, गौ, देवता और सन्तों के हितार्थ भगवान् ने मनुष्य अवतार लिया। शरीर स्वेच्छा रचित है, (अज्ञानमयी मलिना) माया, और उसके गुण (सत्-रज-तम) और (बाहरी तथा भीतरी) इन्द्रियों से परे हैं॥१।१९२॥

प्रश्न—हे स्वामिन् ! 'विप्र धेनु सुर संत हित, लीन्ह मनुज अवतार।' कहने का क्या भाव है ?

उत्तर—हे सुव्रत ! भाव है कि ये सब राक्षसों द्वारा पीड़ित हैं। यथा—
चौ० करहिं अनीति जाइ नहिं वरनो। सीदहिं विप्र धेनु सुर धरनो॥
तव तब प्रभु धरि विविध सरीरा। हरहि कृपानिधि सज्जन पीरा॥१।१२१।४
अर्थात् जब राक्षस इनको कष्ट देते हैं, तब तब प्रभु अवतार लेते हैं, इनका दुःख दूर करते हैं। तथा 'निज इच्छा निर्मित तनु, माया गुन गो पार।' अर्थात् श्रुति कहती है। यथा-श्रुति—स्वभूर्ज्योतिर्मयाऽनन्त रूपी स्वेनैव भासते। (श्रीराम पू० ता० उ० ३।१) अर्थात् भगवान् किसी कारण की अपेक्षा न रखकर स्वतः प्रकट होते या नित्य विद्यमान रहते हैं, इसीलिये 'स्वभू' कहलाते हैं। चिन्मय प्रकाश ही उनका स्वरूप है, अतः वह ज्योतिर्मय हैं

रूपवान् होते हुए भी वे अनन्त हैं, देश काल और वस्तु की सीमा से परे हैं। उन्हें प्रकाशित करने वाली कोई दूसरी शक्ति नहीं है, वे अपने ही प्रकाश से प्रकाशित होते हैं।

अथवा शरीर स्वेच्छा रचित है अर्थात् यह शरीर कर्मों के सम्बन्ध का नहीं, जैसा कि मनुष्यों का होता है, जीवों के शरीर माया, गुण, इन्द्रियमय होते हैं, और प्रभु का शरीर इन तीनों से परे है। अवतार होने के पश्चात् प्रेमानन्द में कुछ समय बीतने पर महाराजा श्री दशरथ जी ने श्री वसिष्ठ जी से नाम करण करने को कहा। यथा—

मू.चौ०—करि पूजा भूपति अस भाषा। धरिअ नाम जो मुनि गुनि राखा॥
इन्ह के नाम अनेक अनूपा। मैं नृप कहब स्वमति अनुरुपा॥५५॥

अर्थ—मुनि की पूजा करके राजा ने कहा—हे मुनि! जो नाम आपने मन में विचार रक्खे हों। वे नाम रखिये (श्री वशिष्ठ जी बोले) हे राजन्! इनके नाम अनेक और अनुपम हैं, फिर भी मैं अपनी बुद्धि के अनुसार कहूंगा॥५५॥

प्रश्न—हे भगवान! 'करि पूजा भूपति अस भाषा।' कहने का क्या तात्पर्य है?

उत्तर—हे प्रिय दर्शन! पूजा करके तब नाम धरने को कहा, जिससे पुत्रों का मंगल (कल्याण) हो। अथवा पूजा के दो तात्पर्य हैं, पहले श्री गुरुदेव की पूजा तथा नामकरण की अंगभूत पूजा करके नाम धरने को कहा।

'नाम जो मुनि गुनि राखा।' अर्थात् आप ज्ञानी हैं जानते हैं कि अमुक दिन नाम करण होगा। इसलिये पहले से ही विचार रक्खा होगा 'मुनि' मननशील हैं, मनन कर ही चुके होंगे।

प्रश्न—प्रभो! 'इनके नाम अनेक अनूपा' कहने का क्या अभिप्राय है?

उत्तर—हे प्रिय वत्स! रानियाँ चौक पर चारों पुत्रों को लेकर बैठी हैं, इसी से मुनि अंगुलि निर्देश करके कहते हैं कि इनके नाम अनन्त हैं और उपमा रहित हैं, अर्थात् अत्यन्त सुन्दर-सुन्दर हैं, वैसे नाम क्या कोई धर सकता हैं। इसी से कहते हैं मैं अपनी बुद्धि के अनुसार नाम धरूँगा

मू.चौ०—जो आनंद सिंधु सुख रासी। सीकर तें त्रैलोक सुपासी।
सो सुख धाम राम अस नामा। अखिल लोक दायक बिश्रामा॥५६॥

अर्थ—ये जो आनन्द के समुद्र और सुख की राशि हैं, जिस (आनन्द सिंधु) के एक कण से तीनों लोक सुखी होते हैं, उन (आपके सबसे बड़े पुत्र) का नाम 'राम' है, जो सुख के भवन और सम्पूर्ण लोकों को शान्ति देने वाले हैं॥५६॥

प्रश्न—श्री गुरुदेव! 'जो आनन्द सिंधु सुख रासी' कथन का क्या रहस्य है?

उत्तर—श्रुति—आनन्दो नाम सुख चैतन्य स्वरूपोऽपरिमितानन्द-
समुद्रोऽविशिष्ट सुखरूपश्चानन्द इत्युच्यते। (सर्वसारोपनिषद् ४)

श्रुत्यर्थ- आनन्द नाम—जो सुख चैतन्य स्वरूप, अपरिमित (जिसकी नाप तोल नहीं) आनन्द समुद्र अविशिष्ट (निर्विशेष) सुखरूप, आनन्द ऐसा कहा गया है।

प्रश्न - हे स्वामिन्! 'सो सुख धाम राम अस नामा' कहने का क्या भाव है?

उत्तर—हे सुव्रत! श्रुति—रमन्ते योगिनोऽनन्ते नित्यानन्दे चिदात्मनि।
इति राम पदे नासौ परं ब्रह्माभिधीयते॥ (राम पू० ता० उ० १।६)

श्रुत्यर्थ—इस अनन्त नित्यानन्द स्वरूप चिन्मय ब्रह्म में योगिजन रमण करते हैं, इसी लिये वह परब्रह्म परमात्मा ही 'राम' पद के द्वारा प्रतिपादित होते हैं।

अथवा-स्वच्छया रमणीयं वपुर्वहन्व। दाशरथि 'राम' अर्थात् अपनी ही इच्छा से रमणीय शरीर धारण करने वाले दशरथ नन्दन ही 'राम' हैं।

'सीकर तें त्रैलोक सुपासी।' अर्थात् सीकर कहते हैं—सींक के अग्र भाग (पतले सिरे) को समुद्र में डुबाकर उठाया जाये तो उसके सिरे पर एक जल बिन्दु देख पड़ेगा, उस सींक को फटकार दिया जाये (झटक दिया जाये) तो उस जल बिन्दु के अनेक कण होकर पृथ्वी पर गिरेंगे, उसके एक कण को सीकर कहते हैं—उस आनन्द सिन्धु के इस एक कण के बराबर आनन्द से सारा (समस्त) संसार आनन्दित होता है। तथा 'अखिल लोक दायक विश्रामा'

अर्थात्- संसारसागरे क्षुत्पिपासादि षडूर्मिभिस्तरंगिते अविद्याद्यैर्महाक्लेशैः
मदादिभिरुपक्लेशैश्च वशीकृतानां विश्रान्ति काङ्क्षमाणानां

विश्रामं मोक्षं करोति 'विश्रामः' (श्री विष्णु सहस्रनाम शांकर भाष्य) अर्थात् क्षुधा, पिपासा आदि छः ऊर्मियों से तरंगित संसार सागर में अविद्या आदि महान क्लेशों और मद आदि उप क्लेशों से वशीभूत किये हुए विश्राम की इच्छा वाले मुमुक्षुओं को विश्राम अर्थात् मोक्ष देते हैं, इसलिये 'विश्राम' है।

मू.चौ०—बिस्व भरन पोषन कर जोई। ताकर नाम भरत अस होई।
जाके सुमिरत ते रिपु नासा। नाम सत्रुहन बेद प्रकासा॥५७॥

अर्थ—जो संसार का भरण-पोषण करते हैं, उन (आपके दूसरे पुत्र) का नाम 'भरत' होगा। जिनके स्मरण मात्र से शत्रु का नाश होता है, उनका नाम वेदों में प्रसिद्ध 'शत्रुहन' है॥५७॥

मू.दो०—लच्छन धाम राम प्रिय, सकल जगत आधार।
गुरु बसिष्ठ तेहि राखा, लछिमन नाम उदार॥१।१९७॥

अर्थ – जो शुभ लक्षणों (गुणों) के धाम, श्रीराम जी के प्यारे और सारे जगत के आधार हैं, श्री गुरु वशिष्ठ जी ने उनका लक्षमण ऐसा श्रेष्ठ नाम रक्खा ॥१।१९७॥

प्रश्न हे भगवन्! इस नाम करण प्रकरण में श्री गुरुदेव वशिष्ठ जी ने क्रम भंग (श्रीराम, श्रीभरत, इनके पीछे लक्ष्मण जी का नाम होना चाहिये था, परन्तु ऐसा न करके भरत जी के पीछे शत्रुघ्न जी, फिर लक्ष्मण जी का नाम) क्यों किया? इसका क्या कारण है?

उत्तर—हे प्रिय दर्शन! कारण वताते हैं। यथा—

मू.चौ०—धरे नाम गुरु हृदय बिचारी। वेद तत्त्व नृप तब सुत चारी॥
मुनि धन जन सरबस सिव प्राना। बाल केलि रस तेहिं सुख माना॥५८॥

अर्थ श्री गुरु जी ने हृदय में विचार कर ये नाम रक्खे अर्थात् नामकरण किया, (और कहा) हे राजन्! तुम्हारे चारों पुत्र वेद के तत्त्व (साक्षात् परात्पर भगवान् हैं) जो मुनियों के धन, भक्तों के सर्वस्व, और शिवजी के प्राण हैं वे (इस समय तुम लोगों के प्रेमवश) बाल लीला के रस में सुख मान रहे हैं ॥५८॥

प्रश्न—हे प्रभो! 'धरे नाम गुर हृदयँ विचारी। वेद तत्त्व नृप तव सुत चारी' कहने का क्या भाव है?

उत्तर—हे प्रिय वत्स! श्री गुरु वशिष्ठ जी ने ज्योतिष शास्त्र के अनुसार अर्थात् जिस नक्षत्र के जिस चरण में जन्म हो, उस चरण का जो अक्षर हो, वही अक्षर नाम में पहला अक्षर होता है इस विधि से नाम नहीं धरे, और न छोटे-बड़े के हिसाव से नाम धरे, मुनि ज्ञानी हैं उन्होंने हृदय में विचार कर वेद तत्त्व के अनुसार नाम धरे, इसलिये क्रमभंग की गुंजाइस अर्थात् अवकाश नहीं।

प्रश्न—श्री गुरुदेव! 'वेद तत्त्व' के अनुसार नाम क्रम किस प्रकार है?

उत्तर—श्रुति–सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपाँसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।
यदिच्छतो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदँ संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्॥
(कठोपनिषद् १।२।१४)

श्रुत्यर्थ—सम्पूर्ण वेद जिस परम पद का बारम्बार प्रतिपादन करते हैं, और सब तपस्याएँ इसी की प्राप्ति के वास्ते की जाती हैं, जिसको चाहने वाले साधकगण ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, वह पद तुम्हें संक्षेप से (मैं) वतलाता हूँ वह है 'ओम्' ऐसा यह अक्षर जो वेदों का तत्त्व 'ॐकार' है यही तुम्हारे चारों पुत्र हैं। यथा—

श्रुति—अकाराक्षरसम्भूतः सौमित्रिर्विश्वभावनः।
उकाराक्षर सम्भूतः शत्रुघ्नस्तैजसात्मकः॥
प्राज्ञात्मकस्तु भरतो मकाराक्षर सम्भवः।
अर्धमात्रात्मको रामो ब्रह्मानन्दैक विग्रहः॥ (रामोत्तर ता० ऊ० १, २)

श्रुत्यर्थ—सुमित्रानन्दन लक्ष्मणजी प्रणव के अकार अक्षर से प्रादुर्भूत हुए हैं। ये जागृत् के अभिमानी 'विश्व' के रूप में भावना करने योग्य हैं। शत्रुघ्न स्वप्न के अभिमानी 'तैजस' रूप हैं, इनका आविर्भाव प्रणव के 'उ' अक्षर से हुआ है। भरतजी सुषुप्ति के अभिमानी 'प्राज्ञ' रूप हैं, ये प्रणव के 'म्' से प्रकट हुए हैं। भगवान् श्रीराम प्रणव की अर्धमात्रा रूप हैं। ये ही तुरीय पुरुषोत्तम हैं। ब्रह्मानन्द ही इनका एकमात्र विग्रह है। इसी से भगवान् श्रीराम जी ने जगह-जगह कहा है कि—'अंसन्ह सहित देह धरि ताना ।१।१५२।१— 'अंसन सहित मनुज अवतारा ।१।१८७।१।। अंश, पाद, भाग, चरण ये सब पर्यायवाची (एक ही) नाम हैं।

श्रुति—ओमित्येतदक्षरमिदँ सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोंकार एव। यच्चन्यत् त्रिकालातीतं तदप्योंकार एव ।।१।।

श्रुत्यर्थ—'ओम्' यह अक्षर ही परब्रह्म परमात्मा राम हैं। यह सब उसी का उपव्याख्यान अर्थात् उन्हीं की निकटतम महिमा का निर्देशक है। भूत, जो बीत चुका है। और वर्तमान जो बीत रहा है। और भविष्यत् जो आगे होने वाला है वह सबका, सब ओंकार ही है। और जो इन तीनों कालों से अतीत (परे) है सो भी ओंकार ही है।

प्रश्न—श्री गुरुदेव ! सब कुछ ओंकार राम कैसे हैं ?

उत्तर—हे सौम्य ! यह श्रुति बताती है। यथा—

श्रुति—सर्वँ ह्येतद् ब्रह्मायमात्माब्रह्म सोऽयमात्मा चतुष्पाद् ।।२।।

श्रुत्यर्थ—क्योंकि यह सबका सब ब्रह्म है, यह ब्रह्म ही आत्मा है वह यह आत्माचार चरणों वाला है।

प्रश्न—हे स्वामिन् ! आत्मा के चार पाद कौन से हैं ?

उत्तर—हे सुव्रत ! उन चरण (पादों) को श्रुति इस प्रकार बताती हैं। यथा—

श्रुति—जागरित स्थानो वहिः प्रज्ञः सप्तांग एकोनविंशति मुखः स्थूल भुग्वैश्वानरः प्रथमः पादः ।।३।।

श्रुत्यर्थ—जागृत् अवस्था की भाँति यह सम्पूर्ण स्थूल जगत् जिसका अवयव संस्थान (शरीर) है, जो बहिः प्रज्ञ है—जिसका ज्ञान बाह्य जगत् में सब ओर फैला हुआ है; भूः भुवः आदि सात लोक ही जिसके सात अंग हैं, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच प्राण और चार अन्तःकरण - ये उन्नीस समष्टिकरण ही जिसके मुख हैं; जो इस स्थूल जगत् का भोक्ता अर्थात् इसको जानने और अनुभव करने वाला है—ऐसा वैश्वानर (विश्वरूप पुरुषोत्तम) ही सम्पूर्ण परमेश्वर का पहला पाद है। लीला पुरुषोत्तम श्रीराम के चार पादों में से प्रथम पाद श्रीलक्ष्मण जी हैं। ये शेषनाग के रूप में अखिल विश्व के आश्रय होने के कारण

विश्व' अथवा 'वैश्वर' कहलाते हैं। तथा श्रीराम की प्राप्ति के लिये प्रथम उपाय है—श्रीलक्ष्मणजी की आराधना। अतएव उन्हें प्रथम पाद कहा गया है। वे सदा जागरुक स्थिति में रहते हैं; अतएव 'जागरित स्थान' हैं। बाहर की सम्पूर्ण बातों को जानने में सतत सावधान रहने के कारण उन्हें 'वहि-प्रज्ञ' कहा गया है। भूर्भुवः आदि सात स्वर्ग, अथवा तल-अतल आदि सात पातालों की स्थिति उनके ही अगों पर है; अतः वे 'सप्तांग' हैं। (१) पुराण, (२) न्याय, (३) मीमांसा और (४) धर्मशास्त्र, (५) व्याकरण, (६) ज्योतिष (७) छन्द, (८) कल्प, (९) शिक्षा एवं (१०) निरुक्त ये छः वेदाँग (११) ऋक् (१२) यजुः (१३) साम एवं (१४) अर्थव ये चार वेद तथा (१५) आयुर्वेद, (१६) धनुर्वेद, (१७) गान्धर्व वेद (१८) अर्थशास्त्र और (१९) दर्शन ये सब मिलकर उन्नीस विद्याएं श्रीलक्ष्मणजी के मुख में स्थित है, अर्थात् अपने मुख द्वारा वे इन विद्याओं का वर्णन करने में समर्थ है; अतएव उन्हें 'एकोनविंशति मुख' कहा गया है। संकर्षण रूप से प्रलय काल में अपनी मुखाग्नि द्वारा समस्त स्थूल जगत् को वे ग्रस लेते हैं अतः स्थूलभुक् है।

श्रुति—स्वप्रस्थानोऽन्तःप्रज्ञः सप्तांग एकोनविंशतिमुखः
प्रविविक्त भुवतेजसौ द्वितीयः पादः ॥४,।

श्रुत्यर्थ—मनकी सूक्ष्म वासना द्वारा कल्पित मनोमय जगत् ही स्वप्न कहलाता है, अतः स्वप्न' पद यहाँ सूक्ष्म जगत्' का ही बोधक है। वह सूक्ष्म जगत् ही जिसका स्थान है, जो अन्तः प्रज्ञ है अर्थात् जिसका ज्ञान सूक्ष्म जगत् में व्याप्त है तथा जो पूर्वोक्त सात अङ्गों और उन्नीस मुख से युक्त है, वह प्रविविक्त-सूक्ष्म जगत् का भोक्ता, तैजस (प्रकाशरूप हिरण्यगर्भ) उस पूर्णतम परमेश्वर का द्वितीय पाद है। (श्रीराम पक्ष में श्रीशत्रुघ्न ही पूर्णतम परमात्मा श्रीराम के द्वितीय पाद (अंश) हैं। लक्ष्मणजी की अपेक्षा दूसरे होने के कारण ये द्वितीय हैं। प्रद्युम्न काम के अंश होने से ये सबके मन में स्थित हैं। स्वप्नावस्था में अन्य इन्द्रियों के सुप्त हो जाने पर भी मन अपना कार्य करता रहता है। अतः मन के साथ उसमें निवास करने वाले मनोभव रूप शत्रुघ्नजी की भी स्वप्न में स्थिति रहती है; इसीलिये उनको 'स्वप्न स्थान' कहा गया है, मन में स्थिति होने से वे अन्तःकरण की बातों को जानते हैं, इसलिये 'अन्तः-प्रज्ञ' हैं। जैसे स्थूल जगत का भार शेष रूपधारी लक्ष्मणजी पर है, उसी प्रकार सूक्ष्म लोकों का भार समष्टि मन में स्थित प्रद्युम्न' काम पर है। समष्टि मन ही समस्त सूक्ष्म लोकों का आधार है। उसमें रहने वाले संकल्पमय प्रद्युम्न ही उस भार को वहन करते हैं। वे शत्रुघ्न से अभिन्न हैं। अतः भुः भुवः आदि सात सूक्ष्म लोकों का भार जिनके अंगों पर है, वे शत्रुघ्नजी भी 'सप्तांग' हैं, उन्नीस मुख पूर्ववत् समझने चाहियें। जो सूक्ष्म लोकों का अधिष्ठाता है, वह सूक्ष्म तत्त्वों का भोक्ता और अनुभव करने वाला होगा ही; अतः शत्रुघ्नजी ही 'प्रविविक्त' भुक् हैं। तैजस का अर्थ यहाँ तेजोमय-परम कान्तिमान् है। प्रद्युम्न-काम के स्वरूप होने से शत्रुघ्न का सौन्दर्य अप्रतिम है; अतः वे (तैजस कहे गये हैं)

श्रुति—यत्र सुप्तो न कंचन कामं कामयते न कंचन स्वप्नं पश्यति तत्सुषुप्तम्।
सुषुप्त स्थान एकीभूतः प्रज्ञानघन एवानन्दमयो
ह्यानन्दभुक् चेतोमुखः प्राज्ञस्तृतीयः पादः ॥५॥

भावार्थ—जिस अवस्था में सोया हुआ मनुष्य किसी भी भोग की कामना नहीं करता, कोई भी स्वप्न नहीं देखता, वह सुषुप्ति अवस्था है। ऐसी सुषुप्ति अर्थात् जगत् की प्रलय अवस्था, अथवा कारण-अवस्था ही जिसका शरीर है, जो एकरूप हो रहा है; जो एकमात्र घनीभूत प्रज्ञान ही जिसका स्वरूप है; जो केवल आनन्दमय है, चैतन्य ही जिसका मुख है; जो एकमात्र आनन्द का ही भोक्ता है। वह 'प्राज्ञ' ही परब्रह्म परमात्मा का तृतीय पाद है।

(श्रीराम पक्ष में श्रीभरतलालजी ही तृतीय पाद हैं। लक्ष्मण और शत्रुघ्न की अपेक्षा से तो वे तृतीय हैं, और श्रीराम को प्राप्ति कराने वाले होने के कारण (श्रीरामं पादयति गमयति इति पादः इस व्युत्पत्ति के अनुसार) 'पाद' कहे गये हैं। जहाँ इन्द्रिय वर्ग और मन दोनों सो जाते हैं—दोनों के अनियन्त्रि व्यापार बन्द हो जाते हैं, उस शम-दम से सम्पन्न स्थिर प्रज्ञता की अवस्थाँ को ही यहाँ 'सुषुप्ति' कहा है। इसमें सुप्त अर्थात् जितेन्द्रिय पुरुष न तो स्थूल भोगों की इच्छा करता है और न स्वप्न में सूक्ष्म भोगों की ओर ही दृष्टि डालता है। इस जितेन्द्रियता एवं स्थिर प्रज्ञता में ही स्थित होने के कारण भरतजी 'सुषुप्त स्थान' कहे गये हैं। उन्होंने भी पिता की ओर से स्वतः प्राप्त हुए राज्य की कामना नहीं की—स्वप्न में भी उसका चिन्तन नहीं किया। वे नन्दग्राम में समाधि लगाकर भगवान् के साथ एकीभूव हो गये थे। वे प्रज्ञानघन अर्थात् महा प्राज्ञ-परम बुद्धिमान् हैं, श्रीरघुनाथजी का अनन्य भक्त होना ही बुद्धि के उत्कर्ष का परिचाक है। हर्ष, शोक आदि से विचलित न होने के कारण वे सदा 'आनन्दगय' कहे गये हैं। अनिरुद्ध स्वरूप होने के कारण उन्हें आनन्द का भोक्ता कहा गया है उनमें विवेक-शक्ति की प्रधानता होने से ही वे 'चेतोमुख' हैं। 'प्राज्ञ' उनकी संज्ञा है। परमज्ञानी-कुशाग्रबुद्धि होने के कारण उनको 'प्राज्ञ' कहा गया है ॥५॥

श्रुति—एव सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषोऽन्तर्याम्येष योनिः
सर्वस्य प्रभवाप्ययौ हि भूतानाम् ॥६॥

भावार्थ यह तीसरा पाद ही जिसका मकार रूप भरत' नाम है। यह सबके ईश्वर हैं यह सर्वज्ञ हैं यह सबके अन्तर्यामी, पे ही सम्पूर्ण जगत् के कारण हैं। क्योंकि सम्पूर्ण प्राणियों की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के स्थान ये ही हैं। अब पूर्ण ब्रह्म परमात्मा राम के चौथे पाद का श्रुति भगवती वर्णन करती है। यथा—

श्रुति—नान्तः प्रज्ञं न बहिः प्रज्ञं नोभयतः प्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञम्।
अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्म
प्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं
मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः ॥७॥ (रामोत्तर ता० उ० १ से ७)

भावार्थ—जिसकी प्रज्ञा न तो अन्तर्मुखी है न बहिर्मुखी है न दोनों ओर मुख वाली ही है; जो न प्रज्ञानघन है, न जानने वाला है, न नहीं जानने वाला ही है; जिसको देखा नहीं गया, व्यवहार में नहीं लाया जा सकता और पकड़ा भी नहीं जा सकता; जिसका कोई लक्षण नहीं, जो चिन्तन में नहीं आ सकता, जो किसी विशेष संकेत से भी बतलाने में नहीं आ सकता; एकमात्र आत्मसत्ता की प्रतीति ही जिसका सार है, तथा जिसमें प्रपंच का सर्वथा अभाव है—ऐसे सर्वथा शान्त एवं कल्याणमय अद्वैत तत्त्व (परब्रह्म राम) को ही ज्ञानी जन समग्र परमेश्वर राम का चतुर्थ पाद मानते हैं। वही परमात्मा राम हैं और वही जानने योग्य हैं। उपर्युक्त श्रुतियों से स्पष्ट है कि वेद तत्त्व प्रणव की मात्राएँ, अक्षर, अंश वा पाद 'अकार' जाग्रतावस्था, विश्व श्रीलक्ष्मण जी। 'उकार' स्वप्न तेजस श्रीशत्रुघ्नजी। 'मकार' सुषुप्तावस्था, प्राज्ञ श्रीभरतलालजी। अर्धमात्रा' तुरीयावस्था, अधिष्ठान रूप श्रीरामजी। परन्तु श्रीरामचरित्र में श्रीरामजी मुख्य हैं। इसलिये श्रीगुरुदेव वशिष्ठ जी ने प्रथम तुरीय के पति ब्रह्म श्रीराम से नाम करण प्रारम्भ किया, उनके पश्चात् सुषुप्ति के स्वामी प्राज्ञरूप (मकार) श्री भरतजी फिर स्वप्न के अभिमानी तैजस रूप (उकार) शत्रुघ्नजी और अन्त में जाग्रत् के स्वामी विश्वरूप (अकार) श्रीलक्ष्मणजी के नाम क्रम से धरे। नामकरण करके बताया कि हमने इनको वेदों का तत्त्व समझ कर नामकरण किया है।

प्रश्न—हे भगवन्? 'मुनि धन जन सरवस सिव प्राना।' कहने का क्या तात्पर्य है?

उत्तर—हे प्रियदर्शन? यहाँ मुनि, जन और शिव तीनों एक से एक अधिक प्रियत्व कहा है, धन से सरवस, सरवस से प्राण अधिक प्रिय होते हैं, और अवधपुरी वासियों को तो राम प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं तभी तो भगवान् श्रीराम उनको सुख देने के लिये बालकेर करते हैं, इसलिये

मूल दो०—व्यापक अकल अनीह अज, निर्गुन नाम न रूप।
भगत हेतु नाना बिधि, करत चरित्र अनूप॥१।२०५॥

अर्थ—जो व्यापक हैं, कला रहित हैं, प्रकृत चेष्टा या इच्छा रहित हैं, अजन्मा, अव्यक्त एवं माया के गुणों से परे हैं, प्राकृत नाम-रूप रहित हैं, वही भगवान् श्रीराम भक्तों के लिये अनेक प्रकार के सुन्दर उपमा रहित अद्वितीय चरित्र करते हैं॥१।२०५॥

प्रश्न—हे प्रभो? 'व्यापक अकल आदि' कहने का क्या अभिप्राय है?

उत्तर—श्रुति-निष्कलङ्को निरञ्जनो निर्विकल्पो निराख्यातः।
शुद्धो देव एको नारायणो न द्वितीयोऽस्तिकश्चित्॥
(नारायणाथर्व शिर० उ० २—त्रिपाद्विभूति म० नारायण उ १)

भावार्थ—एक नारायण ही निष्कलंक, निरंजन, निर्विकल्प, अवर्णनीय, एवं शुद्ध एकमात्र देवता नारायण राम ही हैं, दूसरा कोई नहीं॥ इन्हीं के लिये कहा—

मू॰चौ०—राम करौं केहि भाँति प्रसंसा। मुनि महेस मन मानस हंसा॥
व्यापक ब्रह्म अलखु अविनासी। चिदानंदु निरगुन गुन रासी॥५६॥

अर्थ—महाराज श्री जनक जी ने कहा—हे रामजी? मैं किस प्रकार आपकी प्रशंसा करूँ? आप मुनियों और महादेव जी के मनरूपी मानसरोवर के हंस हैं। जो ब्रह्म सर्व-व्यापक, अलक्ष्य, अविनाशी (एक रस), चिदानन्द, आनन्दस्वरूप, मायिक गुणों से रहित, दिव्य गुणों की राशि है॥५६॥

प्रश्न—श्री गुरुदेव? 'राम करौं केहि भांति प्रसंसा।' कथन का क्या रहस्य है?

उत्तर—हे सौम्य? रहस्य है कि किसी भाँति प्रशंसा नहीं हो सकती। क्योंकि न कोई उपमेय है, न कोई उपमान है, न कोई समान है, न कोई अधिक है तब किस प्रकार प्रशंसा की जाये? क्योंकि आप अद्वैत स्वरूप हैं।

प्रश्न—हे स्वामिन्? 'मुनि महेस मन मानस हंसा।' कहने का क्या भाव है?

उत्तर—हे सुव्रत? मुनि और महेश के हृदय निर्मल होने से उनके मनरूपी मानसरोवर-+ के निवासी हैं, तब स्थूल वाणी से आपकी प्रशंसा कैसे की जाय, क्योंकि आप मनवाणी के विषय नहीं है। आप 'व्यापक ब्रह्म अलखु अविनासी। चिदानंद निरगुन गुन रासी'.

अर्थात्—सदानन्दो विरक्तात्मा एक रूपो निएश्रय:।
निर्जरो निर्ममो व्यापी सगुणो निर्गुणोऽमल:॥

(पद्मम पु० भूमिखण्ड ८६।७५)

भावार्थ—आप सत् आनन्द स्वरूप, विरक्तात्मा, एकरूप, आश्रय रहित, जरा-ममता रहित, सर्व व्यापक, सगुण-निर्गुण और विशुद्ध हैं, फिर आपकी प्रशंसा कैसे की जाये। तथा—

मू॰चौ०—मन समेत जेहि जान न बानी। तरकि न सकहि सकल अनुमानी॥
महिमा निगम नेति कहि कहई। जो तिहुँ काल एकरस रहई॥६०॥

वही राम—

मूल दो०—नयन विषय मोकहुँ भयउ, सो समस्त सुख मूल।
सबइ लाभु जग जीव कहुँ, भए ईस अनुकूल॥१।३४१॥

अर्थ—जिसको मन सहित वाणी नहीं जानती। और सब अनुमान करने वाले जिसकी तर्कना नहीं कर सकते। जिनकी महिमा को निगम (वेद) 'नइति' कहकर वर्णन करता है। और जो तीनों कालों में एक रस (सर्वदा और सर्वथा निर्विकार) रहते हैं॥६०॥ वे ही समस्त सुखों के मूल (आप) मेरे नेत्रों के विषय हुए। ईश=शिवजी के अनुकूल होने पर

पृष्ठ १३१+ में आप वास करते हो अथवा एक हंस भौतिक मान सरोवर में रहते हैं, आप तो सूक्ष्म मन रूपी मान सरोवर

जीव को संसार में सभी लाभ प्राप्त हो जाते हैं। अर्थात् जगत् में जीव को सब लाभ ही लाभ है। १।३४१॥

प्रश्न—हे भगवन् ? 'मन समेत जेहि जानन बानी।' कहने का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—हे प्रिय दर्शन ? तात्पर्य है कि पहले मन जानता है पीछे वाणी कहती है। निर्गुण ब्रह्म में मन नहीं जाता, वाणी उसे कह ही नहीं सकती। यथा—

श्रुति–यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह। (तैत्तिरीय उ० २।४–२।६ ब्रह्मोपनिषद्-शरभ उ० १७–शाण्डिल्योपनिषद् २)

भावार्थ—ब्रह्म के परमानन्द स्वरूप के सम्बन्ध में यह श्रुति बताती है कि जहाँ से मन सहित वाणी उसे न पाकर लौट आती है। यहाँ पर मन समेत वाणी से समस्त इन्द्रियों का समुदाय रूप मनोमय सूक्ष्म शरीर से तात्पर्य है। तथा–'तरकि न सकहि सकल अनुमानी

अर्थात्—श्रुति–एष परमात्माऽपरिमितोऽजः। अतर्क्योऽचिन्त्य
एष आकाशात्मा एवैष कृत्स्नक्षय एको जागर्ति॥ (मैत्रयण्युपनिषत् ६।१७)

अर्थात्—यह परमात्मा अपरिमित (नाप-तोल में न आने वाला) अजन्मा, अचिन्त्य, आकाशका आत्मा यह सर्व रहित एक जागता है, यह तर्कना से रहित है।

प्रश्न—प्रभो ? 'महिमा निगम नेति कह कहई।' कहने का क्या अभिप्राय है ?

उत्तर हे प्रियवत्स ! सबसे पीछे वेद को कहा क्योंकि वेद सर्व प्रमाण है, इससे श्रेष्ठ कोई नहीं, जिसे श्रुति यों कहती है। यथा -

श्रुति–स एष नेति नेत्यात्माऽगृह्यो नहि गृह्यतेऽशीर्यो नहि—
शीर्यतेऽसंगो नहि सज्यतेऽसिते न व्यथते न रिष्यति।
(बृ० उ० ४।४२२—४।५।१५)

अर्थात् वह यह 'नेति नेति' इस प्रकार निर्देश किया गया आत्मा राम अगृह्य है, वह ग्रहण नहीं किया जाता, वह अशीर्य है उसका नाश नहीं होता, वह असंग है, कहीं आसक्त नहीं होता, बंधा नहीं है, इसलिये व्यथित नहीं होता, तथा उसका क्षय नहीं होता। तथा– 'जो तिहुँ काल एक रस रहई।' अर्थात् ब्रह्म-भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों कालों में एक रस रहता है, क्योंकि न उसका आदि है, न मध्य और न अन्त है, अर्थात् वह न तो उत्पन्न होता है, न बढ़ता है; न कभी उसका नाश होता है। वह कभी षट् विकारों को नहीं प्राप्त होता।

प्रश्न—श्री गुरुदेव ! 'नयन विषय मो कहुं भयउ' कथन का क्या रहस्य है ?

उत्तर—हे सौम्य ? रहस्य है कि आप ब्रह्म-मुनि, महेश, योगी और वेद, किसी को नयन (नेत्र) के विषय नहीं होते। पर मुझे हुए, अर्थात् मुझको आपने साक्षात् दर्शन दिये। 'तो समस्त सुख मूल।' अर्थात

छं० सुख मूल दूलहु देखि दम्पति पुलक तन हुलसो हियो '।१।३२४।।

तथा 'सवइ लाभु जग जीव कहुं, भए ईसु ननुकूल।' अर्थात्

ईश = शिवजी, श्रीशिवजी की अनुकुलता से सभी सुलभ हो जाता है। अथवा सब जीवों को तुम्हारी प्राप्ति सुलभ करने के लिये शंकर अनुकूल हुए। अथवा श्री महादेवजी की कृपा से ही श्रीराम जी का दर्शन होता है, और मनो वाञ्छितफल की प्राप्ति कही है। यथा—

चौ०—वरदायक प्रनतारति भंजन। कृपा सिन्धु सेवक मन रंजन।।

इच्छित फल बिनु सिव आराधे। लहिअ न कोटि जोग जप साधे।। १।७०।४

श्री शिवजी की कृपा से जिन (निर्गुन-निर्विकार) श्रीराम जी के दर्शन होते हैं, उन्हीं के स्वरूप का वर्णन बड़े विचित्र ढंग से श्रीलक्ष्मण जी आगे के सोपान में करते हैं।

।। इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकल कलिकलुष विध्वंसने।।

* वालकाण्डान्तर्गते तृतीयः सोपानः समाप्तः *

अथ चतुर्थ सोपान

लक्ष्मण-गीता-अयोध्काण्ड

मूःचौ०—बोले लखन मधुर मृदु बानी। ग्यान बिराग भगति रस सानी।।

देखिअ सुनिअ गुनिअ मन माहीं। मोह मूल परमारथु नाहीं।।६१।।

अर्थ—श्रीलक्ष्मणजी ज्ञान, वैराग्य और भक्ति के रस में सनी हुई मीठी और कोमल वाणी बोले। जो देखने, सुनने और मन से विचारने में आता है, इन सबों का मूल-मोह (अज्ञान) ही है। परमार्थतः ये नहीं हैं।।६१।।

प्रश्न—हे स्वामिन्! 'वोले लखन मधुर मृदु वानी।' कहने का क्या भाव है?

उत्तर— हे सुव्रत? तच्छ्रुत्वा लक्ष्मणः प्राह सखे श्रृणु वचो मम।

(अध्यात्म रामायण २।६।५)

अर्थात् यह सुनकर श्रीलक्ष्मणजी ने कहा—भाई मेरी वात सुनो। निषाद को सखा कह कर मृदुता की हद करदी—क्योंकि उसकी बातों का खण्डन करके उसे समझाना है। अतएव मधुर बचन वोले, जिससे उसको दुःख न हो।

क्या बोले—'देखिअ सुनिअ गुनिअ मन माहीं। मोह मूल परमारथु नाहीं।।' अर्थात् वे परमार्थ सत्य नहीं हैं मिथ्या हैं। यथा—

श्रुति—वाचा वदति यत्किञ्चित्संकल्पैः कल्प्यते च यत्।

मनसा चिन्त्यते यद्यत्सर्वं मिथ्या न संशयः।।

बुद्ध्यानिश्चीयते किञ्चिच्चित्तोनिश्चीयते क्वचित् ।
शास्त्रैः प्रपञ्च्यते यद्यन्नेत्रेणेद निरीक्ष्यते ।।
श्रोत्राभ्यां श्रूयते यद्यदन्यत्सद्भावमेव च ।
नेत्रं श्रोत्रं गात्रमेव मिथ्येति च सुनिश्चितम् ।।
(तेजोविन्द० उ० ५।४५ से ४७)

श्रुत्यर्थ—वाणी से यदि किञ्चित् जो बोलता है, संकल्प से यदि किञ्चित जो कल्पना करता है, और जो-जो मन से चिन्तन किया जाता है वह वह मिथ्या है, इसमें संशय नहीं। बुद्धि से जो किञ्चित् मात्र भी निश्चय किया जाय, चित्त में कुछ भी निश्चय किया जाय, शास्त्रों द्वारा जो कुछ विस्तार किया जाये और नेत्रों द्वारा जो निरीक्षण किया जाये, जो-जो कानों से सुना जाये और अन्य जो सद्भाव हैं, अर्थात् जिन नेत्र, श्रोत देहादि से किये गये व ये देहादि सब मिथ्या निश्चिय करना ।। इसी से

श्रुति–धनदारेषु वृद्धेषु दुःखयुक्तं न तुष्टता ।
वृद्धायां मोहमायायां कः समाश्वासवानिह ।।
यैरेव जायते रागो मूर्खस्याधिकतां गतैः ।
तैरेव भागैः प्राज्ञस्य विराग उपजायते ।। (मह० उ० ५।१६८, १६९)

श्रुत्यर्थ—धन, दारा (स्त्री) आदि प्रपंच का बढ़ना दुःखमय है। इसमें सन्तुष्ट होने की कोई बात नहीं है। मोह, माया के बढ़ने पर भला इस लोक में किसको शान्ति मिली है। जिन वस्तुओं की अधिकता से मूर्ख को राग (आसक्ति) होता है, उन्हीं की प्राप्ति से प्राज्ञ पुरुष को वैराग्य उत्पन्न होता है। ये जो गिनाये (धन, दारादि) हैं ये परमार्थ (सत्य) नहीं हैं, परमार्थ तो केवल आत्म स्वरूप ही है। अथवा इनसे परमार्थ स्वरूप श्रीराम आत्मा की प्राप्ति नहीं होती यह सब मोह (अज्ञान) ही है। इसका सर्वथा त्याग करना चाहिये। क्योंकि—

मूल दो०—सपने होइ भिखारि नृपु, रंक नाक पति होइ ।
जागे लाभु न हानि कछु, तिमि प्रपंच जियँ जोई ।।२।९२।।

अर्थ—जैसे स्वप्न में राजा भिखारी हो जाये और कंगाल स्वर्ग का स्वामी इन्द्र हो जाये, तो जागने पर लाभ या हानि कुछ भी नहीं है, वैसे तो इस दृश्य-प्रपंच को हृदय से देखना चाहिये ।।२।९२।।

प्रश्न—हे भगवन् ? 'सपने होइ भिखारी नृप, ...' इस दोहे में क्या भाव प्रदर्शित किया है ?

उत्तर—हे प्रियदर्शन ? ऊपर कह आये हैं कि सबका मूल-मोह (अज्ञान) है, अब उसे उदाहरण से समझाते हैं। यथा—

श्रुति–उत्तमाधमभावश्चेत्तोषां स्यादस्ति तेनकिम् ।
स्वप्नस्थराज्यभिक्षाभ्यां प्रबुद्ध–स्पृशते खलु ।। (वाराह० उ० ५।५८)

भावार्थ---यदि उत्तम, अधत भाव होवें तिसते क्या, स्वप्न में स्थित राज्य और भिक्षा से, जगा हुआ पुरुष निश्चय करके उनसे सम्बन्धित नहीं होता, वैसे ही इस अविद्या मूल जगत् का आत्मा से स्पर्श नहीं ।

अथवा श्रीलक्ष्मणजी कहते हैं कि प्रपंच (व्यावहारिक सत्य) सपना ही है । उस स्वप्न से यह स्वप्न कुछ अधिक स्थायी है, भेद इतना ही है । वह स्वप्न निद्रा दोष से था, यह बड़ा स्वप्न अविद्या दोष से है । जिस भाँति निद्रा दोष के भंग होने से वह स्वप्न नहीं रहता, उसी भाँति अविद्या दोष के भंग होते ही यह बड़ा स्वप्न (जगत् प्रपंच) भी नहीं रहता । यथा---

मू.चौ०–मोह निसाँ सबु सोवनि हारा । देखिअ सपन अनेक प्रकारा ।।
एहिं जग जामिन जागहि जोंगी । परमारथी प्रपंच बियोगी ।।६२।।

अर्थ--सब लोग मोह रूपी रात्रि में सोने वाले हैं, और सोते हुए उन्हें अनेकों प्रकार के स्वप्न दिखायी देते हैं । इस संसार रूपी रात्रि में योगी लोग जागते हैं, जो परमार्थी हैं और प्रपंच (मायिक जगत्) से छूटे हुए हैं ।।६२।।

प्रश्न---हे प्रभो ! 'मोह निसाँ सबु सो वनि हारा । देखिअ सपन अनेक प्रकारा' कहने का क्या भाव है ?

उत्तर---श्रुति–दीर्घस्वप्नमिदं यत्तद्दीर्घं वा चित्तविभ्रमम् ।
दीर्घं वापि मनोराज्यं संसारं दुःख सागरम् ।। (वराह० उ० २।६४)

श्रुत्यर्थ—मोह रूपी रात्रि में यह (जगत्) दीर्घ स्वप्न है, वा चित्त का दीर्घ भ्रम है, वा यही मनोकामना रूपी संसार स्वप्न रूप है यही दुःख का सागर है । अथवा जिस भाँति सूर्य के न रहने से रात होती है उसी भाँति ज्ञान रूपी सूर्य के अभाव में मोहरूपी रात्रि होती है । जिस भाँति रात्रि को सब सोते हैं, और अनेक प्रकार के स्वप्न देखते हैं, उसी भाँति मोह रात्रि में सब सो रहे हैं, और जागृत रूप अनेक प्रकार का स्वप्न देख रहे हैं । रात्रि के स्वप्न में जिस भाँति जागृत का भ्रम होता है सभी स्वप्न देखने वाले अपने को जागता हुआ ही मानते हैं, उसी प्रकार मोह रूपी रात्रि में सोने वालों को यह जागना भी स्वप्न ही है । यह जागना सच्चा जागना नहीं है, क्योंकि मोह निशा के दूर होते ही इसका बाध देखा जाता है ।

प्रश्न---श्री गुरुदेव ? 'एहिं जग जामिन जागहि जोगी । परमारथी प्रपंच बियोगी ।' कथन का क्या रहस्य है ?

उत्तरः—हे सौम्य–इस जगत् रूपी रात्रि में आत्मवेता ही जागता है। यथा–

श्रुति–जन्तोः कृतविचारस्य विगलद् बृत्ति चेतसः।
मननं त्यजतो नित्यं किञ्चित्परिणतं मनः॥
दृश्यं सन्त्यजतो हेयमुपादेयमुपेयुषः॥
द्रष्टारं पश्यतो नित्यमद्रष्टारमपश्यतः।
विज्ञातव्ये परे तत्त्वे जागरूकस्य जीवतः॥ (मह० उ० ५।६१ से ६३)

श्रुत्यर्थ—वेदान्त विचारशील प्राणी जिनके चित्त की वृत्तियाँ क्षीण हो गई हैं, मनश्चिन्तन के त्याग का अभ्यास करते-करते जिनका मन कुछ परिपक्व हो गया है, जो मोक्ष का उपाय खोजने वाले पुरुष हैं हेय तथा उपादेय दोनों प्रकार के (ग्रहण और त्याग) विषयों का त्याग कर रहे है, जो नित्य द्रष्ट=अर्थात् परमार्थी आत्म तत्त्व के साक्षात्कार में लगे हैं, तथा अद्रष्टा (प्रपंच वियोगी) प्रपंच को नहीं देखते वस्तुतः वही जागते हैं।

मू.चौ०-जानिअ तबहिं जीव जग जागा। जब सब विषय बिलास बिरागा॥
होइ बिवेकु मोह भ्रम भागा। तब रघुनाथ चरन अनुरागा॥६३॥

अर्थ—जब (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) इन सब विषयों के विलास (आनन्द मुग्धता) से वैराग्य हो जाये, तब जानना चाहिये कि इस जगत रूपी रात्रि से जीव जागा। विवेक होने पर मोह रूपी भ्रम भग हो जाता है तब (अज्ञान का नाश होने पर) श्री रघुनाथजी के चरणों में प्रेम होता है॥६३॥

प्रश्न—हे स्वामिन्? जानिग्र तबहिं जीव जग जागा। जब सब विषय विलास विरागा।' कहने का क्या भाव हैं?

उत्तर हे सुव्रत? भाव है कि देह, गेह, स्त्री, पुत्र, धन. धाम, देह से सम्बन्ध मात्र को अपना मानकर उनमें ममत्व करना-आसक्त होना ही सोते रहनां है। यथा—

सुत-वित-दार-भवन-ममता-निसि सोवत अति,न कबहुं मति जागो॥ (विनय १०)

इन सबको क्षण स्थायी जानकर इनका मोह-ममता त्यागना–विषयों से वैराग्य होना, देहाभिमान का छूटना, अपने आपको आत्मानुरागी देखना व जागना है। यथा—

चौ० मैं तें मोर मूढ़ता त्यागू। महामोह निसि सूतत जागू॥६।५६।४

प्रश्न – हे भगवन्! 'होइ विवेक मोह भ्रम भागा। तब रघुनाथ चरन अनुरागा' कहने का क्या भाव है?

उत्तर—हे प्रिय दर्शन! 'विवेक' = नित्य-नित्य वस्तु विवेक, अर्थात् नित्य (सत्य) एक आत्मा है, और यह सारा संसार अनित्य (मिथ्या है। ऐसा विवेक होने से मोह और भ्रम भाग जाता है। तब रघुनाथजी के चरणों में प्रेम होता है। आगे चौपाई में कहा है

फि 'राम ब्रह्म परमारथ रूपा।' जो राम ब्रह्म हैं, उन्हीं ब्रह्म के ही पाद (चरण) (विराट, हिरण्यगर्भ, ईश्वर और ब्रह्म) यही श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी को अभीष्ठ हैं। इसी को श्रुति भी कहती है। जिसको पीछे चौपाई ५८ पृष्ठ १२७ पर कहा है। यथा—

श्रुति-सर्वं ह्येतद् ब्रह्मायमात्माब्रह्म सोऽयमात्मा चतुष्पाद ॥

(रामोत्तर ता० उ० २—माण्डू क० उ० २)

श्रुत्यर्थ—ये सब ब्रह्म ही है, यह आत्मा ही ब्रह्म हैं, यह आत्मा चार पाद वाला है। वह पाद (चरण) (१) जागृत, विश्व, विराट, (२) स्वप्न, तैजस, हिरण्यगर्भ, (३) सुषुप्ति, प्राज्ञ, ईश्वर (४) तुरीय, कूटस्थ, ब्रह्म यही राम हैं, यही राम के वास्तविक चरण हैं। इन्हीं में प्रेम हो जाता है। (चरण, पाद, भाग, अंश, माला इत्यादि प्रर्यायवाची हैं।)

अथवा श्रुति-सर्वोपाधि विनिर्मुक्तं स्वात्मानं भावयेत्सुधीः ॥

एवं यो वेद तत्त्वेन ब्रह्म भूयाय कल्पते। (कठ रुद्र० उ० ४१. ४२)

भावार्थ—अतएव बुद्धिमान पुरुष अपने आपको मैं सब उपाधियों से मुक्त हूँ, इस प्रकार चिन्तन करे। इस प्रकार जो तत्त्वतः आत्मा है, वह ब्रह्म तत्त्व को प्राप्त करने योग्य होजाता है। यही सच्चा अनुराग है।

मू.चौ०—राम ब्रह्म परमारथ रूपा। अविगत अलख अनादि अनूपा ॥
सकल विकार रहित गत भेदा। कहि नित नेति निरूपहिं बेदा॥६४॥

अर्थ—श्रीरामजी ही परमार्थ स्वरूप परब्रह्म हैं। वे अविगत (जानने में न आने वाले) अलख (स्थूल दृष्टि से देखने में न आने वाले। आदि रहित, उपमा रहित, अद्वितीय, सब विकारों से रहित और भेद शून्य हैं, वेद जिनका नित्य 'नेति-नेति' कहकर निरुपण करते हैं ॥६४॥

प्रश्न—हे प्रभो? 'राम ब्रह्म परमारथ रुपा' कहने का क्या अभिप्राय है?

उत्तर—श्रुति-एकं ब्रह्म चिदाकाशं सर्वात्मकमखण्डितम्। (मह० उ० ५।५६)

भावार्थ—ब्रह्मराम एक हैं चिदाकाश स्वरूप हैं, सर्वस्वरूप है, और अखण्डित हैं। अर्थात्—अद्वैत स्वरूप हैं। 'अविगत' अर्थात्-मनोवाचमगोचरं ब्रह्म। श्रुतिः अर्थात्-ब्रह्मराम मन-वाणी से अतीत हैं। 'अलख' जो चर्म चक्षु आदि से देखा न जा सके। 'अनादि' अर्थात्-आदर रहित (जन्म रहित) 'अनूपा' अर्थात्-उपमा रहित। यथा—

चौ०—जेहि समान अतिसय नहिं कोई।३।६।४॥

अद्वितीय होने से उनके समान दूसरा है ही नहीं। यथा—

छं०—निरुपम न उपमा आन राम समान राम निगम कहै।७।९२॥

प्रश्न—श्रीगुरुदेव? 'सकल विकार रहित गत भेदा।' कथन का क्या रहस्य है?

उत्तर श्रुति–तद्ब्रह्म तापत्रयातीतं षट्कोशविनिर्मुक्तं षडूर्मिवर्जितं पञ्चकोशातीतं षड्भावविकारशून्यमेनमादिसर्वविलक्षणं भवति । तापत्रयं त्वाध्यात्मिकाधिभौतिकाधिदैविकं कर्तृकर्मकार्यं ज्ञातृज्ञानज्ञेय-भोक्तृभोगभोग्यमिति त्रिविधम् । त्वङ् मांसशोणितास्थिस्नायु मज्जाः षट्कोशाः कामक्रोधलोभमोहमदमात्सर्यमित्यरिषडवर्गः । अन्नमय प्राणमयमनोमयविज्ञानमवानन्दमया इति पञ्चकोशाः । प्रियात्मजननवर्धनपरिणामक्षयनाशाः षड्भावाः । अशनायापिपासाशोकमोहजरामरणानीति षडूर्मयः । कुलगोत्रजातिवर्णाश्रमरूपाणि षड्भ्रमाः । एतद्योगेन परमपुरुषो जीवो भवति नान्यः ।। (मुद्गलोपनिषत् ४)

श्रुत्यर्थ–वह ब्रह्म यह जो राम हैं, तीनों तापों से रहित, छः कोशों से शून्य, षड्उर्मियों से वर्जित, पञ्चकोशों से अतीत, षड् भाव विकारों से रहित, इस प्रकार सबसे विलक्षण हैं। आध्यात्मिक, आधिभौतिक, और आधिदैविक ये तीन ताप हैं, जो कर्ता, कर्म-कार्य, ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय और भोक्ता-भोग और भोग्य इस प्रकार एक-एक त्रिविध हैं। चर्म, माँस, रक्त, अस्थि, नसें और मज्जा ये छः कोश (धातु) हैं। काम, क्रोध लोभ, मोह, मद और मात्सर्य ये छः शत्रु वर्ग हैं। अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय ये पंचकोश हैं। प्रिय होना, उत्पन्न होना, बढ़ना, बदलना, घटना और नाश होना ये छः भाव विकार हैं। भूख-प्यास, शोक-मोह, जरा और मृत्यु ये छः उर्मिया हैं। कुल, गोत्र, जाति, वर्ण, आश्रम और रूप ये छः भ्रम होते हैं। इन सबके योग से परम पुरुष ही जीव होता है। अन्यथा नहीं। 'गतभेद' अर्थात् भेद रहित-भेद तीन प्रकार का होता है–सजातीय भेद, विजातीय भेद और स्वागत भेद, सो श्रीरामजी तीनों भेदों से रहित हैं, क्योंकि श्रीरामजी की जाति का (आत्मा) दूसरा राम नहीं है। यह श्रीरामजी ने श्रीमनुजी के प्रति स्वयं कहा है—

चौ० आप सरिस खोजौं कहँ जाई। नृप तव तनय होव मैं आई ।।१।१५०।१।।

इसलिये श्रीरामजी में सजातीय भेद नहीं। विजातीय भेद नहीं है क्योंकि श्रीरामजी सत्य-स्वरूप हैं और उनसे अन्य सब असत् है असत् कोई वस्तु नहीं, इसलिये श्रीरामजी में विजातीय भेद भी नहीं, और स्वगत भेद नहीं–क्योंकि साकार वस्तु जो शरीर है इसी में हाथ, पैर, मुखादिक स्वगत भेद है सो वह श्रीरामजी (आत्मा) निराकार-निर्गुण है और अशरीर हैं, इसलिये श्रीरामजी सब भेदों से रहित हैं।

प्रश्न हे स्वामिन ? 'कहि नित नेति निरूपहि वेदा' कहने का क्या भाव है ?

उत्तर—हे सुव्रत ! जो श्रीरामजी परमार्थ रूप, अविगत, अलख, अनादि, अनूप, भेद और विकार रहित हैं, उन्हीं को श्रुति-नेति-नेति शब्दों से कहती है। यथा—

श्रुति-एवं स्थूलं च सूक्ष्मं च शरीरं नाभिमन्यते।
प्रत्यग्ज्ञानशिखिध्वस्ते मिथ्या ज्ञानेसहेतुके।
नेति नेतीति रूपत्वादशरीरो भवत्ययम्॥ (वाराह उ० २।६८)

श्रुत्यर्थ- इस प्रकार स्थूल और सूक्ष्म और 'च' शब्द से कारण शरीर को मानते हुए। प्रत्येक ज्ञान स्वरूप, मिथ्या ज्ञान को विध्वंस करने वाले जिसको 'नेति-नेति' कार्य और कारण का निषेध करके वेद निर्देश करते हैं, वह आत्मा स्वरूप श्रीरामजी अशरीर होते हुए भी परमार्थरूप शरीर धारी से दीखते हैं।

मूल दो०-भगत भूमि भूसुर सुरभि, सुर हित लागि कृपाल।
करत चरित धरि मनुज तनु, सुनत मिटहि जग जाल ॥२।६३॥

अर्थ-वही कृपालु श्रीरामचन्द्रजी भक्त, भूमि, ब्राह्मण, गऊ और देवताओं के हित के लिए मनुष्य शरीर धारण करके लीलाएँ करते हैं, जिनके सुनने से जगत् के जंजाल मिट जाते हैं ॥२।६३॥

प्रश्न-हे भगवन्? भगत भूमि भूसर सुरभि, सुर हित लागि कृपाल।' कहने का क्या तात्पर्य है?

उत्तर-हे प्रिय दर्शन? भक्त, गौ और ब्राह्मणों की रक्षा के लिए, भूमि का भार उतारने के लिये और देवताओं को बन्दीगृह से छुड़ाने और स्ववश बसाने के लिये, अजन्मा होने पर भी वह अपनी इच्छा से शरीर धारण करते हैं। और 'करत चरित धरि मनुज तनु, सुनत मिटहि जग जाल।' अर्थात् ब्रह्म का अवतार लेना, चरित्र करना और चरित्र का महात्म्य कि जिनको सुनकर मनुज जन्म-मरणादि रूपी जग जाल से छूट जाते हैं। क्योंकि यह रामचरित्र अद्वैतवाद है। अद्वैतवाद एवं वेदान्त के श्रवण, मनन, निदिध्यासन से भवपार होते हैं। चौ० सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं। कृपासिंधु जनहित तनु धरहीं ॥१।१२२।१॥ अथवा अनुग्रहाय भूतानां मानुषं देहमास्थितः
भजते तादृशी क्रीडा याश्रुत्वा तत्परो भवेत्॥ (भाग० १०।३३।३७॥

भावार्थ-भगवान् भक्तों पर कृपा करने के लिये ही मनुष्य रूप में प्रकट होते हैं। और मनुष्यों की सी लीला करते हैं। जिन्हें सुनकर जीव भगवत परायण हो जाते हैं।

* श्रीवाल्मीकि सम्वाद-अयोध्याकाण्ड *

मूल सो०-राम स्वरूप तुम्हार, बचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति-नेति नित निगम कह ॥२।१२६॥

अर्थ-हे राम? आपका स्वरूप वाणी के अगोचर, बुद्धि से परे, अज्ञात अकथनीय और अपार है वेद निरन्तर उसको 'नेति-नेति' कहकर वर्णन करते हैं, अर्थात् इति नहीं लगाते, जितना हमने कहा है इतना ही नहीं है, उसकी थाह नहीं वह ऐसा ही नहीं है ॥२।१२६॥

प्रश्न—हे प्रभो ? 'राम स्वरूप तुम्हार वचन अगोचर बुद्धि पर।' कहने का क्या अभिप्राय है ?

उत्तर—वाणी से परे-श्रुति-यतो-वाचो निवर्तन्तो। अप्राप्यमनसा सह।

ब्रह्मोपनिषद्-शरभ-उ० १७ (तैत्ति० उ० २।४।१-२।६।६ शाण्डिक उ० २)

अर्थात्-जहाँ से मन के सहित वाणी उसे न पाकर लौट आती है।। 'बुद्धि पर' अर्थात् जितने भी अनुमान आदि प्रमाण हैं, उन सबों से आप पृथक हैं। 'अविगत' अर्थात् अव्यक्त, जो जाना न जाय। अथवा सबमें व्याप्त तथा सबसे भिन्न। 'अकथ अपार' अर्थात् वाणी और बुद्धि की पहुंच से परे है, अतः अकथ व अपार हैं।

प्रश्न—श्री गुरुदेव ? 'नेति-नेति नित निगमकह' कथन करने का क्या रहस्य है ?

उत्तर—श्रुति-स एष नेति नेत्यात्माऽगृह्योनहि गृह्यतेऽशीर्योनहि शीर्यतेऽसंगो नहि सज्यतेऽसितोन व्यथते न रिष्यति।। (बृ०उ०३।६।२६-४।२।४।४।४।२२-४।५।१५)

श्रुत्यर्थ-वह यह 'नेति-नेति' इस प्रकार निर्देश किया गया आत्माराम अगृह्य हैं, उनका ग्रहण नहीं किया जाता, अशीर्य है, उनका विनाश नहीं होता, असंग हैं, आसक्त नहीं होते-उनका संग नहीं होता, अवद्ध हैं इसलिये व्यथित नहीं होते और क्षीण नहीं होते, श्रुति अनात्म के प्रतिषेध से ही ब्रह्म को दिखलाती हैं।। परन्तु—

मू०चौ०—जग पेखन तुम्ह देखन हारे। बिधि हरि संभु नचावनि हारे।।
तेउ न जानहि मरमु तुम्हारा। और तुम्हहि को जाननि हारा।।६५।।

अर्थ—हे राम ? आप द्रष्टा हैं और जगत् दृश्य है, आप ब्रह्मा, विष्णु और महेश को भी नचाने वाले हैं। वे भी आपका मर्म नहीं जानते, तब और कौन आपको जानते वाला हो सकता हैं।।६५।।

प्रश्न—हे स्वामिन ? 'जग पेखन तुम्ह देखन हारे।' कहने का क्या भाव है ?

उत्तर—हे सुव्रत ? जगत दृश्य है आप द्रष्टा हैं। जग मायिक पंचतत्वमय है, जड़ है, आप मायिक गुणों से परे हैं। इसी से आप देखते हैं, जगत् आपको नहीं देख पाता। जीव विधि, हरि, हर की पदवी पाजाय तो भी नाचता ही रहेगा-विधि, हरि, हर जगको नचाते वाले हैं; जो रजोगुण, सत्त्वगुण, और तमोगुण रूपी डोरी से नचाते हैं। और आप देखते हैं। आपको रिझाने के लिये यह तमाशा करते हैं।

प्रश्न—भगवन् ? 'तेउ न जानहिं मरमु तुम्हारा। और तुम्हहि को जाननि हारा।।' कहने का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—हे प्रिय दर्शन ? इस जगत के ब्रह्मा उत्पन्न करने वाले, विष्णु पालन करने वाले और शम्भु संहार करते हैं, ये भी मर्म नहीं जानते। यथा—

चौ.-जाकें बल बिरंचि हरि ईसा। पालत सृजत हरत दससीसा॥५।२१।३

छं० पालन सुर धरनी अद्‌भुत करनी मरम न जानइ कोई।
सारद श्रुति सेषा रिषय असेपा जा कहुं कोउ नहिं जाना ॥१।१८६॥

परन्तु—

मूल चौ०—सोइ जानइ-जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई॥
चिदानंद मय देह तुम्हारी। बिगत बिकार जान अधिकारी ॥६६॥

अर्थ—जो जानना चाहता है उसे ही आप जना देते हैं। आपको जानते ही वह आपका ही स्वरूप व आप (ब्रह्म) हो जाता है। आपकी देह चिदानन्दमय है, विकार रहित है, इस रहस्य को विकार रहित अधिकारी पुरुष ही जानते हैं ॥६६॥

प्रश्न—हे प्रभो ? 'सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई ॥' कहने का क्या अभिप्राय है ?

उत्तर—श्रुति-यमेवैष वृणते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्माविवृणुते तनूंस्वाम् ॥
(कठोपनिषत् १।२।२३–मुण्डक० उ० ३।२।३)

श्रुत्यर्थ—जो (विद्वान्) परमात्मा की प्राप्ति करने की लालसा करता है, उस इच्छा से ही परमात्मा की प्राप्ति हो सकती है, उसके प्रति परमात्मा राम अपने आत्म स्वरूप को व्यक्त (प्रकट) कर देते हैं।

श्रुति—यदा पश्य पश्यते रुक्मवर्णं कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्।
तदा विद्वान्पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति ॥
(मुण्डक० उ० ३।१।३)

भावार्थ—जब यह द्रष्टा (जीवात्मा) सबके शासक ईश्वर के भी आदि कारण सम्पूर्ण जगत् के कारण दिव्य प्रकाश स्वरूप परम पुरुष राम को प्रत्यक्ष कर लेता है, उस समय पुण्य-पाप दोनों को भली भाँति त्यागकर निर्मल हुआ वह ज्ञानी महात्मा सर्वोत्तम समता (अद्वैतता) को प्राप्त हो जाता है। जो समता अद्वैतता) को प्राप्त हैं वही भक्त हैं, और जो द्वैत को प्राप्त है वह भक्त नहीं अभक्त (विभक्त) हैं, इसी लिये आपको भक्त ही जानते हैं और वह समरूप ब्रह्म ही हो जाते हैं यथा–'ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति।' श्रुति (मुण्डक० उ० ३।२।९)

प्रश्न—श्री गुरुदेव ? 'चिदानंद मय देह तुम्हारी। विगत विकार जान अधिकारी' कथन का क्या रहस्य है ?

उत्तर—चित् (सम्यक ज्ञान) और आनन्दमय है देह प्रभु आपकी, पञ्च तत्त्व व भूतमय नहीं है न कर्म जनित है, किन्तु दिव्य तन है। देह देही भेद रहित है, आप अद्वैत आत्मा हैं, आपको अधिकारी (चतुर्थ साधन–विवेक, वैराग्य, षट् सम्पत्ति और मुमुक्षुता सम्पन्न) पुरुष ही जानते हैं। अनधिकारी द्वैतवादी जो अद्वैत को न मानने वाले तथा न जानने वाले नहीं जानते क्योंकि वे प्रपञ्चरत विभक्त-विकार युक्त हैं।

मूल दो०—पूँछेहु मोहि कि रहौं कहँ, मैं पूँछत सकुचाउँ।
जहँ न होहु तहँ देहु कहि, तुम्हहि देखावौं ठाउँ ॥२।१२७॥

अर्थ आपने मुझसे पूछा कि मैं कहाँ रहूँ ? परन्तु मैं यह पूछते सकुचाता हूँ कि जहाँ आप न हों, वह स्थान बता दीजिये तब मैं आपके रहने के लिये स्थान दिखाउँ ॥२।१२७॥

प्रश्न—हे स्वामिन् ? 'पूछेहु मोंहि किरहौं कहँ, मैं पूँछत सकुचाउँ। जहँ न होहु तहँ देहु कहि' कहने का क्या भाव है ?

उत्तर- हे सुव्रत ? आप तो साक्षात्परब्रह्म परमेश्वर हैं, जीवन का अभिनय कर रहे हैं, इसी से आपको मुझ न पूछने में संकोच नहीं—कि मैं कहाँ रहूँ, परन्तु मैं पूछते सकुचाता हूँ। संकोच यह है कि आपकी बात का खंडन होता है, वादी प्रतिवादी कहाऊँगा। अतः मुझे संकोच हो रहा है कि मैं आपसे कैसे पूँछूँ कि पहले आप वह जगह बतलाईये जहाँ आप न हों। यथा—

श्रुति—एषह देवः प्रदिशोऽनुसर्वाः। (श्वेताश्वतर० उ० २।१६)

निश्चय ही आप परमदेव परमात्मा राम समस्त दिशा और अवान्तर दिशाओं में अनुगत (व्याप्त) हैं। अथवा श्रीशिव वाक्य-'हरि व्यापक सर्वत्र समाना। देस काल दिसि विदिसिहु माही। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं ॥१।१८५.३॥ 'तुम्हहि देखावौं ठाउँ ॥' अर्थात्–आप एक देशीय तो हैं नहीं। यदि मैं कहूँ कि अमुक स्थान पर रहिये तो आपमें देश, काल और वस्तु परिच्छेद दोष आयेगा। इससे ब्रह्मावतार का रहस्य खोल दिया।

* श्रीराम-लक्ष्मण-सम्वाद–अरण्यकाण्ड *

मूल दो०—ईश्वर जीव भेद प्रभु, सकल कहौ समुझाइ।
जातें होइ चरन रति, सोक मोह भ्रम जाइ ॥३।१४॥
मू.चौ०-थोरेहि महँ सब कहउँ बुझाई। सुनहु तात मति मन चित लाई ॥

अर्थ प्रभो ? ईश्वर और जीव का भेद, सब समझाकर कहिए, जिससे आपके चरणों में मेरी रति हो, और शोक, मोह, भ्रम नष्ट हो जायें ॥३।१४॥ (श्रीराम जी ने कहा) हे तात ? मैं थोड़े में ही सब समझाकर कहे देता हूं। तुम बुद्धि, मन और चित्त लगाकर सुनो ॥६७॥

प्रश्न—हे भगवन् ? 'ईश्वर जोव भेद प्रभु, सकल कहौ समुझाइ।' कहने का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर - हे प्रिय दर्शन ? ईश्वर और जीव दोनों चेतन हैं अनादि हैं परन्तु एक सर्वज्ञ और दूसरा अल्पज्ञ, यह भेद क्यों यह जानना चाहते हैं (श्री लक्ष्मणजी) यह सब समझाकर कहिए।

प्रश्न - हे प्रभो ? 'जातें होइ चरन रति'-भक्ति न माँगकर रति क्यों माँगते हैं प्रभो ? रति और भक्ति में कुछ अन्तर है क्या ?

उत्तर - हे प्रिय वत्स ? प्रायः वहुत से मनुष्य भक्ति और रति को एक ही समझते हैं, परन्तु यह एक होते हुए भी एक नहीं हैं। इसको यो समझिए—सम्वन्ध तीन प्रकार का होता है, (न्याय मत के अनुसार नहीं) इस प्रकार (१) सहज सम्वन्ध माता-पिता, वहिन-भाई का। (२) माना हुआ—पति-पत्नि का और (३) भय से—स्वामी-सेवक आदि का, इस पर भक्त का प्रश्न—आप नारी का सम्वन्ध माना हुआ कृत्रिम वताते हैं तो भक्ति व आचार्यों ने भगवान् के प्रति 'कान्ताभाव' को उत्तम क्यों कहा ?

उत्तर—कान्ता भाव-स्त्री भाव नहीं है, वह तो प्रिया भाव है प्रिया-प्रियतम (कान्ता-कान्त) का अभिन्न सम्वन्ध होता है, और नारी (पति-पत्नि में भेद भाव बना रहता है।

प्रश्न—यह कैसे जाना जाये ? उत्तर—प्रिया और पत्नी के अन्तर का स्पष्ट माण-श्रीराधिकाजी और रुक्मिणीजी आदि रानियाँ—एक दिन सर्वनियन्ता-सर्वाधार, सर्वेश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी कौतूहल वश नरनाट्य का अभिनय करने लगे, क्या अद्भुत खेल रचा, कि मेरे सिर में दर्द हो रहा है, यह सुनकर प्राणप्रिया श्रीरुक्मिणीजी आदि रानियाँ आने लगी, कोई सिर दबाये, कोई सहलाये, कोई हवा करे, परन्तु सिर दर्द बढ़ता ही गया, अब क्या द्वारकाजी के वैद्यराज, टोना-टोटका करने वाले आने लगे—कोई सिर पर औषध मले, कोई झाड़-फूंक करे, कोई मन्त्र पढ़े, कोई तावीज भरे, कोई दान करावे, कोई भभूत लगावे, परन्तु नटवर विहारी का सिर दर्द तनिक भी कम न हुआ और वढ़ता ही गया, बेचैनी, घवराहट, लौट-पल्ट कभी बैठा होना, कभी खड़ा होना, दीवार में सिर मारना, चिल्लाना, अनेक व्याधियों ने द्वारकाजी में हल-चल मचादी, सबके धैर्य छूट गये, मुख मुर्झा गये, चारों ओर करुण-क्रन्दन नृत्य करने लगा, इतने में ही ब्रह्मर्षि नारद जी महाराज आ पहुंचे, नारदजी के आते ही पटरानियों को कुछ सान्त्वना सी मिली श्री रुकमणि जी आदि रानियों ने श्रीनारदजी से प्रार्थना की, प्रभो ? आप पितामह ब्रह्माजी के मानसिक पुत्र हैं, सर्वविद्या विशारद हैं, तन्त्र, मन्त्र, यन्त्रादि के ज्ञाता हैं। यथा—दो० त्रिकालज्ञ सर्वज्ञ तुम्ह गति सर्वत्र तुम्हार ॥१।६६॥ अर्थात्—हे मुनिश्वर ? आप त्रिकालज्ञ और सर्वज्ञ हैं, आपकी सर्वत्र पहुंच है, अतः आप ही कुछ उपाय कीजिये, जिससे प्राणनाथ का कष्ट शान्ती हो। श्रीनारदजी ने अच्छा कहकर स्वीकृति दी, और श्रीकृष्णचन्द्रजी के पास पहुंच कर प्रार्थना की, हे जगद्गुरु ? हे जगत् वैद्य ? आप ही अपने दर्द की कोई औषध बताएँ, तो उपचार किया जाये श्रीहरि बोले—नारदजी ? औषध तो सरल है, परन्तु उपलब्ध होना असम्भव तो नहीं, परन्तु कठिनसाध्य अवश्य है, नारदजी ने कहा प्रभो ? बतलाइये मैं अवश्य उसे प्राप्त करूंगा—और प्रभु के कष्ट को हरूंगा। अच्छा तो श्री भगवान् ने कहा ? नारदजी कोई हमारा प्रिय अपने चरणों की धूल हमें देदे या हमारे सिर पर लगादें तो

हमारा सिर दर्द शान्त हो जाये यह सुनते ही नारदजी बोले, प्रभो ? यह तो बहुत सहज है, यहाँ पर आपके ऊपर प्राण न्यौछावर करने वाली आपकी आठ-पटरानी तथा १६१०० सोलह हजार सो रानी जो आपके लिये सब कुछ अर्पण करने को तैयार हैं, मैं अभी उनसे पैर रज लाता हूँ। यह कहकर नारदजी श्रीरुक्मिणीजी आदि रानियों के पास जाकर बोले—जिस औषध से नट नागर का सिर दर्द दूर होगा, वह औषध तुम्हारे पास है, वह दे दो—यह सुनते ही रानियों ने कहा शीघ्र बताओ नारदजी, हम वह ही करें। नारदजी ने कहा—कि तुममें से कोई अपने चरण की रज अपने प्राण प्यारे के माथे पर लगादो या हमें देदो हम लगादें, बश औषध लगते ही रोग शान्त, यह सुनकर श्रीरुक्मिणीजी आदि रानियों ने कहा, नारदजी आप धर्म के पूर्ण ज्ञाता हैं, सर्व शास्त्र विशारद हैं, पति-पत्नि के धर्म को खूब जानते हैं, बताओ तो सही हमसे अपने पैर की धूल प्राणनाथ के सिर पर लगवा कर हमें किस नरक में भेजना चाहते हो नारद; ऐसी अनर्थकारी बात कहते आपको संकोच नहीं हुआ। यह सुनकर नारदजीं मुँह नीचे किये भगवान् के पास खड़े हो गए, भगवान ने पूछा कहो नारद कुछ बना, औषधी मिली ? नारदजी ने कहा भगवन्, यह सुनकर व्रजनन्दन बोले—नारद अब आप व्रज चले जाओ, कदाचित् वहाँ औषधि प्राप्त हो जाये, फिर क्या देर, नारदजी वृज पहुंचे, वहाँ वृषभानु दुलारीजी, अपनी सखी-सहेलियों से घिरी शोक मग्न प्रियतम की वियोगाग्नि से कृश शरीर-प्रभाहीन बैठी थी, कारण था कि कुछ काल से प्रियतम प्यारे का कोई सन्देश नहीं मिला था, नारदजी को सहसा आया देख मग्न हो गई और बोली आओ नारदजी सुनाओ द्वारकाजी कब के गये हो, प्राण प्यारे-नन्ददुलारे जीवन हमारे कुशल तो हैं न ? नारदजी ने कहा मैं अभी द्वारकाजी से आ रहा हूँ, श्री व्रजराजनन्दनन्दन के सिर में बड़ी पीडा हैं, वे बड़े व्यथित-व्यथा में तड़फ रहे हैं लाडलीजू; बस इतना सुनते ही लाडली जी को पसीना आगया, कदली की तरह काँपने लगी और गिडगिडाते हुए बोली—क्या द्वारकाजी में प्राणवल्लभ-प्राणप्यारे के रोग की औषधि नहीं मिली नारदजी ? नहीं मिली लाडली जू, तब ही तो हम यहाँ आये हैं, यह सुनते ही श्रीराधाजी ने कहा—बताओ शीघ्र बताओ नारदजी वह औषध कौनसी है, जिसके लिये आप यहाँ आये हो, यह सुनकर नारदजी ने कहा, लाडलीजू वह औषध है प्रियजन की चरण रज, बस इतना सुनते ही राधिकाजी ने कहा; लो यह लो चरण धूल नारदजी, और शीघ्र इसे प्राणवल्लभ के माथे पर लगाओ, उन्हें कष्ट से बचाओ, यह सुनकर नारदजी ने कहा—आप यह क्या कर रही हो लाडली जू, अपने चरणों की रज को लाडलेजू के माथे पर लगवाकर किस नरक में जाना चाहती हो लाडली जू ? इस पर श्रीराधाजी ने कहा—हम नरक ही नहीं—महा नर्क में चली जायँ नारदजी; परन्तु हमसे प्राणप्यारे का कष्ट नहीं सुना व देखा जाता, यह है कान्ता (प्रिया) भाव और श्री रुक्मिणीजी आदि रानियाँ हैं पत्नी (नारी) इसी प्रकार 'भक्ति' तो नारी स्थानीय है और रति' कान्ता स्थानीय है। 'भक्ति' में भगवान् से भेद बना रहता है एकत्व नहीं होता, और 'रति' अभिन्न (अद्वैत) भाव है। इसी से कहते हैं—

'होइ चरन रति'। 'सोक मोह भ्रम जाइ' अर्थात् श्रीलक्ष्मणजी का शोक-मोह-भ्रम मिटे तो चरण रति हो, अथवा चरण रति हो तो शोक-मोह और भ्रम मिटे, यह सुनकर श्रीराघवेन्द्र सरकार ने कहा—

प्रश्न—श्रीरामजी–आप तो नित्य, मुक्त, शुद्ध, बुद्ध, निर्मल, निर्विकार, आनन्दस्वरूप हो, ये विकार जिनमें हैं उनको लाओ तो चिकित्सा की जाय ?

उत्तर—लक्ष्मणजी–भगवन् ? वह कौन है जिनको यह विकार (रोग) हैं वह कृपा करके बतायें।

श्रीरामजी–सुनहु तात ?

लक्ष्मणजी–कहहु भ्रात ?

श्री रामजी—'मति मन चित लाई।' अर्थात् श्री रामजी ने कहा, बुद्धि, मन और चित्त को लाओ ये बीमार हैं, ये विकार युक्त है ?

प्रश्न—श्री लक्ष्मण जी–प्रभो ? कौन सी बीमारी (विकार) किसमें हैं ?

उत्तर—श्री रामजी–शोक-चित्त का विकार (रोग) है। मोह-मन का विकार है और भ्रम बुद्धि का विकार (रोग) है,

प्रश्न – श्री गुरुदेव ? यह किस प्रकार जाना जाय ?

उत्तर – हे सोम्य ? तीन स्थानों पर तीन को शोकादि हुए,

प्रश्न—हे स्वामिन् ? किस-किस स्थान पर किस-किस को शोकादि हुए ?

उत्तर—हे सुव्रत ? दण्डक वन में 'सतीजी' को शोक हुआ, यथा—

चौ०—नित नव सोचु सती उर भारा।१।५९।१ यह चित्त में हुआ, यथा—

हृदय सोच समुझत निज करनी। चिंता अमित जाइ नहिं वरनी ॥१।५८।१

अर्थात् चिन्ता-चित्त में ही होती है, चिन्ता, सोच, शोक, पर्यायवाची हैं। और बाल लीला में श्री काकभुशुण्डिजी को 'मोह' हुआ, यथा—

चौ०–जेहि विधि मोह भयउ प्रभु मोही। सो सब कथा सुनावउँ तोही ॥७।७४।१

यह मोह मन में होता है, यथा—

दो०—प्राकृत सिसु इव लीला, देखि भयउ मोहि मोह।
कवन चरित्र करत प्रभु, चिदानन्द संदोह ॥७।७७ (ख)

चौ०–इतना मन आवत खगराया। रघुपति प्रेरित व्यापी माया ॥७।७८।१॥

अर्थात् 'मोह' मन की बीमारी व विकार है। और रण क्रीडा में-नागपास बन्धन देखकर श्री गुरुजी को भ्रम हुआ, यथा—

चौ०–सोइ भ्रम अब हित करि मैं माना।७।६९।१॥ भ्रम बुद्धि का विकार है, यथा—

दो०—भव बंधन ते छूटहिं, नर जपि जाकर नाम।
खर्व निसाचर बाँधेउ, नाग पास सोइ राम ॥७।५८॥

चौ०—नाना भाँति मनहि समुझावा। प्रगट न ग्यान हृदयँ भ्रम छावा ॥७।५९।१
अर्थात् मन का समझाना और ग्यान का होना बुद्धि का ही धर्म है इसलिए भ्रम बुद्धि का विकार (रोग) है। इसी से कहा—'सुनहु तात मति मन चित लाई' 'थोरे हि महं सब कहउँ बुझाई।' अर्थात् मैं संक्षिप्त रूप से ही कहूँगा, किन्तु समझा कर कहूंगा कहते हैं। यथा—

मू.चौ०-मैं अरु मोर तोर तैं माया। जेहिं बस कीन्हे जीव निकाया॥६७॥

अर्थ—मैं और मेरा, तू और तेरा यही माया है, जिसने समस्त जीवों को वश में कर रक्खा है ॥६७॥

प्रश्न—हे भगवन् ? 'मैं अरु मोर तोर तैं माया। जेहि वस कीन्हे जीव निकाया॥' कहने का क्या भाव है ?

उत्तर—हे प्रिय दर्शन ? पहले शोक निवृत्ति के लिए माया का स्वरूप समझाते हैं, मैं-मेरा, तू-तेरा, यही माया है, जिसके त्यागने से ज्ञान होता है और ज्ञान से ही शोक नाश होता है। 'तरति शोकमात्मवित्। श्रुति (छा० उ० ७।१।३) आत्म वेत्ता शोक को पार कर जाता है।

प्रश्न—हे प्रभो ? माया का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—श्रुति-माया नाम अनादिरन्तर्वती प्रमाणा प्रमाण साधारणा न सती नासती न सदसती स्वयमविकाराद्विकारहेतौ निरुप्यमाणेऽसती।
अनि रूप्यमाणे सती लक्षणशून्या सा मामेत्युच्यते॥ (सर्वसार० उ० ४)

भावार्थ—माया क्या है ? अनादि अन्तवती प्रमाण अप्रमाण से रहित न सत् है क्योंकि ज्ञान होने से लय हो जाती है। न असत् है क्योंकि अज्ञान से सदा भासती है, और उभय-रूपी (दो रूप) कोई वस्तु नहीं है, स्वयं विकार रहित, परन्तु विकार का हेतु। निरूपण करने पर-ज्ञान से देखने पर असत्य है। और अविचार अर्थात् अज्ञान से सत् है। विना लक्षण के अर्थात् जिसका कोई लक्षण नहीं उसे माया कहते हैं।

प्रश्न—श्री गुरुदेव ? माया से उत्तर प्रारम्भ करने में क्या रहस्य है ?

उत्तर—हे सौम्य ? जीव का अनेक जन्मों से माया का तादात्म्य सम्बन्ध है। उसका स्वरूप जानने में उसकी रुचि होगी। अथवा-माया का स्वरूप जानने से विवेक (सदसत् का ज्ञान) होने से असत् से वैराग्य और सत् आत्मा में अनुराग होगा, जिससे शोक की निवृत्ति होगी। इससे माया का स्वरूप पहले कहा। जो माया ऊपर कही सो कितनी है, कहाँ तक है सो कहते हैं। यथा—

मू.चौ०-गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई।
तेहि कर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ। विद्या अपर अविद्या दोऊ॥६८॥

अर्थ—इन्द्रिय और उनके विषय एवं जहाँ तक मन की दौड़ है, हे भाई ? वह सब माया

जानो। उसके भी एक सत्त्व प्रधान प्रकृति (विद्या) और दूसरी मलिन सत्त्व प्रधान प्रकृति (अविद्या) इन दोनों भेदों को तुम सुनो ।।६८।।

प्रश्न–हे स्वामिन् ? 'गो गोचर जहं लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई ।।' कहने का क्या भाव है ?

उत्तर–हे सुव्रत ? माया मनोमय है, इन्द्रियाँ और मन का वेग माया है, यह दृश्यमान जगत् माया का ठहरा। अपर लोक नेत्रादि इन्द्रियों के गम्य नहीं पर मन अर्थात् अन्तः करण वहाँ जा सकता है, 'तेहिकर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ। विद्या अपर अविद्या दोऊ' अर्थात् –

श्रुति–शक्तिद्वयंहि मायाया विक्षेपावृति रूपकम् ।।१७।।
विक्षेप शक्तिर्लिंगादि ब्रह्माण्डान्तं जगत्सृजेत् ।
अन्तर्दृग्दृश्य योर्भेदं वहिश्च ब्रह्मसर्गयोः ।।
आवृणोत्यपरा शक्तिः सा संसारस्य कारणम् ।
साक्षिणः पुरतोभातं लिंग देहेन संयुतम् ।।
चितिच्छाया समावेशाज्जीवः स्याद्व्यावहारिकः ।
(सरस्वती रहस्य० उ० १७ से २०)

श्रुत्यर्थ–माया की दो शक्तियाँ हैं–विक्षेप और आवरण। विक्षेप शक्ति लिंग शरीर से लेकर ब्रह्माण्ड तक के जगत् की सृष्टि करती है। दूसरी आवरण शक्ति है। जो भीतर द्रष्टा और दृश्य के भेद को तथा बाहर ब्रह्म और सृष्टि के भेद को आवृत करती है। वही संसार बंधन का कारण है। साक्षी को वह अपने सामने लिंग शरीर से युक्त प्रतीति होती है। कारण रूपा प्रकृति में चेतन की छाया का समावेश होने से व्यवहारिक जगत् में कार्य करने वाला जीव प्रकट होता है। अब माया का कार्य बताते हैं। यथा–

मू.चौ०–एक दुष्ट अतिसय दुख रूपा। जाबस जीव परा भव कूपा ।।
एक रचइ जग गुन बस जाकें। प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताकें ।।६९।।

अर्थ–एक (अविद्या) बड़ी ही दुष्टा और अत्यन्त दुःख रूपा है। जिसके वश होकर जीव संसार रूपी कुएँ में पड़ा हुआ है। और एक (विद्या) जिसके वश में गुण हैं और जो जगत्‌की रचना करती है, वह प्रभु से ही प्रेरित होती है उसमें अपना बल कुछ भी नहीं है ।।

प्रश्न–हे भगवन् ? 'एक दुष्ट अतिसय दुख रूपा। जा बस जीव परा भव कूपा ।।' कहने का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर–हे प्रिय दर्शन ? जो दुष्ट होता है वह दोषयुक्त होता है। उससे दूसरों को पीड़ा पहुंचती ही है, अतः कहते हैं 'अतिसय दुख रूपा' यह दुष्ट अविद्या मलिन सत्त्व प्रधान होने से अनेक प्रकार की हो जाती है स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर में अपनापन कराके जीव को बाँध लेती है : यही अविद्या अतिशय दुःख रूप है। यथा-तुलसीदास मैं–

मोर गये विनु निज सुख कवहु न पावै ।। (विनय १२०)

अथवा—श्रुति—द्वे पदे बन्ध मोक्षाय निर्ममेति ममेति च।
ममेति वध्यते जन्तुर्निर्ममेति विमुच्यते ॥
(पैंगल० उ० १६, २०—मह० उ० ४।७०—वराह० उ० २।४३)

भावार्थ—बन्ध और मोक्ष के दो ही कारण बनते हैं—एक अहन्ता और ममता (मैं और मेरा) तथा दूसरा (ममता शून्यता), क्योंकि ममता से प्राणी बन्धन में पड़ता है और ममता रहित होने पर मुक्त हो जाता है।

प्रश्न—हे प्रभो ? एक रचइ जग गुन बस जाकें। प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताकें ॥' कहने का क्या अभिप्राय है ?

उत्तर—हे प्रिय वत्स ? जिसके वश गुण (सत्-रज-तम) हैं, वह 'प्रभु प्रेरित'—प्रभु-आज्ञा से रचना करती है, यथा—

चौ० लव निमेष महुँ भवन निकाया। रचइ जासु अनुसासन माया ॥१।२२५।२॥

श्रीगीताजी में भगवान श्रीकृष्णचन्द्र जी कहते हैं कि मेरे द्वारा प्रेरित मेरी माया जीवों के क्रमानुसार-चराचर जगत् को रचती है, इस हेतु से ही यह संसार आवागमन रूप चक्र में घूमता है, यथा—

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते ॥ (गीता ६।१०) परन्तु

मू॰चौ०—ग्यान मान जहँ एकउ नाहीं। देख ब्रह्म समान सब माहीं ॥
कहिअ तात सो परम बिरागी। तृन सम सिद्धि तीन गुन त्यागी॥७०॥

अर्थ—ज्ञान वह है जहाँ (जिसमें) मान आदि एक भी (दोष) नहीं है और जो सबमें समान रूप से ब्रह्म को देखता है। हे तात ? उसी को परम वैराग्यवान् कहना चाहिये, जो सारी सिद्धियों को और तीनों गुणों को तिनके के समान त्याग चुका हो ॥७०॥

प्रश्न—श्री गुरुदेव ? 'ग्यान मान जहँ एकउ नाहीं।' कथन का क्या रहस्य है ?

उत्तर—हे सौम्य ? 'ग्यान' तज्ज्ञानं निर्मलं सूक्ष्मं निर्विकल्पं यदव्ययम्।
एतत्ते परमं सौख्यं भाषितं ज्ञान मुत्तमम् ॥
(अद्भुतरामा० उत्तर का, सांख्य योग सर्ग ११)

भावार्थ—वह ज्ञान निर्मल, सूक्ष्म, निर्विकल्प और अविनाशी है। यह मैंने तुम से परमोत्तम ज्ञान का वर्णन किया है—यही सम्पूर्ण वेदान्त का सार है।

'मान' मीयते अनेक इति मानम्। अर्थात् जिससे नापा जाता है उसे 'मान' कहते कहते हैं, मायाकृत सारे संसार का माप हो जाता है, परन्तु ज्ञान स्वरूप ब्रह्म का मान (माप) नहीं, इसीलिये 'ब्रह्मविद्'—ब्रह्म ही होता है। वही ज्ञानी है। ज्ञानी में 'मान' नहीं। अर्थात् उसमें अविद्या-विद्या नहीं।

अथवा–'मान जहँ एकउ नाहीं।' अर्थात् ब्रह्म को छोड़ दूसरी बात की मानता नहीं–यथा-'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' श्रुति (छा० उ० ३।१४।१) यह सारा जगत् निश्चय ब्रह्म ही है। अथवा–'नेह नानास्ति किञ्चन' श्रुति (कठोपनिषत् २।१।११) यहाँ ज्ञान के दो स्वरूप कहे–एक प्रथम पाद (मान जहँ एकउ नाहीं) में ब्रह्म के अतिरिक्त दूसरी बात नहीं, और दूसरे पाद (देखि ब्रह्म समान सब माही)।। में ब्रह्म को सब जगह समान भाव से देखे यही ज्ञान है।

प्रश्न—हे स्वामिन् ? कहिअ तात सो परम बिरागी। तृन सम सिद्धि तीन गुन त्यागी।' कहने का क्या भाव है ?

उत्तर–हे सुव्रत ? जो सांसारिक पदार्थों का त्याग करे वह 'वैरागी' और जो दिव्य पदार्थों का त्याग करे वह 'परम वैरागी' सिद्धि तीन गुण त्याग के प्रतीक श्रीभरतलालजी

यथा–दो० भरत हि होइ न राज मदु, बिधि हरि हर पद पाइ।२।२३१।।
बिधि, हरि, हर यह तीनों गुणों के स्वरूप हैं। श्री भरतजी ने तीनों की सिद्धियों को तिनके के समान त्याग कर दिया।

अथवा-मनु-बिधि हरि हर तप देखि अपारा। मनु समीप आए बहु बारा।।१।१४५।१
माँगहु बर बहु भाँति लुभाए। परम धीर नहिं चलहिं चलाए।।१।१४।२

यहाँ रजोगुण अधिष्ठाता विधि सत्वगुण अधिष्ठाता हरि, और तमोगुण के अधिष्टाता हर, अपने गुण सम्बन्धी सब सिद्धियों का लोभ दिखा रहे हैं, पर परम वैराग्यवान् स्वयंभू मनु को उन गुणों तथा सिद्धियों की इच्छा नहीं हुई, यही परम वैराग्य है। अब ईश्वर और जीव का भेद कहते हैं। यथा—

मू. दो०—माया ईस न आपु कहुँ, जान कहिअ सो जीव।
बंध मोच्छ प्रद सर्ब पर, माया प्रेरक सीव।।३।१५।।

अर्थ—जो अपने को माया का ईश (स्वामी) नहीं जानता वही जीव है, जो अपने को अल्पज्ञ, अल्प शक्ति, परिच्छिन्न, स्थूल आदि जानता या मानता है, वही जीव है। जो (क्रमानुसार) बन्धन तथा मोक्ष देने वाला, सबसे परे और माया का प्रेरक है वह ईश्वर है।।

प्रश्न—हे भगवन् ? 'माया ईस न आपु कहुँ जान कहिअ सो जीव कहने का का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—हे प्रियं दर्शन ? इसमें जीव का स्वरूप कहा है। यथा—

श्रुति–आत्माप्यनीशः। (श्वेताश्व० उ० १।२) यह श्रुति आत्मा को अनीश कहती है, इसलिये जो अपने को माया का ईश (नाथ) नहीं जानता वही जीव है, यह श्रुति से सिद्ध होता है, और भी श्रुतियाँ जीव का स्वरूप दिखाती हैं। यथा—

श्रुति जीव इति च ब्रह्म विष्णवीशानेन्द्रादीनां नामरूप द्वारा—
स्थूलोऽहमिति मिथ्याध्यासवशाज्जीवः। (निएनम्वोपनिषत्)

श्रुत्यर्थ—जीव क्या है ? ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्रादि, नामरूप द्वारा स्थूल, शरीर को 'यह ही मैं हूं' ऐसा जो मिथ्याध्यास के वश हैं, वही सब जीव हैं।

श्रुति – कर्तत्व भोक्तृत्वाहकांरादिभिः स्पष्टो जीवः।
जीवाभिमानेन क्षेत्राभिमानः। शरीराभिमानेन जीवत्वम्।
जोवत्वं घटाकाशमहाकाश वञ्यवधानेऽस्ति। (नारद परिव्राजक० उ० ६।१)

भावार्थ—जो कर्तृत्व, भोक्तृत्व, और अहङ्कार आदि से संयुक्त है। वह ही जीव है। उसमें जीवत्व का अभिमान होने से शरीर रूपी क्षेत्र में भी उसका अभिमान है, और शरीर अभिमान के कारण ही उसमें जीवत्व है। परमात्मा से जीवत्व का व्यवधान वैसा ही है, जैसा महाकाश से घटाकाश का। अथवा—

श्रुति—देहोऽहमिति संकल्पः सत्य जीवः स एव हि।
देहोऽहमिति यज्ज्ञानं परिच्छिन्नमितीरितम्॥ (तेजोविन्द० उ० ५।९५)

श्रुत्यर्थ—'देह मैं हूं' (जो) ऐसा संकल्प (करने वाला) वही सत्य जीव है। और 'देह मैं हूं' ऐसा जो ज्ञान है, वह परिच्छिन्न (अल्प) ज्ञान कहा गया है। इससे सिद्ध होता है कि सब श्रुतियाँ जीव को चेतन स्वरूप कहती हैं। यह चेतन-स्वरूप जीव अपने को अनीश मानता है, यही इसका जीवपना है, परन्तु यहाँ कुछ वादी कहते हैं, यह अर्थ ठीक नहीं–इन वितर्क वादियों को श्रुति इस प्रकार कहती है। यथा—

श्रुति—अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयंधीराः पण्डितं मन्य मानाः।
(कठ० उ० १।२।५–मुण्डक० उ० १।२।८)

भावार्थ—अविद्या के मध्य में रहने वाले बहुधा अविवेकी किन्तु हम ही बड़े बुद्धिमान् और पण्डित ज्ञेय वस्तु को जानने वाले हैं ऐसा मानकर अपने को सम्मानित करने वाले विचारक मनुष्य जीव का ऐसा अर्थ करते हैं–जो माया को न जाने, ईश्वर को न जानें और अपने को न जाने वह जीव है। भला विचारो तो सही कितना अनर्थ, श्रुति-शास्त्र, पुराणदि से विपरीत महान् अमङ्गलकारी, क्योंकि जो अपने को न जाने और दूसरे को भी न जाने वह तो जड़ है और श्रुतियाँ स्मृतियाँ सब जीव को चेतन कहती हैं। यथा—ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः॥ (गीता १५।७) इस देह में यह जीवात्मा मेरा ही सनातन अंश है। श्रीमानस में भी कहा है। यथा—

चौ० ईश्वर अंस जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी ॥७।११७।१

अर्थात् जीव ईश्वर का अंश है वह अविनाशी, चेतन, निर्मल, और स्वभाव ही से सुख राशि है। इत्यादि प्रमाणों से जीव की चेतनता सिद्ध होने पर भी उसको जड़ कहना, कि वह अपने को नहीं जानता, माया को नहीं जानता, ईश्वर को नहीं जानता, यह कितनी

अज्ञानता है, कैसा अनर्थ है, क्योंकि श्रुतियाँ जीव-ईश्वर की एकता को ही मोक्ष कहती हैं। और जड़-चेतन की एकता कदापि हो नहीं सकती, इससे मोक्षप्रद शास्त्र वेदान्त 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्य व्यर्थ हो जायेंगे, और न किसी जीव का भव बन्धन ही मिटेगा। इसलिये यह मूढ़कृत अर्थ श्रुति शास्त्रादि विरुद्ध है। जो वे ये कहें कि जीव अपने वास्तविक स्वरूप को नहीं जानता। यदि जीव अपने वास्तविक स्वरूप को जाने, तो जीव का जीवपना और ईश्वर का ईश्वरपना नहीं रहेगा। यथा—

श्रुति—कार्योपाधिरयं जीवः कारणोपाधिरीश्वरः।
कार्यं कारणतां हित्वा पूर्णबोधोऽवशिष्यते ।। (शुकरहस्य० उ० ३।१२)

श्रुत्यर्थ—यह जीव कार्य (शरीर की उपाधि से युक्त है और ईश्वर कारण (माया) की उपाधि सहित है। कार्य एवं कारण रूप को त्यागने से (बाधा करने से) पूर्ण ज्ञानस्वरूप बच रहता है, या पूर्ण ब्रह्म ही हो जाता है। अथवा

श्रुति- जीवभाव जगद्भाव बाधे प्रत्यगभिन्नं ब्रह्मैवावशिष्यते (पैंगल०उ०२।६)

अर्थात्—जब जीव भाव और जगत् भाव का बाध हो जाता है तो प्रत्यग अभिन्न ब्रह्म ही बच रहता है, यही जीव का वास्तविक स्वरूप है। वास्तविक स्वरूप जानने से प्रश्नकर्त्ता का प्रश्न 'ईश्वर जीव भेद प्रभु सकल कहौ समुझाई' यह प्रश्न और उत्तर नहीं बनता। इससे प्रकरण का ही बाध होता है। जब प्रश्न करता भेद जानना चाहता है तो उत्तरदाता श्रीरामजी अभेद रूप उत्तर क्यों देते। और अवास्तविक स्वरूप को वे महा अज्ञानी अङ्गीकार नहीं कर रहे हैं। क्योंकि वे जीव को अनीश भी नहीं मानते। वे कहते हैं कि जीव ईश्वर को और माया को नहीं जानता। परन्तु ईश्वर और माया को तो अज्ञानी (प्राकृतिक मनुष्य) सब ही अङ्गीकार करते हैं कि 'ईश्वर की माया, कहीं धूप कहीं छाया।' या ईश्वर ने हमें यह सुख दुःख दिया इत्यादि। सब जीवों को ईश्वर और माया का भान है। ऐसा प्रसिद्ध जो चेतन जीव है, जिसकी चेतनता सब जीवों में सिद्ध है कि 'मैं हूँ यह मेरा है' ऐसे चेतन को यह कह देना कि वह माया को नहीं जानता और ईश्वर को नहीं जानता, ऐसे मूढ़ नरों को सद्गुरु और साधु पुरुषों का संग नहीं हुआ। यथा—

श्रुति—यथा जात्यन्धस्य रूपज्ञानं न विद्यते तथा गुरुपदेशेनविना-
कल्पं कोटिभिस्तत्त्व ज्ञानं न विद्यते ।। (त्रिपाद्विभूत महा० ना० उ० ५)

श्रुत्यर्थ—जैसे जन्मान्ध को रूप का ज्ञान नहीं होता, उसी प्रकार गुरु उपदेश के बिना करोड़ों कल्पों में भी तत्त्व ज्ञान नहीं होता। इसलिये जो श्रुति सम्मत अर्थ है वह ही ठीक है जो पहले कर आये हैं कि जो अपने को माया का ईश (पति व स्वामी) नहीं जानता वही जीव है।

प्रश्न हे प्रभो ? 'बंध मोच्छ प्रद सर्ब पर माया प्रेरक सीव ।।' कहने का क्या अभिप्राय है ?

उत्तर—हे प्रिय वत्स ? इसमें ईश्वर का स्वरूप कहा गया है। यथा—मिथ्या ज्ञानकृत जो कर्तृत्वाभिमान है, उसे 'बन्ध' कहते हैं। और तत्त्वज्ञान से अज्ञान और उसके कार्य का बाध हो जाता है उसी को मोक्ष कहते हैं, सो बन्ध और मोक्ष प्रदाता ईश्वर है। अथवा—

श्रुति—संयुक्तमेतत्क्षरमक्षरं च व्यक्ताव्यक्तं भरते विश्वमीशः।

(श्वेताश्च० उ० १।८)

अर्थात्—विनाश शील जडवर्ग एवं अविनाशी जीवात्मा (इन दोनों) के संयुक्त रूप व्यक्त और अव्यक्त रूप इस विश्व का धारण और पोषण ईश्वर ही करते हैं। अथवा—'माया प्रेरक' यथा—

चौ० ग्यान अखंड एक सीतावर। माया वस्य जीव चराचर॥
जौं सव के रह ग्यान एक रस। ईश्वर जोवहि भेद कहहु कस॥
माया वस्य जीव अभिमानी। ईस वस्य माया गुन खानी॥
परवस जीव स्ववस भगवंता। जीव अनेक एक श्रीकंता॥
मुधा भेद जद्यपि कृत माया। विनु हरि जाइ न कोटि उपाया॥

दो० रामचन्द्र के भजन विनु, जो चह पद निर्वान।
ग्यानवंत अपि सोनर, पसु विनु पूँछ विषान॥७।७८ (क)

यह प्रसंग उत्तर काण्ड दो० ७८ में आया है इस प्रसंग में श्रीलक्ष्मणजी के प्रश्नों का उत्तर—ईश्वर-जीव का भेद दिखलाकर कहा कि यह भेद मायाकृत मिथ्या है, यह भेद—श्रीराम जी जो आत्मा ही हैं, उनका भजन, अर्थात्—'न' अक्षर से निर्वीज, निश्चय निष्ठापूर्वक, 'भ' अक्षर से अनन्य भक्ति, पराभक्ति, केवल प्रेम, श्रीराम आत्मा में, 'ज' अक्षर से ज्ञान, निश्चय ज्ञान की श्रीराम आत्मा, निष्कल, निर्विकार, अद्वितीय ब्रह्म हैं, ऐसा भाव ही श्रीरामजी का भजन है, इसी से 'निर्वाण' अर्थात् पञ्चक्लेश शून्य पद प्राप्त होने को योग्य है। विना इस भजन के मोक्ष चाहने वाला, 'ग्यानवंत' अर्थात्—शास्त्रों का ज्ञाता भी विना पूँछ-सींग का पशु है। अथवा भजन का स्वरूप चौ० ७८ दो० ७।७१ (ख) पृष्ठ १४२ पर तथा चौ० १०२ पृष्ठ १८४ पर अवलोकन करें।

'सीव' अर्थात्—माया का पति परमात्मा, उसको श्रुति यों कहती है। यथा—

श्रुति- ब्रह्मैव स्वशक्ति प्रकृत्यभिधेयामाश्रित्यलोकान्सृष्टवा
प्रविश्यान्तर्यामित्वेन ब्रह्मादीनां बुद्धीन्द्रियनियन्तृत्वादीश्वरः॥

(निरालम्बोपनिषत्)

श्रुत्यर्थ वह ब्रह्म अपनी शक्ति माया से लोकों को रचकर उनमें प्रवेश कर अन्तर्यामी रूप से ब्रह्मा आदि की बुद्धि आदि का नियन्ता है उसी को ईश्वर कहते हैं।

अव श्रुति जीव-ईश्वर के भेद को दर्शाती है। यथा—

श्रुति—कार्यकारणोपाधि भेदाज्जीवेश्वर भेदोऽपि दृश्यते॥

(त्रिपाद्विभूत महा० ना० उ० ४)

अर्थात्—कार्य तथा कारण रूप उपाधि के भेद से जीव एवं ईश्वर का भेद भी दीखने लगता है। अथवा—

श्रुति—माया सम्वन्धतश्चेशो जीवोऽविद्यावशस्तथा। (कठरुद्र० उ० ३६)

श्रुत्यर्थ—माया के सम्वन्ध से ईश्वर और अविद्या के वश में जीव है। यही इनमें भेद है। वास्तविक चेतनता में भेद नहीं है।

प्रश्न—श्री गुरुदेव—ईश्वर-जीव-भेद के प्रति दृष्टान्त क्या है?

उत्तर—हे सौम्य! दृष्टान्त-जैसे एक नदी उत्तर से दक्षिण को बहती है। उसका एक पूर्वी किनारा है, दूसरा पश्चिमी, नदी के पूर्व दिशा के निवासी कहते हैं उस पार वाले, दूसरी ओर के कहते हैं उस पार वाले, यह भेद किसका किया हुआ है? विचार करने से पता चलता है कि यह भेद जल की धारा का किया हुआ है। यदि जल की धारा सुखा दी जाये तो न पूर्वी किनारा न पश्चिमी किनारा न यह पार न वह पार, सब पृथ्वी ही पृथ्वी है—वैसे ही ईश्वर और जीव में भेद माया की सत्यता रूपी नदी का प्रवाह ही है, यदि माया की सत्यता रूपी नदी को सुखा दिया जाये, अर्थात्—माया सत्य नहीं है ऐसा जान लिया जाये, दृढ़ निश्चय हो जाये तो न कोई ईश्वर है, न कोई जीव, वास्तव परमार्थ में 'जो है सो है'।

दूसरा दृष्टान्त—ईश्वर और जीव में ऐसा ही भेद है, जैसे राजा और कैदी में। इस भेद को करने वाले कौन हैं? बीच का वर्ग (कर्मचारी) जो नौकर हैं, राजा नौकरों पर शासन करता है और नौकर कैदी पर शासन करते हैं, इसी प्रकार ईश्वर और जीव का भेद माया करती है, क्योंकि माया पर ईश्वर का शासन है और जीव पर माया का। यथा—

चौ० माया वस्य जीव अभिमानी। ईस वस्य माया गुन खानी ॥७।७८।६॥
परवस जीव स्ववस भगवंता। जीव अनेक एक श्रीकंता ॥७।७८।७॥
मुधा भेद जद्यपि कृत माया। विनु हरि जाइ न कोटि उपाया ।७।७८।८

दो० रामचन्द्र के भजन विनु जो चह पद निर्वान।
ग्यानवंत अपि सो नर, पसु विनु पूँछ विषान ॥७।७८ (क)

यदि यह जीव माया पर विजय प्राप्त करले, उस पर शासन करने लगे तो ईश ही है, अन्य नहीं।

श्रीरामजी मनुष्य नहीं हैं वह अज, अद्वितीय व्रह्म हैं, ऐसा आगे जाम्बवान्‌जी कहते हैं।

॥ इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुष विध्वंसने ॥

❁ अयोध्या, अरण्य काण्डान्तर्गत चतुर्थः सोपानः समाप्तः ❁

अथ पञ्चम सोपान

॥ जाम्बवान् उपदेश-किष्किन्धा काण्ड ॥

मू.चौ०—जामवंत अंगद दुख देखी। कही कथा उपदेस बिसेषी॥
तात राम कहुँ नर जनि मानहु। निर्गुन ब्रह्म अजित अज जानहु॥७१॥

अर्थ—जाम्वान् ने अंगद का दुःख देखकर अनेक उपदेश की कथाएँ कहीं-(वे बोले) हे तात? श्रीरामजी को मनुष्य न मानो। उन्हें निर्गुण ब्रह्म, अजेय, और अजन्मा समझो॥७१॥

प्रश्न—हे स्वामिन्? 'जामवंत अंगद दुख देखी।' कहने का क्या भाव है?

उत्तर—हे सुव्रत? अंगद का दुःख। यथा—

चौ० कह अंगद लोचन भरि वारी। दुहुँ प्रकार भई मृत्यु हमारी॥
इहाँ न सुधि सीता कै पाई। उहाँ गएँ मारिहि कपिराई।:४।२६।२॥
पिता वधे पर मारत मोही। राखा राम निहोर न ओही॥
पुनि पुनि अंगद कह सब पाहीं। मरन भयउ कछु संसय नाहीं।.४।२६।३

अंगद के इस महाशोक रूपी दुःख को देखा। कहीं कथा उपदेस विसेषी॥' अर्थात् दुःख दूर करने के लिये श्रीभगवान् कथा से बढ़कर और उपदेश नहीं है। अथवा-व्यावहारिक उपदेश सामान्य कहा जाता है और जो परमार्थ के लिये उपदेश होता है वह विशेष होता है। अथवा—श्रीरामचरित्र में से कुछ विशेष चरित्र कहे—जैसे विश्वामित्र यज्ञ रक्षा, शिव चाप भंग, खरदूषणादि का बध, जयन्त कथा इत्यादि कहकर कहा कि क्या कोई मनुष्य ये कार्य कर सकता है। अथवा श्रीराम कथा कहने का यह भी भाव हो सकता है कि इसने रामभक्त सुग्रीव की निन्दा की और सब बानरों ने सुनी, श्रीराम कथा सुनने से ही निन्दा जनित पाप दूर हो जायेगा। यथा—

रामायणं काव्यमनन्तपुण्यं, श्रीशङ्करेणभिहितं भवान्यै।
भक्तया पठेद्यः शृणुयात्स पापैर्विमुच्यते जन्मशतोद्भवैश्च॥
(अध्यात्म रामायण ७।९।७१)

भावार्थ—रामायण नामक यह अनन्त पुण्यप्रद काव्य श्रीशंकर भगवान् ने श्रीपार्वतीजी से कहा है। जो पुरुष इसे भक्ति पूर्वक पढ़ता अथवा सुनता है वह अपने सैकड़ों जन्मों के पाप पुञ्ज से मुक्त हो जाता है।

प्रश्न—हे भगवन्? 'तात राम कहुं नर जनि मानहु। निर्गुन ब्रह्म अजित अज जानहु॥' कहने का क्या तात्पर्य है?

उत्तर—हे प्रिय दर्शन इसको श्रुति इस प्रकार कहती है। यथा—

श्रुति—अशरीरं शरीरेषु महान्तं विभुमीश्वरम्।
आनन्दमक्षरं साक्षान्मत्वा धीरो न शोचति ॥ (जावाल दर्शन०उ०४।६२)

श्रुत्यर्थ—जो इस शरीर में रहकर भी इससे सदा भिन्न हैं, महान् हैं, व्यापक हैं, और सबके ईश्वर हैं, उन आनन्द स्वरूप अविनाशी परमात्मा राम को जानकर धीर पुरुष कभी शोक नहीं करता। हे अंगद तुम भी श्रीरामजी को निर्गुण ब्रह्म, अजेय, और अजन्मा जानो, और दुःख त्याग दो, क्योंकि 'वस्तुतो गुणाभावात निर्गुणा' 'केवलो निर्गुणश्च' (श्वेताश्च० उ० ६।११) इति श्रुते; अर्थात् परमार्थतः उनमें गुणों का अभाव है, इसलिये निर्गुण हैं। श्रुति कहती है—केवल (अद्वैत) और निर्गुण हैं।

अथवा—नित्यानन्द लक्षणेऽस्मिन् योगिनो रमन्ते इति 'रामः'

अर्थात्—नित्यानन्द स्वरूप भगवान् में योगीजन रमण करते हैं, इसलिये वे 'राम' हैं।

*** विभीषण का निश्चय—सुन्दरकाण्ड ***

मू॰चौ०—तात राम नहिं नर भूपाला। भुवनेश्वर कालहु कर काला॥
ब्रह्म अनामय अज भगवंता। व्यापक अजित अनादि अनंता ॥७२॥

अर्थ—हे तात ? श्रीरामजी कुछ मनुष्यों के ही राजा नहीं हैं वे भुवनों के ईश्वर काल के भी काल हैं। वे (सम्पूर्ण ऐश्वर्य, यश, श्री, धर्म, वैराग्य एवं ज्ञान के भण्डार) भगवान् हैं। वे निरामय (रोग रहित) अजन्मा, व्यापक, अजेय, अनादि और अनन्त ब्रह्म हैं ॥७२॥ (अथवा भगवान की व्युत्पत्ति चौ०२ पृष्ठ ५४ चौ० २३ पृष्ठ ९० पर चौ० २९ दो० १।१८ पृष्ठ ९९।१०० पर विशेष वर्णन उदाहरण सहित अवलोकन करें)

प्रश्न—हे प्रभो ? 'तात राम नहिं नर भूपाला।' विभीषणजी के ऐसे कहने का क्या आशय है?

उत्तर—हे प्रिय वत्स ? रावण को ब्रह्मावतार श्रीराम में सन्देह है। वह श्री राघवेन्द्र सरकार को 'नर' सामान्य मनुष्य ही समझता है। यथा—

दो० तेहि रावण कहँ लघु कहसि, नर कर करसि वखान ॥६।२५॥

और सब मन्त्री भी यही कह रहे हैं कि—'नर वानर केहि लेखे माहीं ॥५।३७।५॥

इसी पर विभीषणजी कहते हैं कि 'तात राम नहिं नर भूपाला।' अर्थात् ये मन्त्री जो कहते हैं, तथा आप भी समझ रहे हैं कि ये मनुष्य हैं, राजकुमार हैं, तपस्वी हैं, यह विचार ठीक नहीं श्रीराम तो 'भुवनेश्वर' अर्थात् अनेक ब्रह्माण्डों के ईश्वर हैं' नाथ हैं। और कालहु कर काला।' अर्थात् जो इन ब्रह्माण्डों को काल खा जाता है, उसको भी प्रभु खा जाते हैं। यथा—

चौ० भृकुटि भंग जो कालहिं खाई ।६।६६।१॥ अर्थात् प्रभु काल के भी मालिक हैं, शासक हैं, प्रेरक हैं, नियामक हैं, प्रवर्तक हैं, इस प्रकार प्रभु को देश—कालातीत सिद्ध करके तव उनको ब्रह्म कहते हैं। अर्थात्—

श्रुति--स वा एष शुद्धः पूतः शून्यः शान्तोऽप्राणो-
निरात्माऽनन्तोऽक्षय्यः स्थिरः शाश्वतोऽजः स्वतन्त्रः (ब्रह्म) ॥
(मैत्रायण्य० उ० २।४)

श्रुत्यर्थ—वह यह शुद्ध, पवित्र, शून्य, शान्त, प्राणरहित, देह संघात से रहित, अनन्त, अक्षय, अचल, हमेशा रहने वाला, अजन्मा और स्वतन्त्र (ऐसा ब्रह्म राम है) 'अनामय' अर्थात् कर्म से उत्पन्न हुई वाह्य अथवा आन्तरिक व्याधि से पीडित नहीं होते, इसलिये 'अनामय' हैं। 'अज' अर्थात् न जायते इति 'अज' जातो न जनिष्यते' इति श्रुतेः। जन्म नहीं लेते इसलिये अज हैं, श्रुति कहती है न उत्पन्न होता है न होगा। 'भगवंता' षडैश्वर्यवान् हैं। देखो—चौ० २ पृष्ठ ५४-चौ० २३ पृष्ठ ६० चौ० २६ दो० १।११८ पृष्ठ ९९,१०० पर उदाहरण सहित।

प्रश्न—श्री गुरुदेव ? 'व्यापक अजित अनादि अनंता।' कथन का क्या रहस्य है ?

उत्तर—हे सौम्य ? विद्या और अविद्या दोनों के प्रेरक—इसी से अजित हैं। क्योंकि व्यापक को कौन जीत सकता है। 'अनादि' जिसका कोई जनयिता न हो, 'अनंत' यथा—

श्रुति—अथ कस्मादुच्यतेऽनन्तो यस्मादुच्चार्यमाण एव-
तिर्यगूर्ध्वमधस्ताच्चास्यान्तोनोपलभ्यते तस्यादुच्यतेऽनन्तः ॥
(अथर्वशिरोपनिषत्)

अर्थात्—फिर अनन्त किस प्रकार से कहे गये हैं। ऊपर-नीचे, इधर, उधर, जिनका अन्त उपलब्ध न हो इस कारण से (ब्रह्म राम) अनन्त कहे गये हैं। अथवा—

चौ० आदि अंत कोउ जासु न पावा।१।११८।२॥

जो ऐसे हैं तो शरीर क्यों धारण किया, तिस पर कहते हैं। यथा—

मू.चौ०—गोद्विज धेनु देव हितकारी। कृपासिंधु मानुष तनु धारी॥
जन रंजन भंजन खल ब्राता। बेद धर्म रच्छक सुनु भ्राता॥७३॥

अर्थ—उन कृपा के समुद्र भगवान् ने पृथ्वी, ब्राह्मण, गौ और देवताओं का हित करने के लिये ही मनुष्य शरीर धारण किया है। हे भाई ? सुनिये, वे सेवकों को आनन्द देने वाले दुष्टों के समूह का नाश करने वाले और बेद तथा धर्म की रक्षा करने वाले हैं॥७३॥

प्रश्न—हे स्वामिन् ? 'गो द्विज धेनु देव हितकारी।' कहने का क्या भाव है ?

उत्तर—हे सुव्रत ? 'गो' पृथ्वी को आदि में कहा, क्योंकि पहले पृथ्वी का भार उतरे, निशाचर मारे जायें, तब द्विज, गौ, और देवताओं का हित हो। इसी कारण कृपा के सागर श्रीरामजी ने मनुष्य शरीर धारण किया है।

प्रश्न—हे भगवन् ? 'जन रंजन भंजन खल व्राता।' कहने का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—हे प्रिय दर्शन ? विभीषणजी ने प्रगट नहीं कहा केवल तात्पर्य जना दिया कि भगवान् गो, द्विज, धेनु, देव, वेद और धर्म रक्षक हैं, तुम इनके भक्षक हो, मिलान करें।

श्रीराम	रावण
गो द्विज धेनुदेव हितकारी	जेहि जेहि देस धेनु द्विज पावहि। नगर गाउँ पुर आगि लगावहि ॥१।१८३।३
जनरंजन	मानहिं मातु पिता नहिं देवा। साधुन्ह सन करवावहि सेवा ॥१।१८४।१
भंजन खल व्राता।	बाढे खल बहु चोर जुआरा। जे लंपट परधन पर दारा ॥१।१८४।१
वेद रच्छक	बहु बिधि त्रासइ देस निकासई। जो कह वेद पुराना ॥छंद १।१८३
धर्म रच्छक	जेहि विधि होई धर्म निर्मूला। सो सब करहि वेद प्रतिकूला ॥१।१८३।३

अथवा–गो (पृथ्वी) द्विज (ब्राह्मण), धेनु (गौ) आदि उनके जन हैं, इसी से उनके विरोधियों को मारकर उनको आनन्द देते हैं।

॥ मंदोदरी की निष्ठा–लंका काण्ड ॥

मूल दो०–बिस्वरूप रघुबंस मनि, करहु बचन बिस्वासु।
लोक कल्पना बेद कर, अंग अंग प्रति जासु ॥६।१४॥

अर्थ—मेरे इन वचनों पर विश्वास कीजिये कि वे रघुकुल के शिरोमणि श्रीरामचन्द्र जी विश्वरूप हैं। वेद जिनके अङ्ग-अङ्ग में लोकों की कल्पना करते हैं ॥६।१४॥

प्रश्न—हे प्रभो ? 'बिस्वरूप रघुबंस मनि' कहने का क्या अभिप्राय है ?

उत्तर–हे प्रिय वत्स ? अभिप्राय है कि रघुकुल श्रेष्ठ श्रीराम ही विराट स्वरूप भगवान् हैं।

यथा-श्रुति–विश्वाधारं महाविष्णुं नारायणमनामयम्।
परिपूर्णानन्दविज्ञं परं ब्रह्मस्वरूपिणम् ॥ (रामोत्तर ता० उ० ३।६)

श्रुत्यर्थ–श्रीरामचन्द्रजी जो सम्पूर्ण विश्व के आधार और महाविष्णु रूप है। रोग शोक से रहित नारायण हैं, परिपूर्ण आनन्द-विज्ञान के आश्रय हैं, और परम प्रकाश रूप परब्रह्म हैं। 'करहु बचन बिस्वास।' अर्थात्–पहले दो बार समझाया, तब इनकी बात नहीं मानी, इससे जाना कि इनको हमारे कहने पर विश्वास नहीं है, अब विश्वास करने का कारण बताती हैं, 'लोक कल्पना वेद कर' अर्थात्–जो मैं कहती हूं उसके प्रमाण वेद हैं, और वेद सब कुछ जानते हैं। श्रुति प्रमाण पर विश्वास करो; शास्त्र पढ़ लेने से सिद्धि नहीं होती, सिद्धि तो विश्वास से ही होती है, श्रीराम इस समय विभव रूप से विराजमान हैं। इनके अङ्ग-अङ्ग के प्रति वेदों ने लोकों की कल्पना की है। यथा—

श्रुति—नाभ्या आसीदन्तरिक्ष ठं. शीर्ष्णो द्यौः समवर्त्तत ।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रास्तथा लोकाँ अकल्पयन् ।।
(यजु० सं० ३१।१३—पुरुष सूक्त १४)

भावार्थ—यज्ञ पुरुष श्रीराम की नाभि से अन्तरिक्ष लोक उत्पन्न हुआ, सिर से स्वर्ग प्रकट हुआ, पैरों से पृथ्वी, कानों से दिशाएँ हुई। इस प्रकार समस्त लोक उस पुरुष राम में ही कल्पित हुए।। वही कहती हैं। यथा—

मू.चौ०—पद पाताल सीस अजधामा। अपर लोक अंग-अंग विश्रामा।।
भृकुटि बिलास भयंकर काला। नयन दिवाकर कच घन माला।।७४।।

अर्थ—पाताल जिन विश्वरूप भगवान् का चरण है, ब्रह्मलोक सिर है, अन्य (वीच के सव) लोकों का विश्राम (स्थिति) जिनके अन्य भिन्न-भिन्न अंगों पर हैं। भयंकर काल जिनका भृकुटि संचालन है। सूर्यनेत्र, मेघमाला वाल हैं।।७४।।

प्रश्न —श्री गुरुदेव ? 'पद पाताल' कथन का क्या रहस्य है ?

उत्तर—हे सौम्य ? चरणों को पाताल कहने का रहस्य है कि चरण का तल भाग सम्पूर्ण शरीर का आधार है। वैसे ही पाताल सम्पूर्ण विश्व का आधार है, उस पाताल में वे 'वामन रूप' से स्थित हैं, उसी सत्ता पर विश्व रूप शरीर की स्थिति है। इसी से चरणों के देवता वामन (विष्णु) व्यापक कहे गये हैं।

यह प्रकरण व्यष्टि और समष्टि की विधि से चतुर्धा विराट् सिद्ध श्रीरामजी के हैं। (१) पदों को पाताल जाने। अथवा (२) पाताल में प्रभु का पद है। वा (३) पाताल की उत्पत्ति पद से है। वा (४) महाप्रलय में प्रभु के पद में पाताल समा जाता है। इसी प्रकार सब अंगों पर विचार कर लेना चाहिए। 'सीस अज धामा' अर्थात्-शरीर में सिर सबसे उत्तम अङ्ग है और लोकों में ब्रह्मलोक सबसे उत्तम है इसी से सिर को अज लोक कहा।

प्रश्न—हे स्वामिन् ? 'भृकुटि बिलास भयंकर काला।' कहने का क्या भाव है ?

उत्तर—हे सुव्रत ? भाव है कि प्रभु की भ्रूभंग से ब्रह्माण्डों का लय होता है। यथा—चौ० भृकुटि बिलास सृष्टि लय होई।३।३८।४।। और काल को भयंकर इसलिये कहा कि वह अमित ब्रह्माण्डों को खा जाता है। 'नयन दिवाकर' अर्थात्—मनुष्यों के नेत्रों के देवता सूर्य हैं, और प्रभु के नेत्र ही सूर्य हैं। 'कच घन माला' अर्थात्—वाल और मेघ दोनों श्याम हैं और बाल बहुत होते हैं इसलिये घन माला कहा।

मू.चौ०-जासु घ्रान अस्विनी कुमारा। निसि अरु दिवस निमेष अपारा।।
श्रवण दिसा दस वेद बखानी। मारुत स्वास निगम निज बानी।।७५।।

अश्विनीकुमार जिनकी नासिका है। रात और दिन जिनके अपार निमेष (पलक मारना और खोलना) हैं। दसों दिशाएँ कान हैं, वेद ऐसा कहते हैं, पवन जिनकी श्वास है, वेद जिनके वचन हैं।।७५।।

प्रश्न—हे भगवन् ? 'जासु घ्रान अस्विनी कुमारा ।' कहने का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—हे प्रिय दर्शन ? घ्रान में दो नथुने होते हैं—अश्विनी कुमार यमज हैं, इसी समता से कहा कि नाक अश्वनी कुमार हैं। 'निसि अरु दिवस निमेष अपारा ।' अर्थात्—पलकें अनवरत खुलती-मुदती हैं, इसकी गिनती नहीं वैसे ही रात-दिन लगातार होते रहते हैं। 'श्रवन दिसा दस वेद वखानी ।' अर्थात्—मनुष्यों के कानों के देवता दिशाएँ हैं और प्रभु के कान ही दिशाएँ हैं। ऐसा वेद वर्णन करते हैं। 'मारुत स्वास निगम निज बानी ।' अर्थात्—मनुष्यों की श्वास के अधिपति 'वायु देवता' हैं और प्रभु की श्वास ही पवन है और प्रभु के वचन ही वेद है।

मूल चौ०—अधर लोभ जम दसन कराला। माया हास बाहु दिगपाला ॥
आनन अनल अंबुपति जीहा। उतपति पालन प्रलय समीहा ॥७६॥

अर्थ—लोभ जिनका अधर (होठ) है, यमराज भयानक दाँत हैं। माया हँसी है, दिक्पाल भुजाएँ हैं। अग्नि मुख है, वरुण जीभ है, उत्पत्ति, पालन और प्रलय जिनकी चेष्टा (क्रिया) है ॥७६॥

प्रश्न—हे प्रभो ? 'माया हास' कहने का क्या अभिप्राय है ?

उत्तर—हे प्रिय वत्स ? प्रभु हँसते ही मोहित कर लेते हैं। 'उतपति पालन प्रलय समीहा ॥'

अर्थात्—श्रुति—यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते। येन जातानि जीवन्ति।
यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति ॥ (तत्तिरीय० उ० ३।१) (भस्म जावाल० उ० २)

श्रुत्यर्थ—ये प्रत्यक्ष दिखाई देने वाले सब प्राणी जिनसे उत्पन्न होते हैं। और उत्पन्न होकर जिनके सहयोग से, जिनका बल पाकर यह सब जीते हैं। जीवनोपयोगी क्रिया करने में समर्थ होते हैं और महाप्रलय के समय जिनमें विलीन हो जाते हैं। वह ब्रह्म राम हैं।

मूल चौ०—रोम राजि अष्टादस भारा। अस्थि सैल सरिता नस जारा ॥
उदर उदधि अधगो जातना। जगमय प्रभुका बहु कलपना ॥७७॥

अर्थ—अठारह प्रकार की असख्य वनस्पतियाँ जिनकी रोमावली हैं, पर्वत अस्थियाँ हैं, नदियाँ नसों का जाल हैं, समुद्र पेट है, और नरक जिनकी नीचे की इन्द्रियाँ हैं। इस प्रकार प्रभु विश्वमय हैं, अधिक कल्पना क्या की जाये ॥७७॥

प्रश्न—श्री गुरुदेव ? 'रोम राजि अष्टादस भारा ।' कथन का क्या रहस्य है ?

उत्तर—हे सौम्य ? रहस्य है कि ६ भार कंटक, ६ भार फूल वाले और ६ भार फल वाले ये सब १८ भार वनस्पति हैं, ये प्रभु राम की रोमावली हैं। 'अघगो जातना' अर्थात्—नीचे की इन्द्रियाँ—शिश्न व गुदा, 'जातना' नरक, यम की तीव्र वेदना और भी जो बहुत से अंग-उपांग हैं, उनके विषय में भी प्रभु की अनेक कल्पनायें की गई हैं।

मूल दो०—अहंकार सिव बुद्धि अज, मन ससि चित्त महान् ।
मनुज बास सचराचर, रूप राम भगवान् ॥६।१५॥

अर्थ—शिवजी जिनका अहंकार है, ब्रह्मा बुद्धि है, चन्द्रमा मन है और महान् (विष्णु) ही चित्त हैं, उन्हीं चराचर रूप भगवान् श्रीरामजी ने मनुष्य रूप में निवास किया है ॥६।१५

'लोक कल्पना वेदकर' दो० ६।१४ से दो० 'रूप राम भगवान् ।' ६।१५ तक का प्रसंग अथर्ववेद के दसवें काण्ड सातवें सूक्त 'सर्वाधार वर्णन में श्रुति ६ मन्त्रों में प्रश्न करती है और दसवें मन्त्र से पूरे सूक्त में चौंतीस मन्त्रों में उत्तर है । इन चौंतीस मन्त्रों का निष्कर्ष संक्षेप से 'मानस' के इस एक दोहे में रख दिया गया है, इसी तरह के प्रसंगों को 'गागर' में 'सागर' कहा जाता है । अथवा—यजुर्वेद ३१वें अध्याय में और ऋग्वेद में भी विराट् रूप का वर्णन है, पर 'मानस' कथित विश्वरूप श्रीमद्भागवत स्कंध २ अ० १ श्लोक २६ से ३५ तक से विशेष मिलता है । और अध्यात्म रामायण में कबन्ध स्तुति ३।६।३६ से ४५ तक से अधिक मिलता है । और पुराणों में भी यह प्रसंग पाया जाता है तथा उपनिषदों में भी विराट् स्वरूप का वर्णन पाया जाता है, जैसे नादविन्दूपनिषद्, मुण्डक० उ०, सुवालोपनिषत् बृहदारण्यक० उ० मैत्रायण्य० उ०, भस्म जावाल० उ०, तैत्तिरीय० उ० आदि में पाया जाता है । वह अवलोकन कीजिये । यथा—

श्रुति—भूर्लोकः पादयोस्तस्य भुवर्लोकस्तु जानुनि ।
सुवर्लोकः कटीदेशे नाभिदेशे महर्जगत् ॥३॥
जनोलोकस्तु हृद्देशे कण्ठे लोकस्तपस्ततः ।
भ्रुवोर्ललाटमध्ये तु सत्यलोको व्यवस्थितः ॥४॥ (नादविन्द० उ० ३,४)

श्रुत्यर्थ—भूलोक उनके दोनों पैरों में है । भुवलोक उनके दोनों जानुओं में है । स्वलोक उनके कटिदेश में है, और महर्लोक नाभि देश में है, जनलोक इनके हृदय में है । तपलोक कण्ठ देश में है । भौंहों और ललाट के बीच में सत्यलोक व्यवस्थित है । अथवा—

श्रुति - अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ दिशः श्रोतेवाग्विवृताश्चवेदाः ।
वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य पद्भ्यां पृथिवी ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा ॥
(मुण्डक० उ० २।१।४)

श्रुत्यर्थ—इस विराट् स्वरूप परमेश्वर राम का अग्नि अर्थात् द्युलोक ही मानो मस्तक है, चन्द्रमा और सूर्य दोनों नेत्र हैं, समस्त दिशाएँ कान हैं, नाना छन्द और ऋचाओं के रूप में विस्तृत चारों वेद वाणी है, तथा वायु प्राण हैं सम्पूर्ण चराचर जगत् हृदय है, यही परब्रह्म परमेश्वर समस्त प्राणियों के अन्तर्यामी परमात्मा राम हैं ।

अथवा—श्रुति—चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ।
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च हृदयात्सर्वमिदं जायते ॥ (प्रथम खण्ड)

अपानान्निषादा यक्षराक्षसगन्धर्वाश्चास्थिभ्यः पर्वता,
लोमभ्य औषधिवनस्पतयो ललाटात्क्रोधजो रुद्रो जायते,
तस्यैतस्य महतोभूतस्यनिःश्वसितमेवैतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः
सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं
छन्दो ज्योतिषामयनं न्यायो मीमांसा धर्मशास्त्राणि
व्याख्यानान्युपव्याख्यानानि च सर्वाणि च भूतानि
हिरण्य ज्योतिर्यस्मिन्नयमात्माधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥

(सुबाल०उ० १ २)–(बृहदा०उ० २।४।१०)–(मैत्रायण्य० उ० ६।३२)

श्रुत्यर्थ—मनसे चन्द्रमा, चक्षु से सूर्य, श्रोत से वायु और प्राण हृदय से यह सब जायमान हुआ, अपान से निपाद, जक्ष, राक्षस, गन्धर्व, हड्डियों से पर्वत, रोमों से बनस्पति औषधियाँ, ललाट से क्रोधज, रुद्र जाय मान होता है। तिस महान् भूत अर्थात् सगुण ब्रह्म के निःश्वास रूप ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद. अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र व्याख्यान, उपव्याख्यान और सर्वभूत, हिरण्य ज्योतिः जिसमें यह आत्मा तथा चतुर्दश भुवन एवं समस्त विश्व अधिष्ठित है।

अथवा—त्वमेम सर्वकैवल्यं लोकास्तेऽवयवाः स्मृताः।
पातालं ते पादमूलं पार्ष्णिस्तव महातलम् ॥३६॥
रसातलं ते गुल्फौ तु तलातलमितीर्यते।
जानुनी सुतलं राम उरू ते वितलं तथा ॥३७॥
अतलं च मही राम जघनं नाभिगं नभः।
उरः स्थलं ते ज्योतींषि ग्रीवा ते मह उच्यते ॥३८॥
वदनं जनलोकस्ते तपस्ते शङ्खदेशगम्।
सत्यलोको रघुश्रेष्ठ शीर्षण्यास्ते सदा प्रभो ॥३९॥
इन्द्रादयो लोकपाला बाहवस्ते दिशः श्रुती।
अश्विनौ नासिके राम वक्त्रं तेऽग्निरुदाहृतः ॥४०॥
चक्षुस्ते सविता राम मनश्चन्द्र उदाहृतः।
भ्रूभंग एव कालस्ते बुद्धिस्ते वाक्पतिर्भवेत् ॥४१॥
रुद्रोऽहङ्काररूपस्ते वाचश्छन्दांसि तेऽव्यय।
यमस्ते दंष्ट्रदेशस्थो नक्षत्राणि द्विजालयः ॥४२॥
हासो मोहकरी माया सृष्टिस्तेऽपांगमोक्षणम्।
धर्मः पुरस्तेऽधर्मश्च पृष्टभाग उदीरितः ॥४३॥
निमिषोन्मेषणे रात्रिर्दिवा चैव रघूत्तम।
समुद्राः सप्तते कुक्षिर्नाड्यो नद्यस्तव प्रभो ॥४४॥

रोमाणि बृक्षौषधयो रेतो वृष्ठिस्तव प्रभो।
महिमा ज्ञानशक्तिस्ते एवं स्थूलं वपुस्तक ॥४५॥

(कवन्ध स्तुति–अध्यात्म रामायणा ३।६।३६ से ४५)

अर्थात्—आप ही एकमात्र सर्वमोक्ष स्वरूप है। सम्पूर्ण लोक आप ही के अवयव हैं। पाताल आपका चरण तल (तलुआ) है, महातल एड़ी है ॥३६॥ हे राम ? रसातल गुल्फ (टखने) हैं, तलातल जानु हैं, तथा सुनल आपकी जङ्घाएँ और वितल आपके दो ऊरु हैं ॥३७॥ अतल और पृथ्वी आप की जघन भाग (कटि देश) है, भुवर्लोक नाभि है. स्वलोक वक्षः स्थल है, तथा महर्लोक आपकी ग्रीवा है ॥३८॥ हे रघुश्रेष्ठ ! जनलोक आपका मुख है तपलोक ललाट है तथा हे प्रभो ! सत्यलोक आपका मस्तक है ॥३९॥ हे राम ? इन्द्रादि लोकपाल गण आपकी भुजाएँ हैं, दिशाएँ कर्ण हैं, अश्विनी कुमार नासिका है, और अग्नि आपका मुख कहा गया है ॥४०॥ हे राम ! सूर्य आपके नेत्र हैं। चन्द्रमा मन है, काल भ्रूभंगी है, और ब्रह्माजी आप की बुद्धि है ॥४१॥ रुद्र आपका अहंकार है, वेद आपकी वाणी है, यम आपकी दाढ़ें हैं, और नक्षत्रगण आपकी दन्तावली है ॥४२॥ सबको मोहित करने वाली माया आपका हास्य है, सृष्टि आपका कटाक्ष है, धर्म आपका आगे का भाग है, और अधर्म पीछे का भाग है ॥४३॥ हे रघूत्तम ? रात और दिन आपके निमेषोन्मेष हैं, हे प्रभो ? सातों समुद्र आपकी कुक्षि और नदियाँ नाड़ियाँ हैं ॥४४॥ हे प्रभो ! वृक्ष और औषधियाँ आपके रोम, वृष्टि आपका वीर्य और ज्ञान शक्ति आपकी महिमा है। यही आपका स्थूल शरीर है ॥४५॥

अथवा–पातालमेतस्य हि पादमूलं, पठन्ति पार्ष्णिप्रपदे रसातलम्।
महातलं विश्वसृजोऽथगुल्फौ, तलातलं वै पुरुषस्य जंघे ॥२६॥
द्वे जानुनी सुतलं विश्वमूर्तेरुरुद्वयं वितलं चातलं च।
महीतलं तज्जघनं महीपते, नभस्तलं नाभिसरो गृणन्ति ॥२७॥
उरः स्थलं ज्योतिरनीकमस्य, ग्रीवा महर्वदनं वै जनोऽस्य।
तपोरराटीं विदुरादिपुंसः सत्यं तु शोर्षाणि सहस्रशीर्ष्णः ॥२८॥
इन्द्रादयो वाहव आहुरुस्राः कर्णौदिशः श्रोत्रममुष्य शब्दः।
नासत्यदस्रौ परमस्य नासे,घ्राणोऽस्य गन्धो मुखमग्निरिद्धः ॥२९॥
द्यौरक्षिणी चक्षुरभूत्पतंगः, पक्षाणि विष्णोरहनी उभे च।
तद्भ्रू विजृम्भः परमेष्टिधिष्ण्यमापोऽस्य तालू रस एव जिह्वा ।३०।
छन्दांस्यनन्तस्यशिरो गृणन्ति,दंष्ट्रा यमः स्नेहकलाद्विजानि।
हासो जनोन्मादकरी च माया, दुरन्तसर्गो यदपांगमोक्षः ॥३१॥
व्रीडोन्तरोष्ठोऽधर एव लोभो.धर्मः स्तनोऽधर्ममथोऽस्यपृष्टम्।
कस्तस्य मेढ्ं, वृषणौ च मित्रौ,कुक्षिः समुद्रा गिरयोऽस्थिसङ्घाः ॥३२॥

नद्योऽस्य नाड्योऽथ तनूरुहाणि, महीरुहा विश्वतनोर्नृपेन्द्र ।
अनन्त वीर्यः श्वसितं मातरिश्वा गतिर्वयः कर्मगुणप्रवाहः ॥३३॥
ईशस्य केशान् विदुरम्बुवाहान्,वासस्तु सन्ध्यां कुरवर्य भूम्नः ।
अव्यक्तमाहुर्हृदयं मनश्च, स चन्द्रमा सर्वविकारकोशः ॥३४॥
विज्ञानशक्तिं महिमामनन्ति, सर्वात्मनोऽन्तः करणं गिरित्रम् ।

(श्री शुकाननामृत) (श्रीमद्भागवत स्कंध २ अ० १।२६ से ३५)

अर्थ—तत्त्वज्ञ पुरुष उनका इस प्रकार वर्णन करते हैं–पाताल विराट् पुरुष के तलवे हैं, उनकी एड़ियाँ और पंजे रसातल हैं, दोनों गुल्फ–एडी के ऊपर की गाँठें महातल हैं, उनके पैर के पिंडे तलातल हैं ॥२६॥ विश्वमूर्ति भगवान् के दोनों घुटने सुतल हैं, जाघें वितल और अतल हैं, पेडू भूतल है और परीक्षित् ! उनके नाभि रूप सरोवर को ही आकाश कहते हैं ॥२७॥ आदि पुरुष परमात्मा की छाती को स्वर्गलोक, गले को महर्लोक, मुख को जनलोक और ललाट को तपोलोक कहते हैं। उस सहस्त्र सिर वाले भगवान् का मस्तक समूह ही सत्यलोक है ॥२८॥ इन्द्रादि देवना उसकी भुजाएँ हैं, दिशाएँ कान और शब्द श्रवणेन्द्रिय हैं। दोनों अश्विनीकुमार उनकी नासिका के छिद्र हैं। गन्ध घ्राणेन्द्रिय है, और धधकती हुई आग उनका मुख है ॥२९॥ भगवान् विष्णु के नेत्र अन्तरिक्ष है, उनमें देखने की शक्ति सूर्य हैं, दोनों पलकें रात और दिन हैं; उनका भ्रू विलास ब्रह्म लोक है। तालु जल है, और जिह्वा रस है ॥३०॥ वेदों को भगवान् का ब्रह्म रन्ध्र कहते हैं और यम को दाढ़ें। सब प्रकार के स्नेह दाँत हैं, और उनकी जगमोहनी माया को ही उनकी मुसकान कहते हैं। यह अनन्त सृष्टि उसी माया का कटाक्ष-विक्षेप है ॥३१॥ लज्जा ऊपर का होंठ और लोभ नीचे का होठ है। धर्म स्तन और अधर्म पीठ है। प्रजापति उनके मूत्रेन्द्रिय है, मित्रावरुण अण्ड कोश हैं। समुद्र कोख है और बड़े-बड़े पर्वत उनकी हड्डियाँ हैं ॥३२॥ राजन् विश्वमूर्ति विराट् पुरुष की नाड़ियाँ नदियाँ हैं। वृक्ष रोम हैं। परम प्रवल वायु श्वास है। काल उनकी चाल है और गुणों का चक्कर चलाते रहना ही उनका कार्य है ॥३३॥ परीक्षत् ! बादलों को उनके केश मानते हैं; सन्ध्या उन अनन्त का वस्त्र है। महात्माओं ने अव्यक्त (मूल प्रकृति) को ही उनका हृदय बतलाया है और सब विकारों का खजाना उनका मन चन्द्रमा कहा गया है ॥३४॥ महतत्त्व को सर्वात्मा भगवान् का चित्त कहते हैं, और रुद्र उनके अहङ्कार कहे गये हैं।

अथवा–अक्षणोः सूर्योऽनिलः प्राणाच्चन्द्रमा मनसस्तव ॥६४॥
प्राणोऽन्तः सुषिराञ्जातो मुखादग्निरजायत ।
नाभितो गगनं द्योश्चशिरसः समवर्तत ।
दिशः श्रोत्रात्क्षितिः पद्भ्यां त्वत्तः सर्वमभूदिदम् ॥६५॥

(ध्रुवस्तुति) (विष्णु पु० १।१२।६४,६५)

अर्थात्–आपही के नेत्र से सूर्य, प्राण से वायु, मन से चन्द्रमा, भीतरी छिद्र (नासारन्ध्र) से प्राण, मुख से अग्नि, नाभि से आकाश, सिर से स्वर्ग, श्रोत से दिशाएँ और चरणों से पृथिवी आदि उत्पन्न हुए हैं, इस प्रकार हे प्रभो ! यह सम्पूर्ण जगत् आपही से प्रकट हुआ है।

मिलान करें

श्रीरामचरितमानस	श्रुतियाँ	अध्यात्म रामायण	श्रीमद्भागवत एवं पुराण
दो॰ बिस्वरूप रघुबंस मनि, करहु बचन बिस्वास। लोक कल्पना वेद कर, अंग-अंग प्रति जासु ।।६।१४	सर्वाणि च भूतानि हिरण्ा ज्योतिर्यस्मिन्न यमात्माधि क्षियन्ति भुवनानि विश्वा ।। सुबाल० उ० २	त्वमेव सर्वं कैवल्यं लोकास्तेऽवयवाः स्मृताः ।३।६।३६	विश्वतनोर्नृपेन्द्र । २।१। ३
पद पाताल	पद्भ्यां पृथिवी मुण्डक०उ०२।१।४	पातालं ते पाद मूलं ३।६।३६	पातालमेनस्य हि पादमूलं ।२।१।२६ क्षितिः पद्भ्यां । विष्णु पु० १।१२।६५
सीस अज धामा।	अग्निमूर्धा० मु० २।१।४ भ्रुवोर्ललाट मध्येतु सत्य लोको व्यवस्थितः ।। नादविन्द० उ० ४	सत्यलोको रघुश्रेष्ठ शीर्षण्यास्ते सदा प्रभो ।।३।६।३६	सत्यं तु शीर्षाणि सहस्र शीर्ष्णः ।। २।१।२८ द्यौश्च क्षिरसः विष्णु पु० १।१२।६५
अपर लोग अंग-अंग बिश्रामा ।। ६।१५।१	भूर्लोकः पादयोस्तस्य भुवर्लोकस्तु जानुनि सुवर्लोकः कटीदेशे नाभिदेशे महर्जगत् ।। जनो लोकस्तु हृद्देशे कंठे लोकस्तपस्ततः नादविन्द०उ० ३,४	पार्ष्णिस्तव महातलम् रसातलं ते गुल्फौ तु तलातल मितीर्यंते। जानुनी सुतलं राम उरू ते वितलं तथा ।। अतलं च मही राम जघनं नाभिगं नभः। उरः स्थलं ते ज्योतींषि ग्रीवा ते मह उच्यते।। वदनं जनलोकस्ते तपस्ते शङ्ख देशगम्। ३।६।३६ से ३९	पार्ष्णि प्रपदे रसातलम् महातत्त्वं विश्वसृजो–ऽथगुल्फौ तलातलं वै पुरुषस्य जंघे ।। द्वे जानुनी सुतलं विश्वमूर्तेरूरुद्वयं वितलं चातलं च महीतलं तज्जघनं महीपते नभस्तलं नाभिसरो गृणन्ति।। उरः-स्थलं ज्योतिरनीकमस्य ग्रीवा महर्वदनं व जनोऽस्य तपोरराटीं विदुरादि पुंसः २।१।२६ से २८
भृकुटि बिलास भयंकर काला।		भ्रूभंग एव कालस्ते ३।६।४१	गतिर्वयः कर्मगुण प्रवाहः ।। २।१।३३

श्रीरामचरितमानस	श्रुतियाँ	अध्यात्म रामायण	श्रीमद्भागवत एवं पुराण
नयन दिवाकर	चक्षोः सूर्यं अजायत सुवाल० उ० १ चक्षुषी चन्द्र सूर्यौ मुण्डक० उ० २।१।४	चक्षुस्ते सविता राम ३।६।४१	द्यौ रक्षिणी चक्षुरभूत्पतंगः २।१।३० अक्ष्णोः सूर्यः। विष्णु पु० १।१२।६४
कच घन माला ॥ ६।१५।१			ईशस्य केशान् विदुरम्बु वाहान् २।१।३४
जासु घ्रान अस्विनी कुमारा।		अश्विनौ नासिके राम ३।६।४०	नासत्यदस्रौ परमस्य नासे घ्राणोऽस्यगन्धो २।१।२६
निसि अरु दिवस निमेष अपारा ॥ ६।१५।२	निमेषस्ते स्मृता रात्रिरुन्मेषो दिवसस्तथा, बाल्मीकी रा० यु० ११७।२४	निमिषोन्मेषणे रात्रिंदिवा चैव रघुत्तम ३।६।४४	पक्ष्माणि विष्णोरहनी उभेच। २।१।३०
श्रवण दिसा दस वेद बखानी।	दिशः श्रोत्रे० मु० उ० २।१।४	ते दिशः श्रुती ३।६।४०	कर्णौ दिशः २।१।२६ दिशः श्रोत्रात् विष्णु पु० २।१।६५
मारुत स्वास	वायुः प्राणः मु० उ० २।१।४ वायु श्च प्राणः सुवाल० उ० १		अनन्त वीर्यः श्वसितं मातुरिश्वा २।१।३३ अनिलः प्राणः विष्णु पु० १।१२।६४
निगम निजवानी ॥ ६।१५।२	वाग्विवृता श्च वेदाः मुण्डक०उ०२।१।४ महतो भूतस्य निश्वसि मेवैतद्यदृग्वेदो यजुर्वेद सामवेदोऽथर्ववेदः। सुवा०२ वृह०उ० २।४।१० मैत्रायण० उ० ६।३२	वाचश्छन्दांसि ते ऽव्यय, ३।६।४२ यस्य निःश्वासितं वेदाः। (वायु पु० माघमाहात्म)	छन्दांस्यनन्तस्य शिरो गृणन्ति २।१।३१
अधर लोभ			अधरः एव लोभी २।१।३२
जम दन कराला ६।१५।३		यमस्ते दंष्ट्र ३।६।४२	दंष्ट्रा यम स्नेह कला द्विजाति। २।१।३१

श्रीरामचरितमानस	श्रुतियाँ	अध्यात्म रामायण	श्रीमद्भागवत एव पुराण
माया हास		हासो मोह करी माया ३।६।४३	हासो जनोन्माद करी च माया २।१।३१
वाहु दिग पाला ।। ६।१५।३		इन्द्रादयो लोकपाला बाहवः । ३।६।४०	इन्द्रादयो वाहव आहुरुस्नाः । २।१।२६
आनन अनल		वक्त्रं तेऽग्नि रुदाहृतः ३।६ ४०	मुखमग्निरिद्धः ।। २।१।२६ मुखदग्निरजायत विष्णु पु० १।१२·६५
अंबुपति जीहा ।।			आपोऽस्य तालू रस एव जिह्वा । २।१।३०
उतपति पालन प्रलय समीहा ।। ६।१५।३	यतो वा इम नि भूतानि जायन्ते । येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसं विशन्ति ।। (तैत्तिरीय० उ० ३।१) (भस्म जा०उ०२)	सृष्टिस्तेऽपांग मोक्षणम् ३।६।४३	दुरन्त सर्गो यदपांग मोक्ष २।१।३१
रोम राजि अष्टादस भारा ।	लोमभ्य औषधि-वनस्पतयः(सु.उ.२)	रोमाणि वृक्षौषधयो ३।६।४५	अथ तनूरुहाणि महीरुहा, २।१।३३
अस्थि सैल	अस्थिभ्यः पर्वता (सुवाल० उ० २)		गिरयोऽस्थिसंघा २। ।३३
सरिता नस जारा।। ६।१५।४		नाड्यो नद्यास्तक प्रभो ३।६।४४	नद्योऽस्य नाड्यो २।१।३३
उदर उदधि		समुद्राः सप्त ते कुक्षिः ३।६।४४	कुक्षिः समुद्रा २।१।३२
अधगो जातना			
जगमय प्रभुका वहु कल्पना ।। ६।१५।४	तथा लोका अकल्पयन् (पुरुष सूक्त१४यजु३११४)	जगत् सर्वं शरीरं ते (वाल्मीकी रा० यु०) ११७।२३	
दो० अहंकार सिव		रुद्रोऽहंकार रूपस्ते ३।६।४२	अन्तः करणं गिरित्रम् । २।१।३५
बुद्धि अज,		बुद्धिस्ते वाक्पति र्भवेत ।।३।६।४१	अव्यक्त माहुहृदयं । २।१।३४

श्रीरामचरितमानस	श्रुतियाँ	अध्यात्म रामायण	श्रीमद्भागवत एवं पुराण
मन ससि	चन्द्रमा मनसोजात: (सुबाल० उं० १)	मनश्चन्द्र उदाहृत ३।६।४१	मनश्च स चन्द्रमा: सर्वं विकार कोश। २।१।३४ चन्द्रमा मनस: (विष्णु पु० १।१२।६४)
चित्त महान।	हृदयात्सर्वमिदं (जायते सु०उ०१) हृदयं विश्वमस्य (मुण्डक० उ० २।१।४)	महिमा ज्ञान शक्तिस्ते ३।६।४५	विज्ञान शक्ति महिमामनन्ति सर्वात्मन: २।१।३५
मनुज बास सचराचर-रूप राम भगवान ॥ ६।१५	एष सर्व भूतान्त-रात्मा ॥ (मुण्डक० उ० २।१।४)	एवं स्थूलं वपुस्तव ॥ ३।६।४५	मनजो निवास, २।१।३६

देवताओं की प्रार्थना

मू.चौ०—तुम्ह समरूप ब्रह्म अविनासी। सदा एकरस सहज उदासी॥
अकल अगुन अज अनघ अनामय। अजित अमोघ सक्ति करुनामय॥७८॥

अर्थ—(देवता बोले) आप समरूप, ब्रह्म, अविनाशी, नित्य, एकरस, स्वभाव से ही उदासीन (शत्रु-मित्र भाव रहित), अखण्ड, निर्गुण (मायिक गुणों से रहित), अजन्मा, निष्पाप, निर्विकार, अजेय, अमोघ शक्ति (जिन्ह की शक्ति कभी व्यर्थ नहीं होती) और दयामय हैं॥७८॥

प्रश्न—हे स्वामिन् ? 'तुम्ह सम रूप ब्रह्म अविनासी।' कहने का क्या भाव है ?

उत्तर—हे सुव्रत ? 'समरूप' अर्थात् किसी के मित्र या किसी के शत्रु ऐसे नहीं हैं। सुर-असुर सभी पर आपकी समदृष्टि है। यथा—

चौ० सब पर मोरि बराबर दाया॥७।८७।४॥

अथवा—राग-द्वेष रहित हैं। यथा—

समोऽहं सर्वभूतेषु नमें द्वेष्योऽस्ति न प्रिय:। गीता (९।२९)

अर्थात्—मैं सब भूतों में सम भाव से व्यापक हूं न कोई मेरा अप्रिय है न प्रिय है।

अथवा—नादत्तो कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभु:। (गीता ५।१५)

अर्थात्—सर्व व्यापी परमात्मा न किसी के पाप कर्मको और न किसी के शुभ कर्म को भी ग्रहण करता है।

अथवा—आप परब्रह्म परमात्मा हैं, सबसे बृहद् हैं, इसी से समरूप हैं।

अथवा—समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम् ।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति ।। (गीता १३।२७)

अर्थात्—जो पुरुष नष्ट होते हुए सब चराचर भूतों में नाश रहित परमेश्वर को सम भाव से स्थित देखता है, वही देखता है ।। भाव है कि आप सम हैं, आप ब्रह्म हैं, अविनाशी अर्थात् नाश रहित हैं ।

प्रश्न—हे भगवन् ? 'सदा एक रस सहज उदासी ।।' कहने का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—हे प्रिय दर्शन ? तात्पर्य है कि आप अविनाशी = अव्यय हैं, अव्ययवस्तु ही एक रस होती है, इसी से आप सदा एक रस हैं। यथा—

श्रुति—एकं ब्रह्म चिदाकाशं सर्वात्मकमखण्डितम् ।। (मह० उ० ५।५६)

श्रुत्यर्थ – ब्रह्म एक है, चिदाकाशरूप है, सर्वस्वरूप है और अखण्डित अर्थात् एक रस है, 'सदा' अर्थात् 'काल त्रयेऽपि' भूत, भविष्य और वर्तमान, तीनों कालों में,यथा-अन्तेचादो च मध्ये च दृश्यन्ते त्वं परंतप ।। (वाल्मीकि रामायण ६।११७।६) अथवा—तुम्ह चहुं जुग रस एक राम । (विनय २६६) एक रस कहकर बताया कि आपमें कभी विकार उत्पन्न नहीं होता, आप निर्विकार हैं, विकार शून्य हैं, क्योंकि एक रस हैं, निर्विकार होने से आप 'सहज उदासी' हैं, यह जो आपने तपस्वी वेष धारण किया है । यथा—

चौ० तापस वेष विसेषि उदासी । चौदह वरस राम वनवासी ।।२।२९।२।।

यह तो उदाषी वेष १४ वर्ष तक ही है, आपका सहज स्वभाव सदा उदासीन है ।

प्रश्न—हे प्रभो ? 'अकल अगुन अज अनघ अनामय ।' कहने का क्या अभिप्राय हैं ?

उत्तर—हे प्रिय वत्स ? 'अकल' अर्थात्—कला रहित, क्योंकि आप परिपूर्णावतार हैं, 'अगुन' अर्थात्—त्रिगुणातीत, जिसको योगमाया, सबका कारण, प्रधान, आदि मानते हैं, आप उन सबसे परे हैं, व उनसे भिन्न हैं ।

'अज' अर्थात्—जन्म विकार रहित, आपने केवल रावण वधार्थं मनुष्य देह धारण की है । यथा—वधार्थं रावणस्येह प्रविष्टो मानुषी तनुम् । (वाल्मीकी रामा० ६।११७।२८) 'अनघ' अर्थात्—अघं न विद्यतेऽस्येति, 'अनघ' 'अपहतपाप्मा' (छा० उ० ६।७।१) इति श्रुतेः । भगवान् में अघ (पाप) नहीं हैं, इसलिये 'अनघ' हैं, श्रुति कहती है 'वह पापहीन हैं । 'अनामय'= समस्त उपाधि जनित रोग रहित । 'अजित' अर्थात्-केनापि न जितः अजितः खंगधृग्विष्णुः । (बाल्मीकि रामा० ६।११७) अथवा अजित है क्योंकि 'अमोघ सक्ति' हैं, यथा—नमोघं चेष्टितं यस्य सः 'अमोघः' अर्थात् जिनकी चेष्टा मोघ (व्यर्थ) नहीं होती वे भगवान् अमोघ हैं । 'करुणामय' अर्थात्—आपने हम सब पर 'करुणा' करके मनुष्य रूप धारण कर रावण का वध करके हमको सनाथ किया । यथा—

रावणेन हृतं स्थानमस्माकं तेजसा सह ।
त्वयाद्यनिहतो दुष्टः पुनः प्राप्तं पदं स्वकम् ।। (अ० राव १।१३।८)

अर्थात्— रावण ने तेज सहित हमारे निवास स्थान छीन लिये थे, उसके मारे जाने से हम पुनः अपने पदों को प्राप्त हुए। यथा—'तुम प्रभु सब देवन्ह निस्तारा।'

चौ० दीन बंधु दयाल रघुराया। देव कीन्हि देवन्ह पर दाया ॥६।११०।२

अथवा-सर्वाधारं स्थिरानन्दमव्यक्तं द्वैतवर्जितम्।
सर्वोपमानरहितं प्रमाणातीतगोचरम् ॥
निर्विकल्पं निराभासं सर्वाभासं परामृतम्।
अभिन्नं भिन्न संस्थानं शाश्वतं ध्रुवमव्ययम् ॥
निर्गुणं परमं व्योम तज्ज्ञानं सूरयो विदुः।
स आत्मा सर्वभूतानां स बाह्याभ्यान्तरात्परः ॥

(इत्यार्षे अद्भुत रामायणे उत्तरकाण्डे उपनिषत्कथनं नाम द्वादशः)

भावार्थ – आप सबके आधार हैं। आपका आनन्द स्थिर है। आप अव्यक्त हैं। आपमें द्वैत का अभाव है। आप सम्पूर्ण उपमाओं से रहित और प्रमाणों के अगोचर हैं। निर्विकल्प निराभास, सबके प्रकाशक तथा परम अमृत स्वरूप हैं। आपमें भेद का सर्वथा अभाव है। तथापि आप भिन्न-भिन्न शरीर धारण करते हैं। सनातन, ध्रुव और अविनाशी हैं। आप निर्गुण परम व्योम स्वरूप तथा ज्ञानमय हैं। विद्वान् पुरुष आपको इसी रूप में जानते हैं। आप ही सम्पूर्ण भूतों के आत्मा हैं। वाह्य और आभ्यन्तर सभी पदार्थों से परे हैं। आप को जानकर जीव भवबन्धन से मुक्त हो जाते हैं। यथा–

श्रुति—येन विज्ञान मात्रेण जन्म वन्धात्प्रमुच्यते ॥ (यो० शि० उ० ३।१)

श्रुत्यर्थ– जिसके जानने मात्र से (जीव) जन्म बन्धन से छूट जाता है।

॥ इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुष विध्वंसने ॥

* किष्किन्धा, सुन्दर, लंकाकाण्डान्तर्गते पंचमः सोपानः समाप्तः *

अथ षष्ठ सोपान-उत्तरकाण्ड

मू. दो०—ग्यान गिरा गोतीत अज, माया मन गुन पार।
सोइ संच्चिदानंद घन, कर नर चरित उदार ॥७।२५॥

अर्थ—जो (बौद्धिक) ज्ञान, वाणी और इन्द्रियों से परे और अजन्मा हैं, तथा माया, मन और गुणों से पार हैं, वही सच्चिदानन्द घन भगवान् श्रीरामजी श्रेष्ठ नर लीला करते हैं ॥७।२५॥

प्रश्न—श्री गुरुदेव ? 'ग्यान गिरा गोतीत अज' कथन का क्या रहस्य है ?

उत्तर—हे सौम्य ? 'ज्ञान' छः प्रकार का होता है–प्रत्यक्ष, अनुमान उपमेय, आगम (शब्द) अर्थापत्ति, अनुपलब्धि, इन सबसे भिन्न हैं। अर्थात्—वह इन छः प्रकार के ज्ञान से जाने नहीं जाते, वह इनसे परे हैं। वह 'गिरातीत' अर्थात् वाणी से परे हैं। यथा—

श्रुति—सच्चिदानन्दरूपं तद्वाङ्‌ मनसगोचरम्। (अन्न० उ० ४।२६)
'गोतीत' अर्थात्—इन्द्रियों से भिन्न, क्योंकि अरूप को कैसे देखें, गन्ध नहीं है जो नासिका से जाना जा सके इत्यादि 'अज' अजन्मा अर्थात् अनादि अनन्त हैं। यथा—

श्रुति—अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथाऽरसं नित्यमगन्धवच्च यत्।
अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं निचाय्य तन्मृत्युमुखात्प्रमुच्यते ॥
(कठ उ० १।३।१५)

श्रुत्यर्थ—परब्रह्म परमात्मा राम प्राकृत शब्द स्पर्श, रूप, रस और गन्ध से रहित हैं; संसारिक विषयों को ग्रहण करने वाली इन्द्रियों की वहाँ पहुँच नहीं है। वे नित्य अनादि (जन्म रहित) और असीम हैं। जीवात्मा से भी श्रेष्ठ और सर्वदा सत्य हैं। उन्हें जानकर मनुष्य सदा के लिये जन्म-मरण से छूट जाता है॥

'माया मन गुन पार' अर्थात्—माया पार हैं इसी से अच्युत हैं। 'गुनपार' अर्थात्—निर्गुण हैं, इसी से माया से भिन्न हैं। 'सोई सच्चिदानन्द घन' अर्थात् वह ब्रह्म राम-सत्य स्वरूप, ज्ञान स्वरूप, तथा आनन्द स्वरूपघन है, अर्थात् 'घन' होने के कारण उनमें कोई दूसरी वस्तु (असत्य, जड दुःखरूप) समा नहीं सकती—अर्थात् घुस नहीं सकती। (पूरा विवरण चौ० २ में, यथा एक अनीह की व्याख्या पृष्ठ ५१ पर देखिये) 'कर नर चरित उदार' अर्थात्—वही सच्चिदानन्दघन' 'नर-लीला कर रहा है' इस कथन के अभ्यन्तर यह भाव भी है कि श्रीरामचन्द्र जी ने पिता की आयु भोगने के निमित्त—धर्म रक्षणार्थ श्रीजानकीजी को ब्रह्मावर्त में भेज दिया। यह माधुर्य लीला है। ऐसे उदार चरित्र किए। परन्तु—

मूल दो०—व्यापि रहेउ संसार महुँ, माया कटक प्रचंड।
सेनापति कामादि भट, दंभ कपट पाषंड ॥७।७१ (क)
सो दासी रघुबीर कै, समझें मिथ्या सोपि।
छूट न राम कृपाबिनु, नाथ कहउँ पद रोपि ॥७।७१ (ख)

अर्थ—माया की प्रचंड सेना संसार भर में छायी हुई है। कामादि (काम-क्रोध और लोभ) उसके सेनापति हैं और दम्भ, कपट तथा पाखण्ड उसके योद्धा हैं॥ वह माया श्रीरघुवीर की दासी है। यद्यपि समझ लेने पर वह मिथ्या ही है, किन्तु वह श्रीरामजी की कृपा के विना छूटती नहीं। हे नाथ? यह मैं प्रतिज्ञा करके कहता हूं ॥७।७१ (क—ख)

प्रश्न—हे स्वामिन्? 'माया कटक प्रचंड।' कहने का क्या भाव है?

उत्तर—हे सुव्रत? 'प्रचण्ड' कहने का भाव है कि इसको जीतना तो दूर रहा कोई इसके सामने नहीं आ सकता। 'दंभ' औरों के दिखाने को झूठा आडम्बर करना, जिससे प्रनिष्ठा हो। यह दम्भ शरीर का धर्म है। 'कपट' में भीतर कुछ होता है, बाहर कुछ। यह मन से होता है। यथा—

चौ० लखहिं न भूप कपट चतुराई ।२।२७।३।। 'पाषंड' दुष्ट तर्क आदि द्वारा विपरीत मत का प्रतिपादन करना इत्यादि; यह वचन द्वारा होता है । यथा—

दो० जिमी पाखंड वाद तें गुप्त होहिं सदग्रंथ ।.४।१४।। विस्तृत व्याख्या देखें दो० १।११४ पृष्ठ ८० पर ।

प्रश्न—हे भगवन् ? 'सो दासी रघुवीर कै' कहने का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर हे प्रिय दर्शन ? यह रघुवीरजी के आश्रित होने से, उनकी सत्ता से ही इतनी बलवती है, उनकी सत्ता से ही वह भासित हो रही है । यथा—

चौ० जासु सत्यताते जड माया । भास सत्य इव मोह सहाया ।।१।११७।४।। 'समझै मिथ्या सोपि ।' अर्थात्–यह न तो सत्य है और न असत्य तथा न उभयात्मक, तो कैसी है, 'मि या जानो' अर्थात् यह अनिर्वचनीय है । 'छूट न राम कृपा बिनु' अर्थात्–श्रीराम (आत्मा) की कृपा रूपी सूर्य का प्रकाश हो तभी वह मिथ्या जान पड़ेगी । अन्यथा नहीं । सारांश यह है कि माया से छूटने के लिये एकमात्र उपाय है श्रीरामजी की कृपा और भगवान् कृपा करते हैं भजन से । यथा—

चौ० मन क्रम वचन छाडि चतुराई । भजन कृपा करि हहिं रघुराई ।।१।२००।३

प्रश्न- हे प्रभो ? भजन का स्वरूप क्या है ?

उत्तर—हे प्रिय वत्स ? भजन में तीन अक्षर हैं भ+ज+न—भकार से निर्वीज भक्ति अर्थात् आत्मा में प्रेम । जकार से ज्ञान अर्थात् आत्म ज्ञान । नकार से निश्चय, निष्ठा निष्कामता, अर्थात् निश्चय करके प्रेम सहित आत्म ज्ञान । इसी से श्रीराम कृपा करते हैं, बिना कृपा के माया नहीं छूटती । अथवा भजन की परिभाषा देखें चौ० ७० के अन्तर्गत दो० ३।१५ पृष्ठ १५२ तथा चौ० १०२ पृष्ठ १८४ पर अवलोकन करें । श्रीराम कृपा होते ही (उस परम तत्त्व को देखते ही) अविद्या शान्ति हो जाती है । यथा—

श्रुति - अस्या: परं प्रपश्यन्त्या: स्वात्मनाश: प्रजायते ।
दृष्टे सर्वगते बोधे स्वयं ह्येषा विलीयते ।। (मह० उ० ४।११५)

श्रुत्यर्थ—अविद्या जब परम तत्त्व की ओर अवलोकन करती है, तब इसका अपने आप विनाश हो जाता है । सर्वात्म बोध दृष्टिगत होने पर अविद्या स्वयं ही विलीन हो जाती हैं ।

प्रश्न—हे प्रभो ? नाथ कहउँ पद रोपी ।' कहने का क्या अभिप्राय है ?

उत्तर—हे प्रिय वत्स ? भुशुण्डिजी कहते हैं कि कोई कहे तो कहता रहे पर मैं प्रतिज्ञा करके कहता हूं, कि माया बिना श्रीरामजी की कृपा के बिना नहीं छूटती। जो माया श्रीराम कृपा के बिना नहीं छूटती, उसका स्वरूप बताते हैं । यथा—

मू० चौ०-जो माया सब जगहि नचावा । जासु चरित लखि काहु न पावा ।।
सोई प्रभु भ्रूबिलास खगराजा । नाच नटी इव सहित समाजा ।।७६।।

अर्थ—जो माया सारे जगत् को नचाती है और जिसका चरित्र किसी ने नहीं लख पाया, हे खगराज गरुड़जी ? वही माया प्रभु श्रीरामचन्द्रजी के भृकुटि के संकेत पर अपने समाज सहित नटी की तरह नाचती है ।।७९।।

प्रश्न—श्री गुरुदेव ? 'जो माया सब जगहि नचावा ।' कथन का क्या रहस्य है ?

उत्तर—श्रुति-स होवाच प्रजापतिर्माया वा एषा नारसिंही सर्वमिदं सर्वमिदं सृजति सर्वमिदं रक्षति सर्वमिदं संहरति । (नृहि० पू०ता०उ० ३।१)

श्रुत्यर्थ—तब उन सुप्रसिद्ध प्रजापति ने कहा–भगवान् नृसिंह की शक्ति भूता जो यह माया है, निश्चय वह इस सम्पूर्ण जगत् की रचना करती है । इस सम्पूर्ण जगत की रक्षा करती है तथा इस सम्पूर्ण जगत का संहार करती है ।

प्रश्न—हे स्वामिन् ? 'जासु चरित लखि काहुं न पावा ।' कहने का क्या भाव है?

उत्तर—श्रुति—महाविष्णोः क्रीडाशरीररूपिणी ब्रह्मादीनामगोचरा ।।
(त्रिपाद्विभूति महानारायण० उ० ४)

श्रुत्यर्थ—महाविष्णु की लीला शरीर रुपिणी तथा ब्रह्मादि के लिये भी अगोचर है ।

प्रश्न—हे भगवन् ? 'सोइ प्रभु भ्रूविलास खगराजा । नाच नटी इव सहित समाजा ।।' कहने का क्या भाव है ?

उत्तर—श्रुति–ईश्वरस्य महामाया तदाज्ञावशवर्तिनी ।
तत्संकल्पानुसारिणी विविधानन्तमहामायाशक्ति–
संसेवितानन्तमहामाया जालजननमन्दिरा । (त्रि०वि०म०ना०उ० ४)

श्रुत्यर्थ—ईश्वर की महामाया उन्हीं की आज्ञा के अधीन रहती है । यह (महामाया) उन (ईश्वर राम) के संकल्प के अनुसार कार्य करने वाली, विविध प्रकार की अनन्त महामाया शक्तियों से भली प्रकार सेवित, अत्यन्त महामाया जाल की उत्पत्ति का स्थान, यही माया प्रभु श्रीरामजी के इशारे पर नाचती है ।

मूल चौ०—सोई सच्चिदानंद घन रामा । अज बिग्यान रूप बल धामा ।।
ब्यापक ब्याप्य अखंड अनंता । अखिल अमोघसक्ति भगवंता ।।८०।।

अर्थ—सोई ये राम सच्चिदानन्दघन (परिपूर्ण ठोस) हैं जो जन्म रहित विज्ञानस्वरूप, रूप तथा बल के धाम हैं । जहाँ पर 'घन' शब्द है वहाँ और कोई समा नहीं सकता । इस लिये आपही व्यापक और आपही व्याप्य हैं, अखण्ड, (पूर्ण-अविच्छिन्न) आदि–अन्त रहित, सम्पूर्ण अमोघशक्ति और छः (६) ऐश्वर्यों से युक्त भगवान् हैं ।।८०।। (छः ऐश्वर्यों से युक्त भगवान् की व्युत्पत्ति जनित अर्थ देखो–चौ० २ पृष्ठ ५४ चौ० ७३ पृष्ठ ९० चौ० २९ दो० १।११८ पृष्ठ ९९, १०० पर विशेष वर्णन उदाहरण सहित अवलोकन करें ।)

प्रश्न—हे प्रभो ? 'सोई सच्चिदानंद घन रामा ।' कहने का क्या अभिप्राय है ?

उत्तर—श्रुति–ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्यः सच्चिदानन्दैक रसात्मा ।
(श्री रामोत्तर ता० उ० ४७)

श्रुत्यर्थ—ॐ जो सुप्रसिद्ध श्रीरामजी हैं, वे अवश्य ही सच्चिदानन्द जो एक रसात्मा हैं। 'अज' न जायते इति अजः=ब्रह्म। 'विग्यानरूप' अर्थात्

श्रुति—ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्यो विज्ञानात्मा। (रामो०ता०उ० ४६)

श्रुत्यर्थ—ॐ जो सुप्रसिद्ध श्रीरामचन्द्रजी हैं, वे अवश्य ही भगवान् विज्ञानात्मा हैं। 'बलधामा।' अर्थात् सम्पूर्ण बल तथा सम्पूर्ण तेज, जिसके सहारे प्रत्येक क्षण में उद्भव, स्थित और संहार होते रहते हैं।

प्रश्न—श्री गुरुदेव ? 'ब्यापक ब्याप्य अखंड अनंता।' कथन का क्या रहस्य हैं ?

उत्तर—श्रुति—व्याप्य व्यापकता मिथ्या सर्वमात्मेति शासनात्।
इति ज्ञाते परे तत्त्वे भेदस्यावसरः कुतः॥ (यो० शि० उ० ४।४)

श्रुत्यर्थ—श्रीराम में न व्यापकता है न व्याप्यपना हैं, यह सब मिथ्या अध्यास है। वेद तो कहता है- यह सब आत्मा राम ही है, फिर भेद का अवसर कहाँ॥ श्रीराम तो स्वाभाविक ही अखण्ड, एकरस अनन्त हैं।

प्रश्न—हे स्वामिन् ? 'अखिल अमोघ सक्ति भगवंता' कहने का क्या भाव है ?

उत्तर—हे सुव्रत ? 'अखिल' अर्थात्—न्यूनता से रहित, सर्वपरिपूर्ण जिनकी शक्ति कभी व्यर्थ न हो। क्योंकि वह षडैश्वर्यवान् हैं। यथा—

ज्ञान शक्ति बलैश्वर्य वीर्य तेजांस्यशेषतः।
भगवच्छब्द वाच्यानि विना हेयैर्गुणादिभिः॥ (वि० पु० ६।५।७९)

भावार्थ—त्यागने योग्य (त्रिविध) गुण (तथा उनके क्लेश) आदि को छोड़कर-ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य और तेज आदि सद्गुण ही भगवन् शब्द के वाच्य हैं। (अथवा—चौ० ८ पृष्ठ ५४ चौ० २३ पृष्ठ ६० चौ० २६ दो० १।११८ पृष्ठ ९९,१०० पर पूर्ण विवरण देखें उदाहरण सहित)

मूल चौ०—अगुन अदभ्र गिरा गोतीता। सबदरसी अनवद्य अजीता॥
निर्मम निराकार निरमोहा। नित्य निरंजन सुख संदोहा॥८१॥

अर्थ—वे निर्गुण (माया के गुणों से रहित), अखिल ब्रह्माण्ड से भी बड़े, वाणी और इन्द्रियों से परे, सब कुछ देखने वाले, निर्दोष; अजेय, ममता रहित, निराकार (मायिक आकार से रहित) मोह रहित, नित्य माया रहित, सुख की राशि हैं॥८१॥

प्रश्न—हे भगवन् ? 'अगुण अदभ्र' से सुख संदोहा॥' तक पूरी चौपाई का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—श्रुति—निष्कलं निर्गुणं शान्तं निर्विकारं निराश्रयम्।
निर्लेपकं निरापायं कूटस्थमचलं ध्रुवम्॥
ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमः पारे प्रतिष्ठितम्।
(योगशिख० उ० ३।२१,२२)

श्रुत्यर्थ (श्रीरामजी) कला रहित, निर्गुण, शान्त विकार रहित, आश्रय रहित, निर्लेप, निरापाय, कूटस्थ, अचल–नहीं हिलने वाले, ज्योतियों के भी ज्याति (सूर्य, चन्द्र, अग्नि आदि के भी प्रकाशक) तम (अज्ञान) से परे–अवतिष्ठति हैं। वही यह राम हैं, जो आत्म रूप से अपरोक्ष हैं। जिस प्रकार सूर्य के पास अन्धकार नहीं–वैसे ही श्रीराम में दुःख नहीं, अतएव सुखसिंधु आनन्दघन हैं। वही भगवान् नररूप धारण कर अनेक चरित्र करते हैं।

मूल दो०–भगत हेतु भगवान प्रभु, राम धरेउ तनु भूप।
किए चरित पावन परम, प्राकृत नर अनुरूप ॥ ७२ (क)
जथा अनेक वेष धरि नृत्य करइ नट कोइ।
सोइ सोइ भाव देखावइ, आपु न होइ न सोइ ॥ ७२ (ख)

अर्थ—भगवान् श्रीरामचन्द्र जी ने भक्तों के लिये राजा का शरीर धारण किया। और साधारण मनुष्यों के अनुसार उन्होंने अनेकों परम पावन चरित्र किये। ७२ (क) जैसे कोई नट अनेक वेष धारण करके नृत्य करता है और वही वही (जैसा वेष होता है उसी के अनुकूल) भाव दिखलाता है. पर वह स्वयं वैसा नहीं हो जाता है। इसी प्रकार शुद्ध ब्रह्म माया से शरीर धारण किया सा दीखता है, परन्तु वह शुद्ध ही रहता है।

प्रश्न हे प्रभो? भगत हेतु भगवान प्रभु, राम धरेउ तनु भूप। कहने का क्या तात्पर्य है?

उत्तर–श्रुति–चिन्मय स्याद्वितीयस्य निष्कलस्याशरीरिणः।
उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो रूप कल्पना ॥ (राम०पू०ता०उ०१।७)

श्रुत्यर्थ यद्यपि ब्रह्म चिन्मय, अद्वितीय, प्रकृत अवयव रहित और (पाञ्च भौतिक) शरीर से रहित है, तथापि भक्तजनों के अभीष्ट कार्य की सिद्धि के लिये वह चिन्मय देह को प्रकट करता है–भक्तों के स्नेहवश निराकार ब्रह्म भी नराकार धारण कर लेता है।

प्रश्न—हे भगवन्? किए चरित पावन परम प्राकृत नर अनुरूप ॥ कहने का क्या तात्पर्य है?

उत्तर—परमात्मा हृषीकेशो भक्तानुग्रह काम्यया।
देव कार्यार्थं सिद्धध्यर्थं रावणस्य वधाय च ॥
जातो राम इति ख्यातो मायामानुष वेषधृक् अ० रा० १।६।२३)

अर्थ—परमात्मा हृषीकेश भक्तों पर कृपा, देवताओं का कार्य सिद्ध और रावण का वध करने के लिये माया मानष रूप से अवतीर्ण होकर राम' नाम से विख्यात हुए। उन्होंने अनेक चरित्र प्राकृत नर वेष में परम पावन निर्दोष चरित्र किये। अथवा–'पावन परम, से अपावन, पावन और परम पावन तीन प्रकार के चरित्रों का होना पाया जाता है—अपावन वह चरित्र है जो स्वयं अपावन, तथा अधर्ममय हों, पावन चरित्र वह हैं जो स्वयं पवित्र तथा

धर्ममय हों और परम पावन चरित्र वह हैं जो स्वयं पवित्र हों और दूसरों को भी पवित्र करें। तथा भगवत चरित्र परम पावन हैं, अथवा प्राकृत नर चरित्र अपावन भी होते हैं। परन्तु प्रभु के नर चरित्र परम पावन हैं हैंतो प्राकृत नरके से चरित्र परन्तु दूषित नहीं हैं। अथवा—जैसे भगवान् शिवजी महाराज ने श्रीरामजी का ऐश्वर्य रूप वर्णन कर फिर यह कहा कि ये सगुण स्वरूप श्रीरामजी वही ब्रह्म हैं। वैसे ही भुशुण्डिजी ने यहाँ ऐश्वर्य कहकर बताया कि वे यही राम हैं जो भक्तों के हित नर चरित्र कर रहे हैं। यह चरित्र परम पावन हैं क्योंकि नट (नर) नाट्य हैं।

प्रश्न- हे प्रभो ? जथा अनेक वेष धरि सं होइ न साइ॥ पूरे दोहे का क्या रहस्य है ?

उत्तर—हे वत्स ? जथा अनेक वेष—नाग पास प्रसंग में श्रीपार्वती जी से श्रीशिवजी ने कहा जथा—चौ०—व्याल पास बस भए खरारी। स्ववस अनंत एक अविकारी॥

नट इव कपट चरित कर नाना। सदा स्वतन्त्र एक भगवाना॥

रन सोभा लगि प्रभुहिं बंधायो।६।७३।६ जो भाव वहाँ कहे गये हैं वही भाव यहाँ भी कहे गये हैं। अथवा—

श्रुति—इन्द्रजालमिव मायामयं स्वप्न इव मिथ्या दर्शन नट इव क्षणवेष।

(मैत्रा० उ० ३।२)

श्रुत्यर्थ—इन्द्रजाल अर्थात् बाजीगर का खेल मायामय तथा स्वप्न में रंक से राजा होना मिथ्या दर्शन, एवं नट के समान क्षण वेष बनकर खेल करना, वैसे ही परब्रह्म परमात्मा माया मानव श्रीरामजी नर लीला कर रहे हैं दर्शनमात्र को मानव हैं वास्तविक तो वह परमात्मा ही हैं। वह मरण धर्मा साधारण मनुष्य नहीं हुए, अथवा व्यासोक्ति

मत्स्यादि रूपाणि धत्तो जह्याद् यथानट।

भूभारः-क्षपितो येन जहौ तच्च कलेवरम्॥ (भा० १।१ ।३५)

भावार्थ—जैसे नट वेष धरकर अभिनय करता है और फिर उसका त्याग कर देता है, वैसे ही भगवान् अनेक कार्यों के लिये मत्स्यादि रूप धारण करते हैं और त्याग देते हैं।

अथवा श्रुति—अथब्रह्मस्वरुपं कथमिति नारदः पप्रच्छ।

ते होवाचपितामहः किं ब्रह्मस्वरुपमिति।

अन्योऽसावन्योऽहमस्मीति ये विदुस्ते पशवो न स्वभावपशवस्तमेवं ज्ञात्वा विद्वान्मृत्युमुखात्प्रमुच्यते नान्यः पन्थाविद्यतेऽयनाय। (ना० प्र० उ० ६।१)

श्रुत्यर्थ तदनन्तर नारदजी ने पूछा-भगवन्-ब्रह्म का स्वरूप कैसा है ? तब ब्रह्माजी ने उनसे कहा-वत्स ? ब्रह्म और क्या है अपना स्वरूप ही तो ब्रह्म है। (यह आत्मा ब्रह्म ही है) ब्रह्म दूसरा है और मैं दूसरा हूं, इस प्रकार जो लोग जानते हैं या मानते हैं, वे पशु हैं; जो स्वभाव से पशु-योनियों में उत्पन्न हैं, केवल उन्हीं का नाम पशु नहीं है। पशु तो वही हैं जो अपनी आत्म राम को ब्रह्म से भिन्न मानते हैं। उन पर ब्रह्म परमात्मा को सर्वात्मा

और सर्वरूप में जानकर विद्वान् पुरुष मृत्यु के मुख से सदा के लिये छूट जाता है। आत्म ज्ञान के सिवाय दूसरा मार्ग मोक्ष की प्राप्ति कराने वाला नहीं है। श्रीराम के जन अर्थात्–आत्मज्ञानी को दुख नहीं भासता, यही वात वताते हैं। यथा—

मू.चौ०-असि रघुपति लीला उरगारी। दनुज बिमोहनि जन सुखकारी।
जे मति मलिन बिषय बस कामी। प्रभु पर मोह धरहिं इमि स्वामी।।८२।।

अर्थ – हे सर्पों के शत्रु गरुड़ जी ? ऐसी ही रघुनाथजी की यह लीला (माया) है, जो 'दनुज'–द्वैतवादी–वहिर्मुख (आसुरी सम्पत्ति) वालों को मोह में डालती है, और 'जन' अन्तर्मुखी स्वस्वरूपानुसंधान करने वाले, सर्व आत्मस्वरूप देखने वालों को आनन्द स्वरूप सुखकारी है। हे स्वामिन् ? जो मनुष्य मलिन बुद्धि, विषयों के वश और कामी हैं, वे ही प्रभु पर इस प्रकार मोह का आरोप करते हैं ।।८२।।

प्रश्न हे स्वामिन् ? 'असि रघुपति लीला उरगारी, से 'प्रभु पर मोह धरहि इमि स्वामी ।।' इस पूरी चौपाई ८२ का क्या भाव है ?

उत्तर—हे सुव्रत ? इसके भाव को उपनिषद् इस प्रकार गाते हैं। यथा—

श्रुति—न तु देहादिसत्यत्ववोधनाय विपश्चिताम्।
परिपूर्णमनाद्यन्तमप्रमेयमविक्रियम् ।।
सद्घनं चिद्घनंनित्यमानन्दघनमव्ययम्।
प्रत्यगेकरसं पूर्णमनन्तं सर्वतो मुखम् ।। (अध्यात्म० उ० ६०, ६१)

श्रुत्यर्थ—देहादि की सत्यता बुद्धिमानों के ज्ञान के लिये नहीं है, अर्थात् बुद्धिमान् देहादि को सत्य नहीं जानते व मानते ब्रह्मरामतो) परिपूर्ण, आदि-अन्त से रहित, बुद्धि से न जानने योग्य, क्रिया रहित सत्घन, चिद्घन, नित्य, आनन्दघन, क्षयरहित, एकरस रहने वाले, अनंत और सर्व ओर मुख वाले हैं। जो बुद्धिहीन, मलिन अन्तःकरण मनुष्य–श्रीरामजी जो अद्वितीय हैं, उनकी लीला भी अद्वितीय ही है (अर्थात् उनके चरित्र भी अद्वैतवाद ही हैं) उनको अद्वैत नहीं देखते, वह दनुज श्रीरामजी पर भी मोह धरते हैं, उनका भी सामान्य मानव जैसा जन्म देखते हैं। वास्तव में आत्माराम अजन्मा हैं, सूक्ष्म शरीर का भी जन्म नहीं होता फिर आत्मा का जन्म कहाँ ? जो अद्वितीय ब्रह्मराम में द्वैत देखते हैं, उन्हीं को यहाँ दनुज कहा है। और कहते हैं—

मू. चौ०–नयन दोष जा कहँ जब होई। पीत बरन ससि कहुं कह सोई ।।
जब जेहि दिसि भ्रम होइ खगेसा। सो कह पच्छिम उदय दिनेसा ।।८३।।

अर्थ - जब जिसको नयन दोष कवँल पीलिया) होता है, तब वह चन्द्रमा को पीले रंग का कहता है। हे पक्षिराज गरुड़जी ? जब जिसे दिशा भ्रम होता है तब वह कहता है कि सूर्य पश्चिम में उदय हुआ है। (उसी प्रकार जिसको यह भ्रम हुआ कि मैं देह हूँ, उसको शुद्ध ब्रह्म राम भी साधारण देहवान् दीखता है) ।।८३।।

प्रश्न – हे भगवन् ? 'नयन दोष जा कहँ जब होई। पीत वरन ससि कहुँ कह सोई।' कहने का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—हे प्रिय दर्शन ? ज्ञान और वैराग्य को नेत्र कहा है। यथा—

चौ० ग्यान विराग नयन उरगारी ।।७।१२०।७।। प्राकृत शरीर के नेत्रों में पीलिया रोग होने से निर्मल स्वच्छ वस्तु पीत वर्ण (पीली) दीखती है। हृदय के नेत्रों में मोह (अज्ञान) और विषय वासना रूपी रोग होने उनको निर्मल.निर्विकार श्रीरामजी में मलिनता मोह और काम देख पड़ता है, अथवा–'जब जेहि दिसि भ्रम होइ खगेसा। सो कह पच्छिम उमड़ दिनेसा ।।' अर्थात् जैसे भ्रमवश पश्चिम में पूर्व दिशा का निश्चय होजाता है, वैसे ही श्रीराम जी को अज्ञानवश राजपुत्र या सामान्य मनुष्य निश्चय कर लेना, दिशा भ्रम की तरह है। यथा—

इत्थं यदीक्षेत हि लोकसंस्थितो, जगन्मृषैवेति विभावयन्मुनिः।
निराकृतत्वाच्छ्रुतियुक्तिमानतो, यथेन्दुभेदो दिशि दिग्भ्रमादयः ।।
(अध्यात्म रामायण ७।५।५७)

भावार्थ—ब्रह्मदृष्टि होने से मुनि लोक में स्थित ऐसी भावना करता हुआ इसे देखे कि यह जो जगत् है वह श्रुति, युक्ति और प्रमाण में बाधित होने के कारण चन्द्र भेद (एक चन्द्रमा में दो चन्द्रमा का दीखना) और दिशाओं में होने वाले दिग्भ्रम के समान मिथ्या ही हैं। परन्तु इसके विपरीत मूढ़ इस जगत को सच्चा समझते हैं, और सत्य स्वरूप श्रीरामजी को नहीं जानते, क्योंकि—

मूल दो०—काम क्रोध मद लोभरत, गृहासक्त दुख रूप।
तेकिमि जानहिं रघुपति हि, मूढ़ परे तम कूप ।।७।७३ (क)
निर्गुन रूप सुलभ अति, सगुन जान नहिं कोइ।
सुगम अगम नाना चरित,सुनि मुनि मन भ्रम होइ ।।७।७३(ख)

अर्थ—जो काम, क्रोध, मद और लोभ में रत हैं, और दुःखरूप घर में अथवा देह में आसक्त हैं, वे श्रीरघुनाथजी को कैसे जान सकते हैं ? वे मूर्ख तो अन्धकार रूपी कुएँ में पड़े हुए हैं ।। निर्गुन रूप अत्यन्त सुलभ है, परन्तु (गुणातीत दिव्य) सगुण रूप को कोई नहीं जानता, क्योंकि उन सगुण भगवान् के अनेक प्रकार के सुगम और अगम चरित्रों को सुनकर मुनियों के भी मन को भ्रम हो जाता है ।।७।७३ (क-ख)

प्रश्न—श्री गुरुदेव ? 'काम क्रोध मद लोभ रत से मूढ़ परे तम कूप।' इस दोहे का क्या रहस्य है ?

उत्तर—श्रुति–लोभं मोहं भयं दर्पंकामं क्रोधं च किल्विषम् ।।१२।।
शीतोष्णे क्षुत्पिपासे च संकल्पकविकल्पकम्।

न ब्रह्मकुलदर्पं च न मुक्तिग्रन्थिसंचयम् ॥१३॥
न भयं न सुखं दुःखं तथा मानावमानयोः ।
एतदभावविनिर्मुक्तं तद्ग्राह्यं ब्रह्म तत्परम्॥१४॥ (तेजो०उ०१।१२से१४)

श्रुत्यर्थ– लोभ, मोह, भय, अहंकार, काम और क्रोध के परायण तथा पापों में लगे हुए लोग सर्दी-गर्मी के द्वन्दों में आसक्त, भूख-प्यास की चिन्ता एवं विविध संकल्प-विकल्पों में संलग्न, ब्राह्मण (उंच्च) वंश में उत्पत्ति का गर्व रखने वाले और मुक्ति प्रतिपादक शास्त्रों के केवल संग्रह में आसक्त (केवल शास्त्र ज्ञानी) उस तेजोबिन्दु (श्रीरामजी) को नहीं जान पाते। तथा वह भय, सुख-दुःख और मानापमानदि में फँसे हुए लोगों को भी नहीं प्राप्त होते। जो इन सारे (दूषित) भावों से छूटे हुए हैं, उन्हीं के द्वारा यह परात्पर ब्रह्म राम प्राप्त होने योग्य हैं॥ 'दुख रूप' अर्थात्—

श्रुति—दुःखमिति अनात्मरूपोविषयसंकल्प एव दुःखम्। निरा० उ०)

श्रुत्यर्थ—दुःख क्या है? अनात्म रूप विषयों का संकल्प ही दुःख है। 'मूढ़ परे तम कूप' अर्थात्-श्रुति-मूढ़ इति च कर्तृत्वाद्यहंकार भावारुढो मूढः। (निराम्बोपनिषद्)

श्रुत्यर्थ—मूढ़ कौन है? मैं कर्ता हूं, ऐसा अहंकार के भाव में आरूढ़ जो पुरुष है, वह मूढ़ है। अथवा श्रुति–ज्ञानशौचं परित्यज्य वाह्ये यो रमते नरः।
स मूढः काञ्चनं त्यक्त्वा लोष्टं गृह्णाति सुव्रत॥ (जावाल द०उ० १।२२)

श्रुत्यर्थ—हे सुव्रत? ज्ञान रूपी पवित्रता को छोड़कर जो नर बाहरी शुद्धियों में रमण करता है तथा जो स्वर्ण को त्याग कर मिट्टी को ग्रहण करता है वह मूढ़ है॥

प्रश्न—हे स्वामिन्? 'निर्गुन रूप सुलभ अति, से 'सुनि मुनि मन भ्रम होइ॥" इस दोहे का क्या तात्पर्य है?

उत्तर—तथापि भूमन्महिमा गुणस्य ते, विबोद्धुमर्हत्यमलान्तरात्मभिः।
अविक्रियात् स्वानुभवादरूपतो, ह्यनन्यवोध्यात्मतया न चान्यथा॥
गुणात्मनस्तेऽपि गुणान्विमातुं, हितावतार्णस्य क ईशिरेऽस्य।
कालेन यैर्वाविमिताः सुकल्पैर्भूयांसवः खेमिहिकाद्युभासः॥
(श्रीमद्भागवत १०।१४।६,७)

भावार्थ · हे अच्युत हे व्यापक? यद्यपि आपके निर्गुण और सगुण दोनों स्वरूपों का ज्ञान कठिन होने पर भी, जिनका अन्तःकरण शुद्ध हो गया है वे स्वयं प्रकाश आत्म स्वरूप से आपके निर्गुण स्वरूप की महिमा जान भी सकते हैं। (क्योंकि अपने स्वरूप के जानने में आवरण ही प्रतिवन्धक है, आवरण भंग होते ही आत्म साक्षात्कार हो जाता है, अपना आत्मा निर्गुण है, जो सदा अपरोक्ष है, प्रत्यक्ष है, इसीलिये वह अति सुलभ है) उसके जानने का और कोई उपाय नहीं है, क्योंकि आपका निर्गुण स्वरूप निर्विकार, अनुभव स्वरूप और वृत्तियों का अविषय है। परन्तु भगवन् जिन समर्थ पुरुषों ने अनेक जन्मों तक परिश्रम करके पृथ्वी का एक-एक परमाणु, आकाश के हिमकण (ओस की बूँदें) तथा उसमें चमकने वाले

नक्षत्र एवं तारों को गिन डाला हो—उनमें भी भला ऐसा कौन हो सकता है, जो आपके सगुण स्वरूप के अनन्त गुणों को गिन सके ? (क्योंकि यह मायामय रूप है, जो अपार है) उन (सगुण) के भी सुगम और अगम नाना प्रकार के चरित्र हैं। सुगम वह है कि जिनके देखने-सुनने से ही सब समझ जायें। जैसे मत्स्य, नृसिंहादि अवतारों में ऐश्वर्य प्रकट होने से सब ने जान लिया कि ये भगवान् ही हैं। उन अवतारों में माधुर्य लीला कुछ भी नहीं केवल ऐश्वर्य है, अतः यह सुगम चरित्र है। जो माधुर्यमय लीला के चरित्र हैं वे समझने में अगम हैं, जैसे भगवान् श्रीकृष्ण चरित्र देखकर ब्रह्मा और इन्द्र को भी मोह हो गया, श्रीरामावतार में श्रीसतीजी; जयन्त, श्रीकाकभुशुण्डिजी, श्रीगरुड़जी आदि को मोह हो गया तब और की क्या बात। नागपास के प्रसंग में श्रीशिवजी भगवान् ने इस प्रकार कहा है। यथा—चौ० चरित्र राम के सगुन भवानी। तर्कि न जाहि बुद्धि बलवानी।

अस विचारि जे तग्य बिरागी। रामहि भजहिं तर्क सब त्यागी ॥६।७४।१

अथवा—देखने की कौन कहे सुनने मात्र से भ्रम हो जाता है। क्योंकि जहाँ गुण है, वहाँ ही माया है, और माया—'अघटित घटना पटीयसी माया। इसी माया से ही अपने स्वरूप आत्मा राम में भ्रम हो जाता है, इसी को आगे श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी—श्रीभुशुण्डिजी की वाणी में दिखाते हैं। यथा—

मूल दो०—प्राकृत सिसु इव लीला, देखि भयउ मोहि मोह।
कवन चरित्र करत प्रभु, चिदानंद संदोह ॥७।७७ (ख)

अर्थ (श्रीकाकभुशुण्डिजी कहते हैं, हे सर्पों के शत्रु गरुड़जी !) साधारण बच्चों-जैसी लीला देखकर मुझे मोह हुआ कि चित्-आनन्द प्रभु कौन चरित्र कर रहे है ॥७।७७ (ख)

प्रश्न—हे भगवन् ? 'प्राकृत सिसु इव लीला, से 'चिदानंद संदोहा ॥' इस दोहे का क्या भाव है ?

उत्तर—हे प्रिय दर्शन ? पकड़ने दौड़ने, भागने पर पूप (पूआ) दिखाकर बुलाना, पास आने पर हंसना, भागने पर रोना. इत्यादि चरित्र से मोह हो गया, कि ये सच्चिदानन्द घन हैं, तब ऐसा क्यों कर रहे हैं। भाव है कि कहीं साधारण जीव में तो मुझे ईश्वर बुद्धि नहीं हो रही है, चिदानन्द संदोह में तो ऐसी क्रीड़ा हो नहीं सकती। यह बात सर्वात्मा राम ने जानली। यथा—

मू॰चौ०—भ्रमतें चकित राम मोहि देखा। बिहँसे सो सुनु चरित बिसेषा ॥
तेहि कौतुक कर मरमु न काहूं। जाना अनुज न मात पिता हूँ ॥८४॥

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी ने मुझे भ्रमते—हक्का बक्का चकपकाया (आश्चर्यान्वित) देखा, और वे हँसे, वह विशेष चरित्र सुनिये। उस कौतुक (खेल का मर्म किसी ने नहीं जाना, न छोटे भाइयों ने और न माता-पिता ने ही जाना ॥८४॥

प्रश्न - हे प्रभो ? 'भ्रमतें चकित राम मोहि देखा ।' कहने का क्या अभिप्राय है ?

उत्तर—हे प्रिय वत्स ? दो० कवन चरित्र करत प्रभु, चिदानंद संदोह ।। यही भ्रम से चकित होना है, राम मोहि देखा ।' अर्थात् मन में जो भ्रम उठा था वह चेष्टा से भी देख पड़ता था । अथवा-हृदय की जान गये । क्योंकि वे सर्व अन्तर्यामी हैं, सर्वदर्शी हैं।

प्रश्न--हे भगवन् ? 'विहँसे सो सुन' कहने का क्या भाव है ?

उत्तर—हे प्रिय दर्शन ? 'विहँसे' यही माया को प्रेरित करना है यथा– मायाहास' ६।१५।३।। व 'हासो मोह करी माया ।' (अध्यात्म रामा० ३।६।४३)

अथवा—हमारे तत्त्व का जानने वाला, लोमश ऐसे मुनि से भी सगुण पक्ष में न हारने वाला, सो भी भूल गया, आज कहता है कि कैसा चरित करते हैं । इस पर हँसे सो सुनो ।

प्रश्न—श्रीगुरुदेव ? 'तेहि कौतुक कर मरमु न काहूँ ।' कथन का क्या रहस्य है ?

उत्तर—हे सौम्य ? कौतुक में आश्चर्य युक्त बातें दिखाई जाती हैं, इस प्रसंग में सब आश्चर्य ही भरा पड़ा है । 'मर्म न काहू ।' अर्थात्—सर्वात्मा भगवान् एक रूप से जैसे खेल रहे थे वैसे ही खेलते रहे और दूसरे ऐश्वर्य रूप से भुशुण्डि से ऐसी क्रीड़ा करते रहे । यथा–

मूल चौ०–जानु पानि धाए मोहि धरना । स्यामल गात अरुन कर चरना।।
तब मैं भागि चलेउँ उरगारी । राम गहन कहँ भुजा पसारी ।।८५।।

अर्थ—वे श्याम शरीर और लाल-लाल हथेली और चरणतल वाले बालरूप प्रभु जी घुटने और हाथों के बल मुझे पकड़ने को दौड़े । हे सर्पों के शत्रु गरुड़जी ? तब में भाग चला । श्रीरामजी ने मुझे पकड़ने के लिये भुजा फैलाई ।।८५।।

प्रश्न –हे स्वामिन् ? 'जानु पानि धाए मोहि धरना ।' कहने का क्या भाव है ?

उत्तर—हे सुव्रत ? काग आँगन में पृथ्वी पर पहले फुदक-फुदक कर बैठता था, जब वह भागा आँगन से बाहर उड़ा तब भुजा फैलाई अर्थात् बढ़ाई । 'भुजा पसारी' अर्थात्—प्रभु जहाँ खेल रहे थे वहाँ ही खेलते रहे, केवल भुजा ही बढ़ती चली जाती थी, अथवा आकाश में केवल भुजा ही पीछे पीछे अदृष्ट रूप से जा रही थी, जिसे भुशुण्डिजी ही देखते थे, दूसरा नहीं, यही प्रभु की माया का चरित्र है, कहाँ तक पीछा किया सो बताते हैं । यथा—

मूल दो०–ब्रह्म लोक लगि गयउँ मैं, चितयउँ पाछ उड़ात ।
जुग अंगुल कर बीच सब, राम भुजहि मोहि तात ।।७।७६(क)
सप्तावरन भेद करि, जहाँ लगें गति मोरि ।
गयउँ तहाँ प्रभु भुज निरखि, व्याकुल भयउँ बहोरि ।।७।७६(ख)

अर्थ—मैं ब्रह्मलोक तक गया, और जब उड़ते हुए मैंने पीछे की ओर देखा, तो हे तात ? श्रीरामजी की भुजा में और मुझमें दो ही अंगुल का बीच था । सातों आवरणों को भेदकर

जहाँ तक मेरी गति थी, वहाँ तक में गया, पर वहाँ भी प्रभु की भुजा पीछे ही रही यह देख कर फिर तो मैं व्याकुल हो गया ।।७।७९ (क-ख)

प्रश्न — हे भगवन् ? 'ब्रह्म लोक लगि गयउँ मैं' कहने का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर — हे प्रिय दर्शन ? पृथ्वी से ब्रह्मलोक तक जाने में सप्त स्वर्ग-भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक, ये छः (१) लोक क्रम से पार करने पर तब ब्रह्मलोक आता है, इस सत्य लोक ही में सनकादि लोक, उमालोक और शिवलोक हैं। शिवलोक के साथ ही ब्रह्मलोक है, यहाँ तक पहुंचकर पीछे देखा तो 'जुग अंगुल कर वोच सव, राम भुजहि मोहि तात। अर्थात्—दो अंगुल का तात्पर्य है—अहन्ता और ममता, इसका भेद जीवों में है, ईश्वर में नहीं। परन्तु हानि-लाभ ईश्वर से जीवों तक दोनों में देखे जाते हैं। ईश्वर में अहन्ता मैं भक्त का भगवान् (स्वामी) हूं, तथा ममता यह मेरा भक्त (सेवक) है,

चौ० जेहि जन पर ममता अति छोहू ।१।१३।३

यही दो अंगुल द्वैत का अन्तर है। अथवा—नाम और रूप यही दो अंगुल द्वैत का अन्तर है, अथवा—मैं और मोर, तू और तोर यही दो अंगुल का अन्तर है अथवा-मैं अल्पज्ञ हूं-वह सर्वज्ञ है, मैं जीव हूँ-वह ईश्वर है, यही द्वैत दो अंगुल का अन्तर है, यही व्याकुलता है, यही अधीरता है, यही द्वैत-दो अंगुल का अन्तर ही महा अनर्थ की खानि है। जब तक द्वैत रूप अन्तर दूर नहीं होता, तब तक जन्म-मरण के भय से पीछा नहीं छूटता, श्रुति—अन्तर का निषेध करती है। यथा —

श्रुति—त्वं ब्रह्मासि। अहं ब्रह्मास्मि। आवयोरन्तरं न विद्यते।
त्वमेवाहम् अहमेवत्वम् ।। (त्रिपाद्विभूति महानारायण उ० ६)

श्रुत्यर्थ—तुम ब्रह्म हो मैं ब्रह्म हूँ। हम दोनों में अन्तर नहीं है। तुम्ही मैं (मेरे स्वरूप) हो। मैं ही तुम (तुम्हारा स्वरूप हूं) दो अंगुल अन्तर की बात क्या श्रुति तो थोड़े से अन्तर से ही भय कहती है। यथा —

श्रुति—यदा ह्येवैष एतस्मिन्नुदरमन्तरं कुरुते। अथ तस्य भयं भवति ।।
तत्त्वेव भयं विदुषोऽमन्वानस्य ।। (तैत्तिरीय० उ० २।७)

श्रुत्यर्थ—क्योंकि जब तक यह जीवात्मा उन परब्रह्म परमात्मा राम से थोड़ा सा भी अन्तर किये रहता है, उन्हें अपने से भिन्न मानता है तब तक उसके लिये, जन्म-मृत्यु रूप भय प्राप्त होता है, तथा वह (केवल मूर्ख को ही नहीं होता) किन्तु अभिमानी शास्त्रज्ञ विद्वान को भी अवश्य होता है।

प्रश्न—हे प्रभो ? 'सप्ता वरन' की व्याख्या किस प्रकार है ?

उत्तर—हे प्रिय वत्स ? सप्तावरण के विद्वानों ने कई प्रकार माने हैं। जैसे—
(१)—पृथ्वी तत्त्व (१) जल तत्त्व (२) अग्नि तत्त्व (३) वायु तत्त्व (४) आकाश तत्त्व (५) अहंकार तत्त्व (६) और मह तत्त्व (७)

(२)–अष्टधा प्रकृति जो अपरा प्रकृति के नाम से श्रीगीताजी में प्रसिद्ध है।

यथा–भूमिरापोऽनलोवायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ।। (गीता (७।४)

अर्थात्–पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश तथा मन, बुद्धि और अहंकार भी ऐसे यह आठ प्रकार से विभक्त हुई मेरी प्रकृति है। अर्थात् आठों के बीच सात सन्धियाँ ही सप्तावरण हैं।

(३)–सप्तव्याहृती नाम वाले सात लोक–भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः और सत्य-लोक ये सप्तावरण हैं।

(४)–शरीर मध्य में सप्त चक्रों को ही सप्तावरण योगियों ने कहा है।

(१) मूलाधार चक्र, (२) स्वाधिष्ठानचक्र, (३) मणिपूरकचक्र, (४) अनाहतचक्र, (५) विशुद्धचक्र, (६) आज्ञाचक्र, (७) सहस्रार चक्र व शून्यचक्र, ये सात चक्र ही सप्तावरण हैं।

(५)–किन्हीं विद्वानों ने मोह (अज्ञान) की सप्तभूमिकाओं को ही सप्तावरण कहा है। यथा–

श्रुति—वीजजाग्रत्तथा जाग्रन्महाजाग्रत्तथैव च।
जाग्रत्स्वप्रस्तथा स्वप्नः स्वप्नजाग्रत्सुषुप्तिकम् ।।
इति सप्तविधो मोहः। (मह० उ० ५।८)

श्रुत्यर्थ–मोह (अज्ञान) सात प्रकार का होता है–प्रथम बीज–जाग्रत अवस्था, दूसरा जाग्रत अवस्था, तीसरा महाजाग्रत अवस्था, चौथा जाग्रत स्वप्न अवस्था, पाँचवा स्वप्न अवस्था, छटा स्वप्न जाग्रत अवस्था और सातवाँ सुषुप्ति अवस्था।

प्रश्न—श्री गुरुदेव ? 'जहँ लगे गति मोरि' कथन का क्या रहस्य है ?

उत्तर—हे सौम्य ? रहस्य है कि सप्तावरण भेदकर 'विरजा' तक पहुंचे। इसके आगे जीव की गति (पहुंच) नहीं, कि आगे जाकर लौट आवै 'विरजा' पार प्रभु का नित्य परम धाम है। जहाँ जाकर 'फिर नहीं फिरता (लौटता)। यथा—

श्रुति-ब्रह्म लोकमभिसंपद्यते न च पुनरा वर्तते न च पुनरावर्तते ।। (छ०उ० ८।१५।१)

श्रुत्यर्थ–वह निश्चय ही ब्रह्मलोक (परमधाम) को प्राप्त होता है, और फिर नहीं लौटता, फिर नहीं लौटता ।। यह स्थिति जब प्राप्त होती है जब सप्तावरण का भेदन करके प्रभु के परम धाम में पहुंच जाये, इसलिए सप्तावरण का भेदन कहा जाता है। वह इस प्रकार है।

(१) सप्तावरण भेदन–(१) पृथ्वी तत्त्व का भेदन–गन्ध तन्मात्रा को जीते–अर्थात्–नासिका घ्राणेन्द्रिय अनाप-सनाप गन्ध का ग्रहण न करे, व गन्ध का ग्रहण त्याग दे, और आप जब चाहे जैसी गन्ध का ग्रहण करे, सारांश यह है कि गुलाब, केवड़ा होते हुए, उनकी गन्ध का ग्रहण न करे, व ये न हों तो भी इनकी गन्ध का भान हो, अर्थात्–गन्ध तन्मात्रा

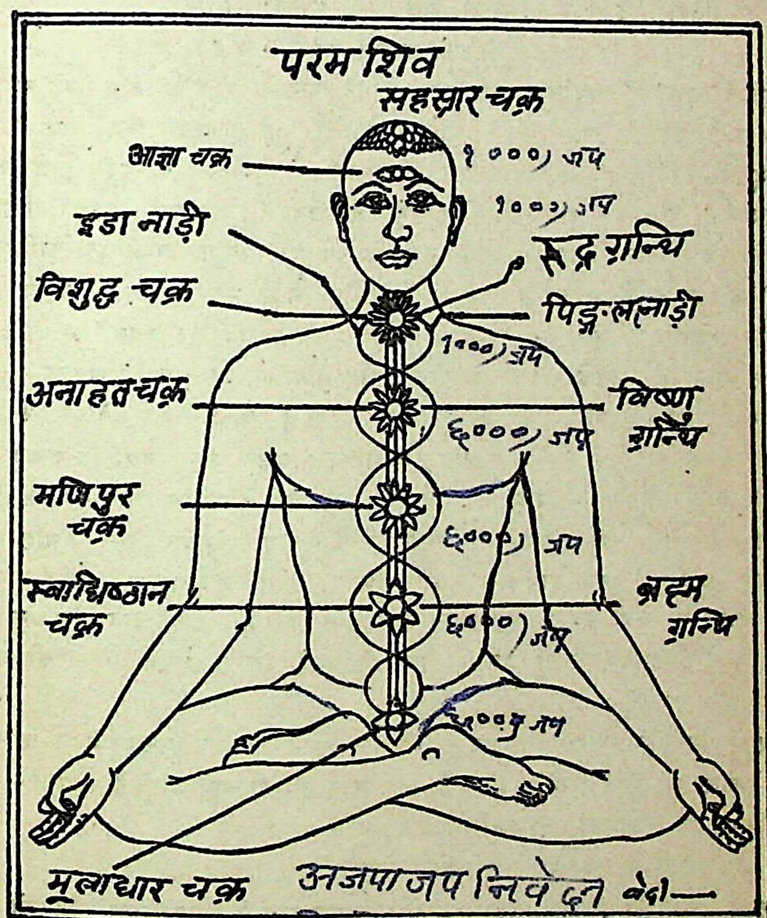
पर अधिकार कर लिया जाये एवं घ्राणेन्द्रिय पर विजय हो जाये, तो पृथ्वी-तत्त्व-प्रथमावरण का भेदन हो जाता है। फिर रस तन्मात्रा पर अधिकार प्राप्त किया जाये, अर्थात् भोजनादि के समय जिह्वा रस के स्वाद को ग्रहण न करे, कभी-कभी रोग के कारण ऐसा हो जाता है कि जिह्वा स्वाद नहीं बताती, परन्तु रसों की आसक्ति बनी रहती है, जब रसासक्ति निवृत्ति हो जाय और जब चाहे तब रसानुभूति हो जाय—बिना रसों के। तब जानना चाहिए कि रस तन्मात्रा पर अधिकार प्राप्त हो गया, रस के जीतने से जल तत्त्व दूसरे आवरण का भेदन हो जाता है। फिर रूप तन्मात्रा पर विजय प्राप्त करना चाहिए, अन्धा और नेत्र रोग ग्रस्त रूप का नहीं देख पाता, परन्तु यह रूप तन्मात्रा पर विजय नहीं है। जब देखते हुए भी न देखें, और न देखते हुए भी देखें तब समझना चाहिये कि रूप तन्मात्रा पर विजय प्राप्त करली, रूप तन्मात्रा पर विजय प्राप्त होते ही, अग्नि तत्त्व तीसरे आवरण का भेदन हो जाता है। फिर स्पर्श तन्मात्रा पर विजय प्राप्त करनी चाहिए, कारणवशात् कभी-कभी शरीर में जड़ता आ जाने से कोमल-कठोर, शीतोष्ण का बोध नहीं होता, यह स्पर्श तन्मात्रा का जीतना नहीं है, अच्छी प्रकार सावधानी में जब त्वक् इन्द्रिय कोमल-कठोर शीतोष्ण का भान न करे अथवा बिना स्पर्श के ही इनका बोध हो, तब जानना चाहिए कि स्पर्श तन्मात्रा को जीत लिया, और स्पर्श तन्मात्रा के जीतते ही वायुतत्त्व, चौथे आवरण का भेदन हो जाता है। फिर शब्द तन्मात्रा को जीतना चाहिये बहरे को शब्द बोध नहीं होता परन्तु यह शब्द तन्मात्रा पर विजय नहीं है, श्रवणेन्द्रिय सचेत होने पर भी नहीं सुने, और बिना शब्द के श्रवण करे, तब जानना चाहिये कि श्रवणेन्द्रिय पर विजय अर्थात् शब्द तन्मात्रा को जीत लिया, शब्द तन्मात्रा पर विजय प्राप्त होते ही, आकाश तत्त्व पंचमाकरण का भेदन हो गया। संक्षेप में सारांश यह है कि पञ्चज्ञानेन्द्रियों में से जिसके साथ मन नहीं होता वही काम नहीं करती, मनेन्द्रिय के संयोग से ही तन्मात्राओं का भान होता है, जैसे कभी कोई श्रोता कह उठता है कि फिर से कहना जी मैंने सुना नहीं—मेरा मन दूसरी जगह चला गया था, यही बात सब इन्द्रियों की है। सार यह निकला कि इन्द्रियों से मन का सम्बन्ध न होने देना चाहिए, तो यह पंचावरण भेदन कर दिये जायेंगे। फिर छटा-आवरण अहंकार का है, इसके भेदन के लिये, संकल्प-विकल्पों पर विजय करने से मानस तत्त्व पर जय होती है, जब मनवश हो जाता है, तो अहंकार तत्त्व छटे आवरण का भेदन हो जाता है। फिर सातवाँ आवरण महतत्त्व का है, उसके भेदन के लिये बुद्धि पर आधिपत्य करना होता है, बुद्धि उसी में से निश्चय करती है जो मन संकल्प करता है, जब मन संकल्प शून्य हो जाता है तो बुद्धि इनके निश्चय से उपराम होकर स्फुरण में रमण करती है जो बहुत ही सूक्ष्म बुद्धि वृत्तिः है, जब इससे भी उपराम होकर शान्त हो जाती है तो महतत्त्व सातवें आवरण का भेदन हो जाता है। इस प्रकार सप्तावरण का भेदन कर विरजा' के पार उस परम धाम में पहुंचना चाहिये, जहाँ से पुनरावृत्ति नहीं होती।

(२) दूसरा सप्तावरण जो श्रीगीताजी के अध्याय ७ श्लोक ४ में आठ प्रकार की प्रकृति जो कही गई है—उसमें आठ खम्भे खड़े करने पर उनके वीच में सात ही स्थान होंगे—यही सात आवरण हैं। उनका भेदन विधान भी भगवान् श्री कृष्णचन्द्रजी ने वहाँ ही बता दिया है। यथा—'मत: परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनंजय। (गीता ७।७) अर्थात्—हे धनंजय ? मेरे से सिवाय किञ्चिन्मात्र भी दूसरी वस्तु नहीं है। यह सार वताया, फिर भेदन क्रिया की तरफ संकेत करते हुए, गीता ७।१२ में 'नत्वहं तेषुते मयि'-परन्तु (वास्तव में) उनमें मैं और वे मेरे में नहीं हैं। ऐसा जानना चाहिए, यह ही सप्तावरण भेदन है, इस के पश्चात् ७।१८ और ७।१९ देखिये, इससे निश्चय करके सप्तावरण भेदन कर 'विरजा' पार परमधाम में पहुँचना चाहिए, जहाँ से लौटकर माता के गर्भ में नहीं आते, जिससे संसृति का बाध हो जाय।

(३) तीसरा सप्तावरण—सप्त व्याहृती नाम वाले सात स्वर्गों का उल्लंघन ही सप्तावरण भेदन है। जिनमें से 'भूः' लोक पुत्र से जीता जाता है, ब्रह्मचर्य पालन कर अपने वर्ण को गोत्र बचाकर सुयोग्य कन्या का पाणिग्रहण कर शास्त्रानुकूल सुपुत्र पैदाकर संस्कार विधि से यज्ञोपवीत-विद्याध्ययन कराके विवाह करादे इस प्रकार से यह लोक जीत लिया जाता है। इस लोक (मृत्युलोक) का उलंघन होने पर—पहला आवरण भेदन हो जाता है। फिर भुवर्लोक के जीतने के लिये निष्काम कर्म करने चाहिये, निष्काम शुभ कर्म से भुवः का उलंघन करने से दूसरे आवरण का भेदन हो जाता है। फिर स्वर्लोक तपः से जीता जाता है, इसका उलंखन करने से तीसरे आवरण का भेदन हो जाता है। फिर महर्लोक विद्या से जीता जाता है इसके जीतने से चौथे आवरण का भेदन हो जाता है, फिर जनलोक परोक्ष ज्ञान से जीता जाता है, इसके जीतने से पाँचवें आवरण का भेदन हो जाता है। फिर तप लोक अदृढ़ अपरोक्ष ज्ञान से जीता जाता है, इसके जीतने पर छटे आवरण का भेदन हो जाता है। फिर सत्य लोक दृढ़ अपरोक्ष ज्ञान से जीता जाता है, इसका उलंघन कर 'विरजा' के पार परमधाम में पहुंचना चाहिये जहाँ से फिर लौटते नहीं।

(४) चौथा आवरण का भेदन—शरीर मध्ये सप्त चक्र हैं उनका भेदन हठ योग क्रिया—प्राणायाम से किया जाता है। प्राण इड़ा और पिंगला—ये दोनों नाड़ी चक्रों के बाहर दाहिने बायें बहती हैं, सर्पाकार रूप में अर्थात् मूलाधार के बायें इड़ा और दाहिने पिंगला फिर दूसरे स्वाधिष्ठान के बायें पिंगला और दाहिने इड़ा. फिर तीसरे चक्र मणिपूरक के बायें इड़ा और दाहिने पिंगला, फिर चौथे अनाहत चक्र के बायें पिंगला और दाहिने इड़ा, फिर पाँचवें विशुद्ध चक्र के बाय इड़ा और दाहिने पिंगला बहती हुई नासिका के बाहर बहती हैं। यह क्रम लोम-विलोम चलता है-अर्थात् कभी मूलाधार के बायें पिंगला भी बहती है सर्पाकार विधि से नासिका के बाहर बहती है। जब प्राणायाम से प्राण सूक्ष्म हो जाते हैं तो प्राण पहले मूलाधार के मध्य बहने लगते हैं, यही मूलाधार चक्र का प्रथम आवरण भेदन है।

और प्राणों के सूक्ष्म होने से स्वाधिष्ठान के मध्य से प्राण बहने लगें तो दूसरे आवरण का भेदन हो जाता है। इसी प्रकार छः (६) चक्रों का भेदन करके सहस्रार का भेदन कर दशम द्वार से पयान करता है तो 'विरजा' पार परमधाम में पहुंच जाता है, फिर वहाँ से पुनः



संसार में लौटता नहीं, यह क्रिया श्री गुरु मुख द्वारा जाननी चाहिये। इसको श्रुति इस प्रकार कहती है। यथा—

श्रुति—सम्पूर्ण हृदय:शून्य त्वारम्भे योगवान्भवेत्।
द्वितीयां विघटीकृत्य वायुर्भवति मध्यगः ॥६॥

दृढासनो भवेद्योगी पद्माद्यासनसंस्थितः।
विष्णुग्रन्थेस्ततो भेदात्परमानन्दसभवः ॥७॥

अतिशून्यो विमर्दश्च भेरीशव्दस्ततो भवेत् ।
तृतीयां यत्रनो भित्त्वा निनादो मर्दनध्वनिः ॥८॥
महाशू यं ततो याति सर्वसिद्धसमाश्रयम् ।
चित्तानन्दं ततो भित्त्वा सर्वपीठगतानिलः ॥९॥
(सौभाग्यलक्ष्म्युपनिषद् २।६ से ९)

श्रुत्यर्थ—शून्य में अर्थात् सुषुम्णा नाड़ी में पूरे मनोयोग के साथ ध्वनि सुनते रहने से आरम्भ में ही—जहाँ से सुषुम्ना नाड़ी आरम्भ होती है. उस मूलाधार चक्र में ही साधक योगवान् हो जाता है, अर्थात् दीप शिखा के आकार के जीवात्मा को हृदय पुण्डरीक से मूलाधार चक्र में लाकर सुषुम्ना नाड़ी से संयुक्त कर देता है। इस प्रकार इच्छा शक्ति की प्रेरणा से जव जीवात्मा सुषुम्णा मार्ग पर चलने लगता है, तव द्वितीय अर्थात् स्वाधिष्ठान चक्र को विघटित करके-भेदकर उसी के मध्यस्थित छिद्र में से होकर प्राणवायु मध्यगा होती है, अर्थात् सुषुम्णा में प्रवेश कर जाती है ॥४-६॥ पद्मासनादि पर स्थित हुए योगी का आसन दृढ़ होता है। उसके वाद विष्णु ग्रन्थि अर्थात् माया को जो तृतीय मणिपूरक—नामक चक्र में रहकर अनेक कामनाओं का विस्तार करती रहती है विच्छिन्न कर देने पर परमानंद की प्राप्ति सम्भव हो जाती है। शून्य अर्थात् माया को लांघकर उठता हुआ प्राणवायु जब नाड़ी के साथ संघर्षण को प्राप्त होता है, तब उससे भेरी के समान ध्वनि सुन पड़ती है, और तृतीय मणिपूरक चक्र को भेदकर चलने पर प्राणुवायु से मर्दल ध्वनि अर्थात् मृदंग जैसी ध्वनि होती है। इसके आगे अन्य चक्रों को भेदता हुआ वह महाशून्य अर्थात् आकाश चक्र में जाता है, जहाँ सव प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। इसके बाद प्राणवायु तालु चक्र से चित्त को जयकर तालु चक्र को भेदता है, जहाँ चित्तगत सम्पूर्ण आनन्द की प्राप्ति होती है ॥ (७-९)

(५) पाँचवा सप्तावरण है, अज्ञान की सात भूमिकाओं का उसका भेदन—ज्ञान की सात भूमिकाओं को प्राप्त करने से होता है, अतः ज्ञान भूमिका कही जाती है। यथा—

श्रुति—इमां सप्तपदां ज्ञानभूमिमाकर्णयानघ ।
नानया ज्ञातया भूयो मोहपंके निमज्जति ॥ (मह० उ० ५।२१)

श्रुत्यर्थ—अव निष्पाप पुत्र ? ज्ञानकी जो सात भूमिकाएँ हैं, उनको सुनो, जिनको जान लेने पर पुरुष पुनः मोह-पंक (भवसागर) में नहीं पड़ता।

श्रुति—ज्ञानभूमिः शुभेच्छाख्या प्रथमा समुदाहृता ।
विचारणा द्वितीया तु तृतीया तनुमानसी ॥२४॥
सत्त्वापत्तिश्चतुर्थीस्यात्ततोऽसंसक्तिनामिका ।
पदार्थभावना षष्ठी सप्तमी तुर्यगा स्मृता ॥२५॥
आसामन्तः स्थिता मुक्तिर्यस्यां भूयो न शोचति । वाराह० उ० ४।१,२
(मह० उ० ५।२४ से २६)

श्रुत्यर्थ—शुभेच्छा नाम की पहली ज्ञानभूमि कहलाती है। दूसरी विचारणा कहलाती है। तीसरी तनुमानसी, चौथी सत्त्वापत्ति उसके बाद पाँचवी असंसक्ति, षष्ठी पदार्थ-भावना तथा सप्तमी तुर्यगा है। इनके अन्तरगत वह मुक्ति है, जिसे प्राप्त कर पुनः शोक नहीं करना पड़ता। अर्थात् फिर ससार को प्राप्त नहीं होता।

श्रुति–येनिदाघ महाभागाः सप्तमीं भूमिमाश्रिताः।
आत्मरामा महात्मानस्ते महत्पदमागताः॥ (महो० उ० ५।३६)

श्रुत्यर्थ-–हे निदाघ ? जो महाभाग्यवान् पुरुष सप्तमी भूमिका का आश्रय ले चुके हैं, वे आत्मा में रमण करने वाले महात्मा महान् पद को प्राप्त हो गये हैं। यह अज्ञान के सप्तावरण भेदन का फल है, महान् पद प्राप्त अर्थात् फिर लौटकर न आना। परन्तु इस सप्तावरण भेदन क्रिया के जानने के लिये श्रोत्रिय–ब्रह्म निष्ठ सद्गुरु की शरण में जाना चाहिए।

यहाँ पर पाँच प्रकार का सप्तावरण और उसका भेदन कहा गया, जिस मुमुक्षु को जो भेदन सुलभ हो, उस विधि से सप्तावरण का भेदन करके 'विरजा' पार परमधाम में पहुंचना चाहिए, यही पुरुष का पुरुषत्त्व है।

प्रश्न— हे स्वामिन् ? 'व्याकुल भयउँ वहोरि' कहने का क्या भाव है ?

उत्तर—हे सुव्रत ? भाव है कि ब्रह्मलोक तक भुजा को पीछे देखकर कुछ व्याकुल हुआ था, परन्तु जब सप्तावरण भेदन करने पर भी भुजा पीछे ही लगी देखी तो फिर व्याकुल हुआ। यथा—

मू॰चौ०—मूदेउँ नयन त्रसित जब भयउँ। पुनि चितवत कोसलपुर गयऊँ॥
मोहि विलोकि राम मुसुकाहीं। बिहँसत तुरत गयउँ मुख माहीं॥८६॥

अर्थ—जब मैं घबरा गया, तब मैंने आँखें मूंदली। फिर आँख खोली तो देखा कि मैं अयोध्यापुरी में पहुंच गया। मुझे देखकर श्रीराम जी मुस्कराने लगे, उनके हँसते ही मैं तुरन्त उनके मुख में प्रवेश कर गया॥८६॥

प्रश्न—हे भगवन् ? 'मूदेउँ नयन त्रसित जब भयऊँ' कहने का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—हे प्रिय दर्शन ? भयभीत हुए विचार किया जहाँ तक मेरी पहुंच थी आया, अब कहाँ जाऊँ यह तो मेरे पीछे भूत की भाँति पड़ गये, यह क्या (संकट) आपत्ति मोल लेली, अब तो कोई ऐसी जगह नहीं जहाँ जाकर इनसे बचूँ। बस निराश होकर नेत्र बन्द कर लिये। 'पुनि चितवत कोसलपुर गयऊँ।' अर्थात् नेत्र बन्द करते ही वह लीला प्रभु ने समाप्त करदी। इस प्रकार निमेष-उन्मेष से जहाँ-तहाँ दूसरे दृश्य का प्रारम्भ दिखाया।

प्रश्न—हे प्रभो ? 'मोहि विलोकि राम मुसुकाहीं' कहने का क्या अभिप्राय है ?

उत्तर—हे प्रिय वत्स ? अभिप्राय है कि अपना पुरुषार्थ सब कर लिया कि और कुछ बाकी है कहो बच्चू ? कहाँ भागकर जाओगे मुन्ना ? घिर-घिराकर यहाँ ही आ गये

प्यारे ? अथवा–हँसकर जनाया कि अब दूसरा चरित्र करेंगे। तथा अब मुसुकराकर अपना अखण्ड अद्भुत रूप दिखायेंगे। चरित्र बदला-अतः हँसे। 'विहँसत तुरत गयउँ मुख माहीं।' अर्थात्–जैसे कोई मच्छर किसी के पेट में चला जाये, वहाँ अति अद्भुत चरित्र व दृश्य देखे। यथा—

मू.चौ०–उदर माझु सुनु अंडजराया। देखेउँ बहु ब्रह्मांड निकाया॥
अति बिचित्र तहँ लोक अनेका। रचना अधिक एक ते एका॥८७॥

हे पक्षिराज गुरुड़जी ? सुनिये. मैंने उनके पेट में बहुत से ब्रह्माण्ड समूह देखे। वहाँ उन (उन ब्रह्माण्डों में) अत्यन्त विलक्षण अनेक लोक देखे, जिनकी रचना एक से एक बढ़कर थी॥८७॥ अर्थात् जो बाहर देखा था वह तथा और अति विचित्र अन्दर देखा, सो बताते हैं। यथा—

मू.चौ०–कोटिन्ह चतुरानन गौरीसा। अगनित उड़गन रवि रजनीसा॥
अगनित लोकपाल जम काला। अगनित भूधर भूमि बिसाला॥८८॥

अर्थ—करोड़ों ब्रह्माजी और शिवजी, अनगिनत तारागण, सूर्य और चन्द्रमा, अनगिनत लोकपाल, यम और काल, अनगिनत विशाल पर्वत और भूमि॥८८॥

प्रश्न—श्री गुरुदेव ? 'उदर माझ सुनु अंडज राया। से ~ भूमि विसाला॥' तक दो० (८७-८) चौपाइयों का क्या रहस्य है ?

उत्तर—हे सौम्य ? श्रुति भी यही संकेत करती है इस प्रसंग पर यथा—

श्रुति–स एव नित्यपरिपूर्णः पादविभूतिवैकुण्ठनारायणः।
सचानन्तकोटिब्रह्माण्डानामुदयस्थितिलयाद्यखिल–
कार्यकारणजालपरमकारणकारणभूतो महामायातीतस्तुरीयः
परमेश्वरो जयति। तस्मात्स्थूलविराट्स्वरूपो जायते।
ससर्वकारणमूलं विराट्स्वरूपो भवति।+
अनन्त.श्रवणः सर्वमावृत्य तिष्ठति। सर्वव्यापको भवति।
सगुणनिर्गुणस्वरूपो भवति। ज्ञानवलैश्वर्यशक्तितेजः
स्वरूपो भवति। विविध विचित्रानन्त जगदाकारो भवति।
(त्रिपाद्विभूति महानारायण० उ० २)

श्रुत्यर्थ- ये वही नित्य, परिपूर्ण पाद विभूति स्वरूप वैकुण्ठ वासी नारायण हैं, वे अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति, स्थित, प्रलयादि, समस्त कार्य एवं कारण समूहों के (प्रकृति रूप) परम कारण के भी कारण रूप महामायातीत तुरीय स्वरूप परमेश्वर विराजित है। उनसे स्थूल विराट् स्वरूप उत्पन्न होता है। वही विराट् स्वरूप समस्त कारणों का मूल है। वह (विराट्) अनन्त मस्तकों तथा अनन्त नेत्रों, हाथों और पैरों से युक्त पुरुष है।

पृष्ठ १८८ + स चानन्त शीर्षो पुरुषः अनन्ताक्षि पाणि पादो भवति।

यह अनन्त कानों वाला सबको घेरकर (व्याप्त करके) स्थित है। वह सर्व व्यापक है। वह सगुण एवं निर्गुण स्वरूप है। वह ज्ञान, बल, ऐश्वर्य, शक्ति तथा तेजः स्वरूप है। नाना प्रकार के अनन्त विचित्र जगत् के आकार में वही स्थित है ॥ तथा—

मू. दो०—जो नहिं देखा नहिं सुना, जो मनहूं न समाइ ।
सो अब अद्‌भुत देखउँ, बरनि कवनि विधि जाइ ॥७।८०(क)
एक एक ब्रह्मांड महुँ, रहउँ बरष सत एक ।
एहि बिधि देखत फिरउँ मैं, अंड कटाह अनेक ॥७।८०(ख)

अर्थ—जो कभी न देखा था, न सुना था, और मन में भी नहीं समा सकता था, अर्थात् जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी, वही सब अद्‌भुत सृष्टि मैंने देखी। तब उसका किस प्रकार वर्णन किया जाये। मैं एक-एक ब्रह्माण्ड में एक-एक सौ, व एकसौ एक वर्ष तक रहा। इस प्रकार मैं अनेक ब्रह्माण्ड देखता फिरा ॥७ ८० (क-ख)

प्रश्न—हे स्वामिन् ? 'जो नहिं देखा नहिं सुना, से 'वरनि कवनि विधि जाइ ॥ इस दोहे का क्या भाव है ?

उत्तर—हे सुव्रत ? जो देखा नहीं सुना भी नहीं, माया का विलास होने से आश्चर्य जनक था, उसका वर्णन कैसे सम्भव है, श्रुति भी यही संकेत करती है। यथा—

श्रुति-ततः सविलासमूलाविद्या सर्वकार्योपाधिसमन्विता
सदसद्विलक्षणानिर्वाच्या लक्षणशून्याविर्भाव-
तिरोभावात्मिकानाद्यखिलकारणकारणानन्त
महामायाविशेषणविशेषिता (त्रिपाद्विभूति म० ना० उ० ३)

श्रुत्यर्थ—वह मूल-अविद्या अपने विलास के साथ तथा सम्पूर्ण कार्य रूप उपाधि के सहित जो सत्-असत् से विलक्षण, अनिर्वचनीय, लक्षण रहित आविर्भाव, तिरोभावरूप, अनादि अखिल कारणों की कारण रूपा एवं अनन्त महामाया विशेषणों से युक्त है। उसका दिखाया हुआ अद्‌भुत क्यों न हो, और जो अद्‌भुत है उसका वर्णन किस प्रकार किया जाय ॥

प्रश्न—हे भगवन् ? एक एक ब्रह्मांड महुं, रहउँ वरष सत एक।' कहने का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—हे प्रिय दर्शन ? बताया कि मैंने सौ-सौ वर्ष रहकर अच्छी तरह देखा। अथवा एक-एक ब्रह्माण्ड में एक सौ एक वर्ष रहे और आगे कहा है कि एक सौ एक कल्प बीते। कुछ ठिकाना नहीं इतने समय में कितने ब्रह्माण्डों की इन्होंने यात्रा की और वहाँ देखा सो कहते हैं। यथा—

मू.चौ०-लोक लोक प्रति भिन्न बिधाता। भिन्न विष्णु सिव मनु दिसित्राता
नर गंधर्व भूत बेताला। किंनर निसिचर पसु खग व्याला ॥८६॥

देव दनुज गन नाना जाती। सकल जीव तहँ आनहि भाँती
महि सरि सागर सरगिरि नाना। सब प्रपंच तहँ आनइ आना॥९०

अर्थ—प्रत्येक लोक में भिन्न-भिन्न ब्रह्मा, भिन्न-भिन्न विष्णु, शिव, मनु, दिक्पाल, मनुष्य, गन्धर्व, भूत, वैताल, किन्नर, राक्षस, पशु, पक्षी, सर्प तथा नाना जाति के देवता एवं दैत्य-गण थे। सभी जीव वहाँ दूसरे ही प्रकार के थे। अनेक, पृथ्वी, नदी, समुद्र, तालाब तथा सब सृष्टि वहाँ दूसरी ही दूसरी प्रकार की थी ॥८९, ९०॥

प्रश्न—हे प्रभो ? 'लोक लोक प्रति भिन्न विधाता।' से 'खग व्याला ॥८९॥ और 'देव दनुज । आनइ आना ॥९०॥ इन चौपाइयों का क्या अभिप्राय है ?

उत्तर—श्रुति-अस्य ब्रह्माण्डस्य समन्ततः स्थितान्येतादृशान्यनन्त-
कोटि ब्रह्माण्डानि सावरणानि ज्वलन्ति। चतुर्मुखपञ्चमुख-
षण्मुखसप्तमुखाष्टमुखादि सङ्ख्याक्रमेण सहस्रावधि
मुखान्तैर्नारायणांशै रजोगुण प्रधानैरेकैक सृष्टिकर्तृभि-
रधिष्ठितानि विष्णुमहेश्वराख्यैर्नारायणांशैः
सत्त्वतमोगुण प्रधानैरेकैकस्थितिसंहारकर्तृभिरधिष्ठितानि
महाजलौघमत्स्यबुद्बुदानन्तसंघवद्भ्रमन्ति।
क्रीडासक्तजालककरतलामलकबृन्दवन्महाविष्णोः
करतले विलसन्त्यनन्तकोटिब्रह्माण्डानि। जलयन्त्रस्थं
घट मालिकाजालवन्महाविष्णोरेकैक रोमकूपान्तरेष्वनन्त
कोटि ब्रह्माण्डानि सावरणानि भ्रमन्ति॥ (त्रिपादि० म० ना० उ० ६)

श्रुत्यर्थ—इस ब्रह्माण्ड के चारों ओर ऐसे ही दूसरे अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड अपने आवरणों के साथ प्रकाशित होते हुए अवस्थित हैं, (वे ब्रह्माण्ड) चार मुखों के, पाँच मुखों के, छः मुखों वाले, सात मुखों के, आठ मुखों के–इस प्रकार संख्या क्रम से सहस्र मुखों तक के श्रीनारायण के अंशरूप, रजोगुण प्रधान एक-एक सृष्टिकर्ता (ब्रह्मा) द्वारा अधिष्ठित हैं, विष्णु, महेश्वर नाम वाले श्रीनारायण के अंशरूप सत्त्व तथा तमो गुण प्रधान एक-एक स्थित तथा संहार कर्ता भी अधिष्ठित हैं। (ये सब ब्रह्माण्ड) विशाल जल प्रवाह में मत्स्य तथा बुलबुलों के अनन्त समूहों की भाँति घूमते रहते हैं। क्रीड़ा में लगे बालक की हथेली में आँवलों के समूह की भाँति महाविष्णु की हथेली में अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड शोभित हो रहे हैं। जल यन्त्र (रहँट) में लगे घड़ों की माला के समूह की भाँति महाविष्णु के एक-एक रोम कूप के छिद्रों में अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड अपने आवरणों के साथ घूमते रहते हैं और उन ब्रह्माडों में—

मूल चौ०—अंडकोस प्रति प्रति निज रूपा। देखेउँ जिनस अनेक अनूपा॥
प्रति ब्रह्मांड राम अवतारा। देखउँ बाल बिनोद अपारा॥९१॥

अर्थ प्रत्येक ब्रह्माण्ड-ब्रह्माण्ड में मैंने अपना रूप देखा, तथा अनेक अनुपम वस्तुएँ देखी। मैं प्रत्येक ब्रह्माण्ड में रामावतार और उनकी अपार बाल लीलाएँ देखता फिरा ॥९१

प्रश्न—श्री गुरुदेव ? 'अंडकोस प्रति प्रति निजरूपा।' से—बाल बिनोद अपारा' इस ९१वीं चौपाई का क्या रहस्य है ?

उत्तर—श्रुति—स चानन्त महामाया विलासानामधिष्ठान विशेष—
निरतशयाद्वैत परमानन्द लक्षण परब्रह्म विलास विग्र हो भवति।
अस्यैकैकरोमकूपान्तरेष्वनन्त कोटि ब्रह्माण्डानि स्थावराणि
च जायन्ते। तेष्वण्डेषु सर्वेष्वेकैक नारायणावतारो जायते-
नारायणाद्धिरण्यगर्भो जायते। (त्रिपाद्विभूति महानारायणा० उ० २)

श्रुत्यर्थ—वह महामाया के अनन्त विलासों का अधिष्ठान विशेष एवं निरतिराय अद्वैत परमानन्द स्वरूप परब्रह्म का विलास विग्रह है। इस (विराट् पुरुष) के एक-एक रोमकूप-छिद्रों में अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड और (अनेक) स्थावर भी उत्पन्न होते हैं। उन सब अण्डों में से प्रत्येक में नारायण राम का एक-एक अवतार होता है। उन्हीं नारायण राम से हिरण्य-गर्भ (ब्रह्मा) उत्पन्न होते हैं। उन्हीं ब्रह्मा से अनन्त सृष्टि देखी। और

मू.चौ०-करउँ बिचार बहोरिबहोरी। मोह कलिल व्यापित मति मोरी॥
उभय घरी महँ मैं सब देखा। भयउँ भ्रमित मन मोह बिसेषा ॥९२॥

अर्थ—मैं बार-बार विचार करता था। मेरी बुद्धि मोहरूपी कीचड़ से व्याप्त थी। यह सब मैंने दो ही घड़ी में देखा। मन में विशेष मोह होने से मैं थक गया ॥९२॥

प्रश्न—हे स्वामिन् ? करउँ विचार वहोरि वहोरी। मोह कलिल व्यापित मति मोरी।' कहने का क्या भाव है ?

उत्तर—हे सुव्रत ? भाव है कि प्रभु के पेट में माया चरित में भी जब रामावतार होने पर जन्म महोत्सव देखने गया, तब भी वैसे ही चरित देखे, बराबर विचार करने पर भी बोध न होता था कि यह क्या खेल है, मोह (अज्ञान) होने से निश्चय नहीं कर पाता था, क्योंकि मेरी बुद्धि मोह रूपी कीचड़ व अज्ञान रूपी आवरण से आवृत थी।

प्रश्न—हे भगवन् ? 'उभय घरी महँ मैं सब देखा। भयउ भ्रमित मन मोह विसेषा।।' कहने का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—हे प्रिय दर्शन ? उभय घरी'=दो घड़ी अर्थात् एक मुहूर्त कहने का तात्पर्य है कि यह सब द्वैत ही में देखा (दो घड़ी के समय में अनन्त काल) यह सब माया का ही खेल है। जैसे व्यवहारिक थोड़े से समय में ही प्रातिभासिक अनन्त देश व काल दीख जाता है, वैसे ही यहाँ भी जान लें। अर्थात् व्यवहारिक 'जाग्रत अवस्था' और प्रातिभासिक स्वप्नावस्था—जैसे व्यावहारिक २, ४ मिनट में स्वप्न की सैकड़ों वर्ष देख पडते हैं, अतः यह संसार स्वप्न ही है, यदि दो घड़ी में १०१ कल्प बीत गये तो आश्चर्य क्या। यह सब

स्वप्न का ही तो खेल है। स्वप्न में अति भयभीत होने पर आँख खुल जाती हैं, उसी प्रकार अधिक मोह से थक जाने पर जो हुआ सो कहते हैं। यथा –

मूल दो०—देखि कृपाल बिकल मोहि, बिहँसे तब रघुबीर।
बिहँसत ही मुख बाहेर, आयउँ सुनु मतिधीर ।।७।८२ (क)

अर्थ—व्याकुल देखकर तब कृपालु श्रीरघुनाथजी हँस दिये। हे धीर बुद्धि गरुड़जी ? सुनिये, उनके हँसते ही मैं मुह से बाहर आ गया ।।७।८२ (क)

प्रश्न—हे प्रभो ? 'देखि कृपाल विकल मोहि' कहने का क्या अभिप्राय है ?

उत्तर - हे प्रियवत्स ? व्याकुल देख कर कृपाकी, तथा हँसना भी कृपा है, क्योंकि हँसने पर मुँह खुला और श्वास द्वारा ये बाहर आ गये। 'मतिधीर' अर्थात् आश्चर्य की बात सुनने से आपकी मति न भ्रमी। अतः आप मति न भ्रमी। अतः आप मतिधीर हैं। तदन्तर श्रीराम बचनामृत—

मूल चौ०—सुन विहंग प्रसाद अब मोरें। सब सुभ गुन बसिहहिं उर तोरे।।
जानब तैं सब ही कर भेदा। मम प्रसाद नहिं साधन खेदा ।।९३।।

मूल दो०—माया संभव भ्रम सब, अब न व्यापिहहि तोहि।
जानेसु ब्रह्म अनादि अज, अगुन गुनाकर मोहि ।।७।८५ (क)

अर्थ—हे पक्षी ? सुन, मेरी कृपा से अब समस्त शुभ गुण तेरे हृदय में बसेंगे। तू सब शुभ गुणों का भेद मेरी कृपा से व प्रसन्नता से जान जायगा. तुझे साधन (करके जानने) का कष्ट न होगा अर्थात् ये सब सहज ही प्राप्त हो जायेंगे ।।९३।। और माया से उत्पन्न सब भ्रम अब तुझे न व्यापेंगे। मुझे अनादि, अजन्मा, अगुण (प्रकृति के गुणों से रहित) और (गुणातीत दिव्य) गुणों की खान ब्रह्म जानना ।।७.८५ (क)।।

प्रश्न - श्री गुरुदेव ? 'सुनि विहंग प्रसाद अब मोरे। सब सुभ गुन वसिहहिं उर तोरे ।।' कथन का क्या रहस्य है ?

उत्तर-- हे सौम्य ? भक्ति का वरदान देते ही श्री राघवेन्द्र सरकार ने कृपा की, और ज्ञान भक्ति के हो जाने पर ऐसा कोई सद्‌गुण या ऐसा सुख है ही नहीं जिसकी प्राप्ति न हो। 'जानव तैं सव ही कर भेदा। मम प्रसाद नहि साधन खेदा ।।' अर्थात् बिना साधन के ही मेरी प्रसाद (कृपा) से शुभ गुणों का द्रष्टा हो जायगा।

प्रश्न—हे स्वामिन् ? 'माया संभव भ्रम सव, से···अगुन गुनाकर मोहि ।।' इस पूरे दोहे का क्या भाव है ?

उत्तर—हे सुव्रत ? सब भ्रम अर्थात्-स्वस्वरूप में भ्रम, परस्वरूप में भ्रम, प्रकृति में भ्रम, श्रीराम में भ्रम, ऐश्वर्य चरित्र व माधुर्य चरित्र में भ्रम होना इत्यादि सब भ्रम द्वैत और माया से भासते हैं। अब न व्यापिहहिं तोहि।' अर्थात्-पूर्व तुमको व्यापे थे, यथा—

भ्रमते चकित राम मोहि देखा ।७।७९।२।। अब आज से आगे न व्यापेंगे-यथा—तव ते मोहि न व्यापी माया । जबसे रघुनायक अपनाया ।।७।८९।२।। क्योंकि प्रभु की इस आज्ञा-(जाने सुब्रह्म अनादि अज, अगुन गुनाकर मोहि ।।) अर्थात्-श्रीरामजी ने कहा-अनादि,अजन्मा,निर्गुण (दिव्य) गुणों की खान ब्रह्म 'मोहि जान' अर्थात्-मेरे को ऐसा जान । अथवा 'जानेसु' (स्व) अपने को 'जान' अर्थात् ऐसा ही अपने को जान (जानेगा) तो तेरे को माया से उत्पन्न भ्रम नहीं व्यापेंगे) का पालन किया । ऐसा ही श्रुति संकेत करती है । यथा—

श्रुति—दृशिस्वरूपं गगनोपमं परं सकृद्विभातं त्वजमेकमक्षरम् ।
अलेपकं सर्वगत यदद्वयं तदेव चाहं सकलं विमुक्त ॐ ।। (मुक्ति० उ०२।७३)

श्रुत्यर्थ—'हनुमान्) ? जो साक्षिस्वरूप है, आकाश के समान अनन्त है, जिसे एक बार जान लेने पर कुछ भी जानना शेष नहीं रहता, जो अजन्मा, एक, अद्वितीय, निर्लेप, सर्वव्यापी, एवं सर्वश्रेष्ठ है, जो अकार, उकार, मकार रूप तीन कलाओं से युक्त तथा सम्पूर्ण कलाओं से विमुक्त अद्वय तत्त्व है, वह ओंकाररूप अक्षर-अविनाशी ब्रह्म मैं ही हूं । इस प्रकार का तुम चिन्तन करो फिर माया जनत भ्रम न व्यापेगा ।।

।। इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुष विध्वंसने ।।

* उत्तर काण्डान्तर्गते षष्ठः सोपानः समाप्तः *

अथ सप्तम सोपान-उत्तरकाण्ड

मूल चौ०—लागे करन ब्रह्म उपदेसा । अज अद्वैत अगुन हृदयेसा ।।
अकल अनीह अनाम अरूपा । अनुभव गम्य अखंड अनूपा ।।९४।।

अर्थ—(हे गरुड़जी तब मुनिराज), ब्रह्मका उपदेश करने लगे कि वह अजन्मा है, अद्वैत है, निर्गुण है, और हृदय का स्वामी (अन्तर्यामी) है । उसे कोई बुद्धि के द्वारा माप नहीं सकता, वह इच्छा रहित, नाम रहित, रूप रहित, अनुभव से जानने योग्य, अखण्ड और उपमा रहित है ।।९४।।

मूल चौ०—मन गोतीत अमल अविनासी । निर्बिकार निरबधि सुखरासी ।।
सो तैं ताहि तोहि नहिं भेदा । बारि बीचि इव गावहिं वेदा ।।९५।।

अर्थ—वह मन और इन्द्रियों से परे, निर्मल, विनाशरहित, निर्विकार, सीमारहित और सुख की राशि है । वेद ऐसा गाते हैं कि वही तू है (तत्त्वामसि) जल और जलकी लहर की भाँति उसमें और तुझमें कोई भेद नहीं है ।।९५।।

प्रश्न - हे भगवन् ? लागे करन ब्रह्म उपदेसा ।' से "अखंड अनूपा ।' इस ९४ वीं चौपाई में क्या भाव प्रदर्शित किये हैं ?

उत्तर - हे प्रिय दर्शन ? श्रुति इसको इस प्रकार कहती है । यथा—

श्रुति–एकमेवाद्वितीयं सन्नामरूप विर्वजिमम् । (शुकरहस्य० उ० ३।५)

श्रुत्यर्थ - एकमात्र द्वैत की सत्ता से रहित अद्वैत, नाम और रूप रहित (ब्रह्मराम) हैं ॥

प्रश्न–हे प्रभो ? 'मन गोतीत अमल अविनासी । सं···गावहि वेदा ॥' इस ९५वीं चौपाई का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—श्रुति–साक्षिणं बुद्धिवृत्तस्य परमप्रेमगोचरम् ॥८॥
अगोचरं मनोवाचामवधूतादि संप्लवम् ।
सत्तामात्रप्रकाशैकप्रकाशं भावनातिगम् ॥ (मैत्रेयण्य० उ० १।८,९)

भावार्थ – जो बुद्धि वृत्तियों का साक्षी, परम प्रेम से देखने योग्य है, मन, वाणी का अविषय, निष्पापादि वृत्तियों से युक्त, सत्तामात्र, प्रकाशकका प्रकाशक भावना से प्राप्त होने वाला । 'सो तैं ताहि तोहि नहिं भेदा ।' अर्थात् श्री आदि नारायण वचनामृत से सिद्ध है । यथा —

श्रुति–त्वंब्रह्मासि अहं ब्रह्मास्मि आवयोरन्तरं न विद्यते ।
त्व मेवाहम् अहमेव त्वम् इत्यभिप्रायेत्युक्त्वादिनारायण-
स्तिरोद्धे तदेत्युपनिषत् (त्रिपाद्विभूति महानारायण० उ० ६)

श्रुत्यर्थ—तुम ब्रह्म हो । मैं ब्रह्म हूं । हम दोनों में अन्तर नहीं है । तुम्हीं मैं (मेरे स्वरूप) हो । मैं ही तुम तुम्हारा स्वरूप हूँ । यों उच्चारण (दीक्षा देकर) यों कहकर (उसको तत्त्व प्रत्यक्ष कराके) उस समय आदि नारायणजी अन्तर्हित हो जाते हैं ।

श्रुति–तत्त्वमसि त्वंतदसि त्वंब्रह्मास्यहं ब्रह्मास्मीति ॥ (पैङ्ग० उ० ३।१)

श्रुत्यर्थ–वह तू है,तू वही है, तू ब्रह्म है, मैं ब्रह्म हूँ ॥ 'बारि बीचि इव गावहि वेदा' अर्थात् श्रुति इस प्रकार कहती है । यथा—

श्रुति–मय्यखण्ड सुखाम्भोधौ बहुधा विश्ववीचयः ॥
उत्पद्यन्ते विलीयन्ते मायामारुत विभ्रमात् ॥ (कुंण्डिक० उ० १४)

श्रुत्यर्थ – मुझ अखण्ड सुख सागर में बहुत प्रकार की विश्वरूप लहरें माया रूप वायु के झकोरे से पैदा होती है और विलीन हो जाती है । परन्तु

मूल दो०–यह रहस्य रघुनाथ कर, बेगि न जानइ कोइ ।
जो जानइ रघुपति कृपाँ, सपनेहुं मोह न होइ ॥७।११६ (क)

अर्थ – श्रीरघुनाथजीका यह रहस्य (गुप्त मर्म) जल्दी कोई भी नहीं जान पाता । श्रीरघुनाथजी की कृपा से जो इसे जान जाता है, उसे स्वप्न में भी मोह नहीं होता है ।

प्रश्न—श्री गुरुदेव ? 'यह रहस्य रघुनाथ कर, बेगि न जानइ कोइ।' कथन का क्या भाव है ?

उत्तर—हे सौम्य ? भाव है कि ज्ञान और भक्ति श्रीरघुनाथजी के रहस्य हैं, 'अयमात्मा ब्रह्म' यह ज्ञान रहस्य है, और किशोरमूर्ति परब्रह्म में प्रेमभक्ति रहस्य है।

श्रुति–इदं रहस्यं परममीश्वरेणापि दुर्गमम्। (श्रीरामपूता० उ० ६।१४)

श्रुत्यर्थ—यह (श्रीरामजी का) अत्यन्त गोपनीय रहस्य है, बिना उपदेश के किसी परम सामर्थ्यशाली पुरुष के लिये भी दुर्गम है।

श्रुति—सगुणं ध्यानमेतत्स्यादणिमादिगुणप्रदम्।
निर्गुण ध्यानयुक्तस्य समाधिश्च ततोभवेत्॥ (योग० त०उ० १०५)

श्रुत्यर्थ सगुण ध्यान अणिमादिक गुणों का देने वाला होता है और निर्गुण ध्यान युक्त पुरुष की समाधि होती है, अर्थात् एकत्त्व को प्राप्त हो जाता है।

प्रश्न—हे स्वामिन् ? 'जो जानइ' कहने का क्या रहस्य है ?

उत्तर—हे सुव्रत ? श्रीरामजी से भुशुण्डिजी से कहा था 'जानेसु ब्रह्म अनादि अज, अगुन गुनाकर मोहि।' इसी से भुशुण्डिजी कह रहे हैं कि जो श्रीरामजी के कहे अनुसार श्रीरामजी को 'जानइ' जान जाता है, तो उस पर श्रीरघुनाथ जी कृपा करते हैं। और श्रीरघुनाथजी कृपा करते हैं अपने प्यारे पर, श्रीरघुनाथजी को प्यारे हैं। चौ० चहू चतुर कहुँ नाम अधारा। ग्यानी प्रभुहि विसेषि पिआरा॥१।२२।४॥ अर्थात्-ज्ञानी प्रभु को प्यारा ही नहीं किन्तु विशेष प्यारा है। इससे सुतरां सिद्ध हो जाता है कि भगवान् ज्ञानी पर कृपा करते हैं। ऐसा ही भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी भी कहते हैं। हे अर्जुन ? अर्थार्थी, आर्त, जिज्ञासु और ज्ञानी ऐसे चार प्रकार के भक्तजन मेरे को भजते हैं। अतः

तेषां ज्ञानीनित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते।
प्रियो हि ज्ञानीनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः॥ (गीता ७।१७)

उनमें भी नित्य मेरे में एकीभाव से स्थित हुआ अनन्य प्रेम भक्ति वाला ज्ञानी भक्त अति उत्तम है, क्योकि मेरे को तत्त्व से जानने वाले ज्ञानी को मैं अत्यन्त प्रिय हूं और वह ज्ञानी मेरे को अत्यन्त प्रिय है।

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम्॥ (गीता ७।१८)

(यद्यपि) यह सब ही उदार हैं अर्थात् श्रद्धा सहित मेरे भजन के लिये समय लगाने वाले होने से उत्तम हैं, परन्तु ज्ञानी तो साक्षात् मेरा स्वरूप ही है, ऐसा मेरा मत है, क्योंकि वह स्थित बुद्धि (ज्ञानी भक्त) अति उत्तमगतिस्वरूप मेरे में ही अच्छी प्रकार स्थित है। अर्थात्—भेद बुद्धि रहित है एकत्व को प्राप्त है। श्रुति भी ऐसा ही कहती है। यथा —

श्रुति—समस्तं खल्विदं ब्रह्म सर्वमात्मेदमाततम्।
अहमन्य इदं चान्यदिति भ्रान्ति त्यजानघ॥ (महo उ० ६।१२)

श्रुत्यर्थ—यह सब कुछ निश्चय पूर्वक ब्रह्म ही है, यह सब आत्मा ही व्याप्त हो रहा है। हे निष्पाप ? मैं और हूँ, यह और है, इस प्रकार की भ्रान्ति को छोड़ दो।

श्रुति—सदा रामोऽहमस्मीति तत्त्वतः प्रवदन्ति ये।
न ते संसारिणो नूनं राम एव न संशयः।। (रामरहस्य० उ० ४।१७)
(श्रीरामोत्तर ता० उ० ४।१)

श्रुत्यर्थ—जो पुरुष सदा यथार्थ रूप से समझकर मैं 'राम हूं' यों कहते हैं, वे संसारी नहीं हैं। निश्चय ही वे श्रीराम के स्वरूप हैं, इनमें तनिक भी संदेह नहीं है। 'सपनेहु मोह न होइ' अर्थात् जो अपने को श्रीराम से अभिन्न जान जाता है उसे स्वप्न में व कदाचित् भी मोह (अज्ञान) नहीं होता। यथा—

श्रुति—सर्वदाद्वैतरहित आनन्दरूपः सर्वाधिष्ठानः सन्मात्रो-
निरस्तराविद्यातमोमोहोऽहमेवेतिसम्भाव्याहमिति ।। (श्रीरामोत्तर ता०उ० ४।१)

श्रुत्यर्थ—वह श्रीरामजी ? सर्वदा अद्वैत हैं, उनमें द्वैत का सर्वथा अभाव है। वे आनन्द मूर्ति हैं। सबके अधिष्ठान हैं। सत्तामात्र उनका स्वरूप है। अविद्या जनित अन्धकार और मोह उनमें स्वभावत नहीं है। अथवा उनकी शरण में जाते ही अविद्यामय अन्धकार और मोह का सर्वथा नाश हो जाता है। ऐसे जो अनिर्वचनीय परमात्मा श्रीराम हैं 'वह मैं ही हूं' इस प्रकार चिन्तन करे। तो स्वप्न में भी मोह न होगा।

मूल चौ०—सुनहु तात यह अकथ कहानी। समुझत बनइ न जाइ बखानी।।
ईश्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी।।९६।।

अर्थ—हे तात ? यह अकथनीय कहानी (वार्ता) सुनिये। यह समझते ही बनती है, कही नहीं जा सकती। जीव ईश्वर का अंश है, अतएव वह अविनाशी, चेतन, निर्मल और स्वभाव से ही सुख की राशि है।।९६।।

प्रश्न—हे भगवन् ? 'सुनहु तात यह अकथ कहानी।' कहने का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—हे प्रिय दर्शन ? श्रीरामजी का तात्पर्य बताने के लिये 'सुनहु' से सम्बोधन किया। और 'तात' से शिष्य पर प्रेम दरशाया। 'यह अकथ' से अद्वितीयता जनाई। तथा 'कहानी' से 'अजातवाद' सूचित किया, हम जो कुछ कहेंगे यह कहानी है। कहानी 'सत्य नहीं होती' अतः यह भी परमार्थिक सत्य नहीं है। सत्य तो एकमात्र केवल ब्रह्म-आत्मा ही है। जिस प्रकार शशक के कभी शृंग नहीं हुए, आकाश में कुसुम नहीं हुए, बन्ध्या के पुत्र नहीं हुआ, उसी प्रकार यह सब कुछ भी कभी हुआ ही नहीं, है ही नहीं, आगे होगा ही नहीं, फिर किसका बन्ध और किसका मोक्ष ? जो दिखाई पड़ता है सो सब भ्रम है। ब्रह्म में अंश-अंशी भेद न हुआ, न है, और न हो ही सकता है। माया और उसके प्रपंच का उसमें स्पर्श भी नहीं है। यथा—

चौ० राम सच्चिदानंद दिनेसा। नहिं तहँ मोह निसा लवलेसा।।१।११६।३।।
यत्र हरि तत्र नहि भेद माया। (विनय ४७।५)

अतएव इस मिथ्या कथा को 'कहानी' कहा। परन्तु इस कहानी सुनाने वाले को सिद्धान्त ज्ञान होता है, क्योंकि कहानी की समाप्ति पर कहेंगे। यथा—

चौ० कहेउँ ग्यान सिद्धान्त बुझाई।७।१२०।१।। अतः साधन चतुष्टय से ममता-मलके नष्ट होने पर ही इस कहानी के कहने का भी विधान है, यह कहानी यदि 'ममतारत' से कही जायेगी तो ऊसर में बीज बोने की भाँति व्यर्थ होगी, चौ० ममतारत सन ग्यान कहानी। ऊसर बीज बए फल जथा ।।५।५८।२।। 'समझत बनइ न जाइ बखानी' अर्थात्—यह अनुभवगम्य है यहाँ वाणी की पहुंच नहीं। यथा—श्रुति—यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मन सा सह। (तैत्तिरीय० उ० २।४) अर्थात्—जहाँ से मन के सहित वाणी आदि इन्द्रियाँ उसे न पाकर लौट आती हैं। अथवा समझते नहीं बनता, का तात्पर्य है कि निर्गुण ब्रह्म और गुणमयी माया के संयोग-वियोग का इसमें वर्णन है। निर्गुन ब्रह्म ज्ञेय नहीं, वह तो अपनी आत्मा ही है, अपने आप को किससे जाने। और माया भी जानी नहीं जाती, क्योंकि माया कहते ही उसे हैं, 'जो हो ना' और भासे। यथा —

चौ० जो माया सब जगहि नचावा। जासु चरित लखि काहु न पावा ।।७।७२।१।।
और ब्रह्म में संयोग-वियोग बनता नहीं, चौ० सपनेहु योग वियाग न जाकें ।।१।४६।४।।
इससे समुझत नहीं बनता। 'जाइ बखानी' उसको कहने के लिये उपर्युक्त शब्द ही नहीं मिलते। यथा —

केशव ? कहि न जाइ का कहिय।
देखत तव रचना बिचित्र हरि ? समुझि मनहिं मन रहिये ।।१।।
सून्य भीतिपर चित्र, रंग नहिं, तनु विनु लिखा चितेरे।
धोये मिटइ न मरइ भीति, दुख पाइअ एहि तनु हेरे ।।२।।
रविकर-नीर बसै अति दारुन मकर रूप तेहि माहीं।
वदन-हीन सो ग्रसै चराचर, पान करन जे नाहीं ।।३।।
कोउ कह सत्य-झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल कोउ मानै।
तुलसिदास परि हरै तीन भ्रम, सो आपन पहिचानै ।।४।। (वि०१११)

भावार्थ — हे केशव ? क्या कहूँ ? कुछ कहा नहीं जाता। हे हरे ? आपकी यह विचित्र रचना देखकर मन-ही-मन (आपकी लीला) समझकर रह जाता हूँ ।।१।। कैसी अद्भुत लीला है कि इस (संसार रूपी) चित्र को निराकार (अव्यक्त) चित्रकार (सृष्टि करता परमात्मा) ने शून्य (माया) दीवार पर बिना ही रंग संकल्प से ही) बना दिया : साधारण चित्र तो धोने से मिट जाते हैं, परन्तु) यह (महामायावी रचित-माया-चित्र) किसी प्रकार धोने से, नहीं मिटता। (साधारण चित्र जड़ है, उसे मृत्यु का भय नहीं लगता परन्तु) इसको मरण

का भय बना हुआ है (साधारण चित्र देखने से सुख मिलता है, परन्तु) इस संसार रूपी भयानक चित्र की ओर देखने से दुख होता है ।।२।। सूर्य की किरणों में (भ्रम से) जो जल दिखाई देता है उस जल में एक भयानक मगर रहता है; उस मगर के मुँह नहीं है, तो भी वहाँ जो भी जल पीने जाता है, चाहे वह जड़ हो या चेतन, यह मगर उसे ग्रस लेता है। भाव यह है कि संसार सूर्य की किरणों में जल के समान भ्रम जनित है। जैसे सूर्य की किरणों में जल समझकर उनके पीछे दोड़ने वाला मृग जल न पाकर प्यासा ही मर जाता है, उसी प्रकार इस भ्रमात्मक संसार में सुख समझकर उसके पीछे दौड़ने वालों को भी बिना मुख का मगर अर्थात् निराकार काल खा जाता है ।।३।। इस संसार को कोई सत्य कहता है, कोई मिथ्या बतलाता है और कोई सत्य-मिथ्या से मिला हुआ मानता है, तुलसीदास के मत से तो (ये तीनों ही भ्रम हैं) जो इन तीनों भ्रमों से निवृत्त हो जाता है (अर्थात् सब कुछ ब्रह्म-आत्मा ही है, वही अपने असली स्वरूप को पहचान सकता है ।।४।। ऐसा अनुभव-वेदान्त के वाक्यों को श्रीसद्गुरु मुख के द्वारा श्रवण करते-करते हो जाता है। परन्तु है आश्चर्य ही। यथा—

श्रुति—श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः शृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्युः।
आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धाश्चर्यो ज्ञाता कुशलानु शिष्टः ।।
(कठ० उ० १।२।७)

श्रुत्यर्थ—जो (आत्म तत्त्व) बहुतों को तो सुनने के लिये भी नहीं मिलता, जिसको बहुत से लोग सुनकर भी नहीं समझ सकते, ऐसे इस गूढ़ आत्म तत्त्व का वर्णन करने वाला महापुरुष आश्चर्यमय है (बड़ा दुर्लभ है) उसे प्राप्त करने वाला भी बड़ा कुशल (सफल जीवन) कोई एक ही होता है, और जिसे तत्त्व की उपलब्धि हो गई है, ऐसे ज्ञानी महापुरुष के द्वारा शिक्षा प्राप्त किया हुआ आत्मतत्त्व का ज्ञाता भी आश्चर्यमय (परम दुर्लभ है) अथवा—आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित् ।। (गीता २।२९)

(हे अर्जुन यह आत्तत्त्व बड़ा गहन है, इसलिये) कोई महापुरुष ही इस आत्मा को आश्चर्य की ज्यों देखता है और वैसे ही दूसरा कोई महापुरुष ही आश्चर्य की ज्यों इसके तत्त्व को कहता है और दूसरा कोई ही इस आत्मा को आश्चर्य की ज्यों सुनता है और कोई-कोई सुनकर भी इस आत्मा को नहीं जानता ।।

प्रश्न—प्रभो ? 'ईश्वर अंस जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी ।।' कहने का क्या अभिप्राय है ?

उत्तर—हे प्रियवत्स ? 'ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः। (गीता १५।७)
(हे अर्जुन) इस देह में यह जीवात्मा मेरा ही सनातन अंश है।
ईश्वर = माया सम्बन्धतश्चेशः' इति श्रुति मायाविशिष्ट ब्रह्म को ईश्वर कहते हैं।
जीव = जीवोऽविद्यावशस्तथा' इति श्रुति—अविद्याविशिष्ट ब्रह्म को जीव कहते हैं।

श्रुति–निष्कलं निर्मलं शान्तं सर्वातीतं निरामयम् ।
तदेव जीवरूपेण पुण्यपापफलैर्वृतम् ॥ (यो० त० उ० ८)

श्रुत्यर्थ—जो कलारहित, मलरहित, शान्त, सबसे अतीत, निरामय (रोग रहित) वही जीव रूप से पुण्य-पाप के फल से घिरा हुआ है ।

अथवा–इस अर्धाली में 'ईश्वर अंश' कहकर जीव की चारों अवस्थाओं का बड़ी चतुरता से वर्णन किया गया है । जीव की चार अवस्था–जैसे जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति और तुरीय हैं । जिनमें से 'चेतन' से जाग्रत अवस्था कही, क्योंकि जाग्रत् में यह चेतन स्वरूप होता है । यथा—

श्रुति–आत्मैवास्य ज्योतिर्भवतीत्यात्मनैवायं
ज्योतिषास्ते पल्यपते कर्म कुरुते । (बृहदा० उ० ४।३ ६)

श्रुत्यर्थ—आत्मा ही इसकी ज्योति होता है । यह आत्मा के द्वारा ही बैठता है, इधर उधर जाता है कर्म करता है । और

'अमल' से स्वप्न अवस्था कही, स्वप्न में यह 'निर्मल' स्वयं ज्योति होता है ।

श्रुति–स्वयं निर्माय स्वेन भासा स्वेन ज्योतिषा ।
प्रस्वपित्यत्रायं पुरुषः स्वयं ज्योतिर्भवति । (बृहदा० उ० ४।३।६)

श्रुत्यर्थ –स्वयं ही अपने वासनामय देह को रचकर, अपने प्रकाश से अर्थात् अपने ज्योतिः स्वरूप से शयन करता है; इस स्वप्नावस्था में यह पुरुष स्वयं ज्योति रूप अमल होता होता है । और 'सहज सुखरासी' से सुषुप्तावस्था कही क्योंकि सुषुप्ति में बिना प्रयास ही सुख भोक्ता होता है । यथा—

श्रुति— निरुपाधिकनित्यं यत्सुप्तौ सर्वसुखात्परम् (वराह० उ० ३।१०)

श्रुत्यर्थ – सब सुखों से श्रेष्ठ जो सुषुप्ति सुख है, वह उपाधि रहित और नित्य सुख है। अथवा–माण्डूक्योपनिषद् में आया है 'स्थूल भुग्वैश्वानरः ! इति श्रुतेः अर्थात् जो इस स्थूल जगत् का भोक्ता–इसको अनुभव करने वाला तथा जानने वाला वह वैश्वरानर (विश्व को धारण करने वाला जाग्रत स्थानीय) 'चेतन' है ।

'प्रविविक्तभुक्तैजसः' इति श्रुतेः अर्थात् सुक्ष्म जगत् का भोक्ता तैजस प्रकाश का प्रकाश का स्वामी स्पप्न स्थानीय 'अमल' है ।

सुषुप्त स्थान एकीभूत प्रज्ञानघन एवानन्दमयो ह्यानन्दभुक्चेतोभुखः इति श्रुतेः अर्थात् जगत् की प्रलय अवस्था, अथवा कारण अवस्था ही जिसका शरीर है, जो एक रूप हो रहा है, जो एकमात्र घनीभूत विज्ञान स्वरूप है, जो एकमात्र आनन्द का ही भोक्ता है, यही सुषुप्त अवस्था 'सहज सुखरासी है ।' और तुरीय ही 'अविनासी' अवस्था है । यथा श्रुति प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः । इति श्रुतेः—अर्थात्–जिसमें प्रपंच का सर्वथा अभाव है, ऐसा सर्वथा शान्त कल्याणमय अद्वितीय

तत्त्व (जीवात्मा का। चौथा, पाद–तुरीय स्थान है, इस प्रकार (ब्रह्मज्ञानी) मानते हैं; वह आत्मा-परमात्मा है, वह जानने योग्य है, वह चतुर्थावस्था तुरीय ही 'अविनासी' है। इस प्रकार श्रुतियों से प्रतिपादित इस अर्धाली में जीव की चारों अवस्था कही गई हैं। यह चारों अवस्था-व्यष्टि व समष्टि दोनों में गृहण की जाती हैं। वही जीव—

मूल चौ०—सो मायाबस भयउ गोसाईं। बँध्यो कीर मरकट की नाईं॥
जड़ चेतनहि ग्रंथि परि गई। जदपि मृषा छूटत कठिनाई॥९७॥

अर्थ—हे गोसाईं? वह माया के वशीभूत होकर तोते और वानर की भाँति अपने आप ही बंध गया। इस प्रकार जड़ और चेतन में ग्रन्थि (गाँठ) पड़ गयी। यद्यपि वह ग्रन्थि मिथ्या ही है, तथापि उसके छूटने में कठिनता है॥९७॥

प्रश्न—श्री गुरुदेव? 'सो माया वस भयउ गोसाईं।' कथन का क्या रहस्य है?

उत्तर—हे सौम्य? 'सो' अर्थात् जो ईश्वर का अंश है, अविनाशी, चेतन, अमल और सहज सुखराशी है वही जीव 'माया वस भयउ' यथा—

सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसंभवाः।
निवध्नन्ति महावाहो देहे देहिनमव्ययम्॥ (गीता १४।५)

हे अर्जुन? सत्त्वगुण रजोगुण और तमोगुण ऐसे यह प्रकृति से उत्पन्न हुए तीनों गुण गुण, इस अविनाशी जीवात्मा को शरीर में बांधते हैं।

'बँध्यो कीर मरकट की नाईं॥' अर्थात्–जीव का बन्धन श्रुतियाँ बताती है। यथा

श्रुति—एवं जोवो हि संकल्पवासनारज्जु वेष्ठितः।
दुःखजालपरीतात्मा क्रमादायाति नीचताम्॥१२७॥
इति शक्तिमयं चेतो घनाहङ्कारतां गतम्।
कोशकारक्रमिरिव स्वच्छया याति वन्धनम्॥१२८॥
स्वयं कल्पिततन्मात्राजालाभ्यन्तरवर्ति च।
परां विवशतामेति शृङ्खलावद्धसिंहवत्॥१२९॥ (मह० उ० ५।१२७ से १२९)

श्रुत्यर्थ—यह जीव संकल्प और वासना की रज्जुओं से बँधकर दुःख जाल में फँसा हुआ क्रमशः अधोगति को प्राप्त होता है। इस तरह शक्तिमय चित् घने अहंकार को प्राप्त होकर रेशम बनाने वाले कीड़े के समान स्वेच्छा से बन्धन में पड़ता है। अपने ही द्वारा कल्पित तन्मात्रा रूपी जाल के भीतर रहकर, श्रृङ्खला में बँधे हुए सिंह के समान, चित् शक्ति अत्यन्त विवशता को प्राप्त हो जाती है।

प्रश्न—हे स्वामिन्? इस अर्धाली में दो बातें कही गईं, एक तो वश होना, दूसरे बँधना इनका क्या भाव है?

उत्तर हे सुव्रत? मन से वश हुआ और तन से बंधा।

अथवा–'कोर' (सुग्गा) वत् वश होना और 'मरकट' वत् बँधा जनाया।

अथवा—'कीर' (सुग्गा) पैरों से बंधता है और बन्दर हाथों से, दोनों ही लोभवश अज्ञान से बंधते हैं। एक विषय भोग (अन्न) की प्राप्ति के लोभ से अज्ञान से पैरों से बंध गया, दूसरा विषय भोग (अन्न) की प्राप्ति होने पर त्याग न सकने के लोभ से अज्ञानवश हाथों से बँध जाता है, इनको किसी ने बाँधा नहीं है, अपने ही अज्ञान से स्वयं ही बँधे हुए हैं। इसी प्रकार जीव लोभवश ज्ञान न होने के कारण हाथों से अनुचित द्रव्य ग्रहण करता है, जैसे चोर बाजारी, विलेख, रिश्वत खोरी, चोरी, ठगी इत्यादि से धन एकत्र कर उसे अशुभ कार्यों में व्यय करता है, जैसे शराब, सुलफा, गाँजा, अफीम जुआ, वेश्या गमन, माँस खोरी इत्यादि, इन हाथों के अशुभ कार्यों से बंध जाता है। ऐसे ही पैरों से अशुभ गमन—जैसे वेश्या के यहाँ जाना, नशेबाजों की मंडली में जाना, स्वाँग-तमासे, सिनेमा में जाना, लड़ाई झगड़े में जाना इत्यादि पैरों द्वारा बंध जाता है।

प्रश्न—हे भगवन्? 'जड़ चेतनहिं ग्रंथि परि गई। जदपि मृषा छूटत कठिनई। कहने का क्या तात्पर्य है?

उत्तर—हे प्रिय दर्शन? चेतन आत्मा और जड़ माया इन दोनों का आपस में अन्योन्याध्यास होने से जड़-चेतन में ग्रन्थिका-आभास होता है। यही ग्रन्थि है, भ्रांतिमात्र होने से मिथ्या है, परन्तु विना आत्मबोध के छूटना कठिन है। अथवा-अपने स्वरूप की विस्मृति अर्थात् अपने सहज स्वरूप का भूलना ही बन्ध है और आत्मा का साक्षात्कार ही मोक्ष है, यह अविद्या के कारण ही है, वास्तविक तो न बन्ध है न मोक्ष। 'जो है सो है।'

श्रुति-देहोऽहमिति सकल्पो हृदयग्रन्थिरीरितः।। (तेजोविन्दु० उ० ५।९२) अर्थात्—मैं देह हूं ऐसा संकल्प ही हृदय ग्रन्थि कही जाती है। सो यह मृषा है, परन्तु छूटने में बड़ी कठिनाई है क्योंकि—

मूल चौ०—तब ते जीव भयउ संसारी। छूट न ग्रंथि न होइ सुखारी।।
जीव हृदयं तम मोह बिसेषी। ग्रंथि छूट किमिपरइ न देखी ।।९८।।

अर्थ—तभी से तो जीव संसारी (जन्मने-मरने वाला) हो गया है न ग्रन्थि छूटती है, और न वह सुखी होता है। जीव के हृदय में अज्ञान रूपी अन्धकार विशेश रूप से छा रहा है, इससे गाँठ देख नहीं पड़ती छूटे तो कैसे? ।।९८।।

प्रश्न—हे प्रभो? 'तब ते जीव भयउ संसारी।' कहने का क्या अभिप्राय है?

उत्तर हे प्रियवत्स? जब से यह संसार के विषयों में आसक्त हुआ, अपने शुद्ध स्वरूप को भूल गया—या प्रभु से पृथक् होने पर जीव संज्ञा हुई। कब से जीव हुआ? कुछ पता नहीं, अतः ग्रन्थि अनादि है। यथा—

'जिव जब तें हरि तें बिलगान्यो। तब तें देह गेह निज जान्यो।
मायावस स्वरूप बिसरायो। तेहि भ्रम तें दारुन दुःख पायो।। (वि० प०१३६)

अथवा–'तव से' अर्थात् काल का कोई नियम नहीं, क्योंकि अनादि काल से ऐसा ही चला आता है।

प्रश्न—श्री गुरुदेव ? जीव हृदयँ तम मोह बिसेषी। ग्रंथि छूट किमि परइ न देखी।' कथन का क्या रहस्य है ?

उत्तर—हे सौम्य ? अपने सहज स्वरूप को भूल गया, विषयों के अपनाने से, उन्हें स्थायी, सुन्दर, सुखप्रद मानने से, उसी विषय सुख प्राप्ति के लिये अनेक शुभाशुभ कर्म करने से हृदय (अन्तः करण) पर दोष आ जाने से लिङ्ग शरीर में अपनापन भाषित होने लगता है, यह ज्यों-ज्यों दृढ़ होता जाता है, त्यों-त्यों ही विक्षेप दोष बढ़ता जाता है। विक्षेप के बढ़ने से चित्त अशान्त रहने लगता है, यही विक्षेप दोष कहा जाता है, मल दोष और विक्षेप दोष के बढ़ने से आवरण दोष बढ़ने लगता है, आवरण के बढ़ने से आत्मरूपी प्रकाश छिप जाता है, यही जीव के हृदय पर अज्ञान रूपी अन्धकार छा गया है ॥ यथा–जन्म अनेक किये नाना विध करम कीच चित सान्यो। (विनय ८) इसी से जो जड़ और चैतन्य कभी एक नहीं हो सकते, मिल नहीं सकते, उनमें ग्रन्थि का क्या काम यह सूझ नहीं पड़ता, बिना दीखे कैसे समझ आवे, यही ग्रन्थि छूटने में कठिनाई है। अंधेरे की निवृत्ति के लिये श्रीमद्गोस्वामीतुलसीदासजी ने, श्रीकाकभुशुण्डिजी के श्रीमुखारविन्द से प्रकाश का उपाय वर्णन कराया है, उसी को यहाँ संक्षेप में दिखाते हैं। यथा –

मूल दो०—तब बिग्यान रूपनी, बुद्धि बिसद घृत पाइ।
चित्त दिआ भरि धरै दृढ़,समता दिअटि बनाइ॥७।११७(ख)
तीनि अवस्था तीनि गुन, तेहि कपास तें काढि।
तूल तुरीय संवारि पुनि, बाती करै सुगाढि ॥७।११७ (ग)

अर्थ—तव विज्ञान रूपिणी बुद्धि उस ज्ञान रूपी निर्मल घी को पाकर उससे चित्त रूपी दियेको भरके, समता की दीवट बनाकर उस पर उसे दृढ़ता पूर्वक (जमाकर) रक्खे ॥७।११७ (ख)॥ तीनो (जाग्रति, स्वप्न और सुषुप्ति) अवस्थाएँ और तीनों (रज, सत्त्व और तम) गुण इनको कपास से निकाल कर तब तुरीयावस्था रूपी रूई को सँवारकर अर्थात् धुनकर उसकी सुन्दर बत्ती बनावे ॥७।११७ (ख-ग)॥

प्रश्न - हे स्वामिन् ? 'तब बिग्यान रूपनी बुद्धि बिसद घृत पाइ।' कहने का क्या भाव है ?

उत्तर—हे सुव्रत ? जब श्रीसद्गुरुदेव से उपदिष्ट 'विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्' इति श्रुते (तैत्तिरीय० उ० ३।५) अर्थात्–इस बार उन्होंने पिता (वरुणजी) के उपदेशानुसार यह निश्चय किया कि यह विज्ञान स्वरूप चेतन जीवात्मा ही ब्रह्म है, चौ० सो तैं तोहि ताहि नहिं भेदा ॥७।१११।२॥ श्रीगुरुदेव और वेदान्त वाक्य से जो ब्रह्मात्मैक्यका जिसे अनुभव

होता है, उसे विज्ञान रूपिणी बुद्धि कहते हैं। ब्रह्मात्मैक्य विज्ञान ही निर्मल घृत है, इसे पाकर इसे चित्त रूपी दिये में भरे।

प्रश्न—हे भगवन् ? 'चित्त दिआ भरि धरै दृढ़ समता दिअटि बनाइ ॥ कहने का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—हे प्रिय दर्शन ? चित्त-कोष (खजाना) है, जिसमें शुभाशुभ सब प्रकार के कर्म रक्खे जाते हैं। यहाँ पर निर्मल घृत रखना है इस लिये चित्त को दिआ (दीपक) कहा। यहाँ आया 'दृढ़' शब्द-देहली-दीप न्याय है, अर्थात् 'चित्त दिआ भरि धरै दृढ़, तथा 'दृढ़ समता दिअटि बनाइ ॥' तात्पर्य यह है कि चित्त में निर्मल ज्ञान (मैं ब्रह्म हूं) दृढ़ रहे, और सर्व ससार में। यथा—

चौ० देख ब्रह्म समान सबमाहीं।३।१५।४॥ यह वृत्ति एक समान एक रस दृढ़ बनी रहे। यथा—'वासुदेव सर्वमिति' (गीता ७।१९) सब कुछ वासुदेव ही हैं, यह समता रूपी दीवट दृढ़ हो, ऐसी दृढ़ दीवट पर निर्मल घृत (मैं सत्य हूं-ब्रह्म हूं) भरा दिआ रखना है।

प्रश्न—प्रभो ? 'तीन अवस्था तीन गुन, तेहि कपास तें काढि।' कहने का क्या अभिप्राय है ?

उत्तर—हे प्रिय वत्स ? चिदाभास ही कपास है. जैसे कपास में तीन कोष (खाने) होते हैं। यही तीन अवस्था हैं. यह तीन अवस्था तीनों शरीरों में होती हैं, स्थूल शरीर में जाग्रत, सूक्ष्म शरीर में स्वप्न और कारण शरीर में सुषुप्ति अवस्था, इन्हीं तीनों शरीरों में ही गुण वर्तते हैं—जाग्रत् रजोगुण प्रधान स्वप्न-सत्त्व गुण प्रधान, सुषुप्ति तमोगुण प्रधान हैं। अर्थात्—चिदाभास रूप की तीन अवस्था, कोष या खाने हैं, प्रत्येक खाने में रज, सत्त्व, तम उनके क्रम से बीज (बिनौले) हैं, जो रुई से लिपटे हुए हैं। इस प्रकार अवस्था त्रय और गुण त्रय चिदाभास के साथ जानिये।

अब चिदाभास अपने सहज स्वरूप आत्मा में स्थित हुआ तब अवस्था त्रय और गुण त्रय से मुक्त हुआ—तुरीयावस्था में स्थित होता है। यही तुरीयावस्था ही रुई है अर्थात् कपास को ओटकर बिनौलों से रुई-अलग करली जाती है, तब रुई डेढी और बिनौलों से अलग हो जाती है; इसी प्रकार जब अवस्था त्रय और गुण त्रय को त्याग दिया जाता है तब तुरीयावस्था रह जाती है। तब तूल तुरीय सँवारि पुनि बाती करै सुगाढि ॥' अर्थात् ओटी हुई रुई की वत्ती अच्छी नहीं बनती और प्रकाश भी अच्छा नहीं देती, इसलिये रुई को 'सँवारि' अर्थात् रुई को तुनकर (धुनकर) शुद्ध करे, धुनने से रुई एकरूप हो जाती है, फिर 'सुगढि' अर्थात् खूब मोटी वत्ती बनावे। अभिप्राय है कि तुरीयावस्था को भली भाँति घनीभूत करे। इसी को श्रुतियाँ इस प्रकार कहती हैं। यथा—

श्रुति—अजाग्रत्स्वप्ननिद्रस्य यत्ते रूपं सनातनम्।
अचेतनं चाजडं च तन्मयो भव सर्वदा ॥ (मह० उ० ५।५०)

श्रुत्यर्थ–जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्त से परे जो तुम्हारा (तुरीय) सनातन स्वरूप है, उस जड़-चेतन रहित स्थिति में सदा तन्मय रहो।

अथवा—श्रुति–भूमिषट्कं चिराभ्यासाद्भेदस्यानुपलम्भनात्।
यत्स्वभावैकनिष्ठत्वं सा ज्ञेया तुर्यगा गतिः ॥३४॥
एषा हि जीवन्मुक्तेषु तुर्यावस्थेति विद्यते।
विदेहमुक्तिविषयं तुर्यातीतमतः परम् ॥३५॥
ये निदाघमहाभागाः सप्तमीभूमिमाश्रिताः।
आत्मारामा महात्मानस्ते महत्पदमागताः ॥३६॥ (मह०उ०५।३४से३६)

श्रुत्यर्थ—छः भूमियों में चिरकाल तक अभ्यास करने के बाद भेदि बुद्धि का अभाव हो जाने के कारण जो आत्मभाव में एक निष्ठा हो जाती है, वह तुर्यगा स्थिति कहलाती है। यही तुर्यावस्था जीवन्मुक्त पुरुष की होती है। इसके पश्चात् जो तुर्यातीत अवस्था है वह विदेह मुक्ति का विषय है। हे निदाघ ? जो महाभाग्यवान पुरुष सप्तमी भूमिका (तुरीयगा) का आश्रय ले चुके हैं; वे आत्मा में रमण करने वाले महात्मा महान् पद को प्राप्त हो गये हैं। इस प्रकार तुरीय रूप रुई की दृढ़ बत्ती बनाकर दीप जलावे—

मूल चौ०–सोहमस्मि इति बृत्ति अखंड़ा, दीपसिखा सोइ परम प्रचंडा॥
आतम अनुभव सुख सुप्रकासा। तब भव मूल भेद भ्रम नासा॥६६॥

अर्थ 'सोऽहमस्मि' (वह ब्रह्म मैं हूं) यह जो अखण्ड (तैल धारावत् कभी न टूटने वाली) वृत्ति ही उस ज्ञान दीपक की परम प्रचण्ड दीपशिखा (लौ) है। इस प्रकार जब आत्मानुभव के सुख का सुन्दर प्रकाश फैलता है, तब जन्म-मृत्यु रूप संसार के मूल भेद-भ्रम का नाश हो जाता है ॥६६॥

प्रश्न–श्रीगुरुदेव ? 'सोहमस्मि इति वृत्ति अखंड़ा। दीपसिखा सोइ परम प्रचंडा' कथन का क्या रहस्य है ?

उत्तर—हे सौम्य ? 'सोहमस्मि'='तत्त्वमसि' छा० उ० का महावाक्य है। यथा–
श्रुति–स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदं सर्वं
तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति ॥
(छा० उ० ६।८।७ से ६।१६।३ तक नव (९) वार आया है)

श्रुत्यर्थ वह जो अणिमा है एतद्रूप ही यह सब है, वह सत्य है वह आत्मा है, और श्वेतकेतो ? वही तू है। यह अखण्डवृत्ति ही उस दीपक की परम प्रचण्ड दीपशिखा(लौ) है।

प्रश्न—हे स्वामिन् ? कुछ महानुभाव बड़ी मोटी शिखा (चोटी) रखते हैं, और कहते हैं कि जिसकी शिखा (चोटी) गौ के खुर के समान मोटी और घोड़े की पूछ के समान लम्बी हो वह स्वर्ग में जाता है। और कुछ जटाधारी कहते हैं कि जटाधारी ही स्वर्ग में जाता है।

उनकी शिखा और जटायें प्रत्यक्ष दीखती हैं। परन्तु यह ज्ञान दीप शिखा तो सबकी दृष्टि में नहीं आती, अतएव इसका क्या समाधान करेंगे ?

उत्तर—हे सुव्रत ? ज्ञान दीप शिखा इन चर्म चक्षुओं से दृष्टि आने की वस्तु नहीं है, वह तो दिव्य दृष्टि से देख पड़ती है। इसका समाधान श्रुति स्वयं करती है। यथा—

श्रुति—अग्नेरिव शिखा नान्या यस्य ज्ञानमयी शिखा।
स शिखीत्युच्यते विद्वान्नेतरे केशधारिण: ।।
(परब्रह्म० उ० ८—नारद परिव्राजक० उ० ३।८३-ब्रह्मोपनिषद्)

श्रुत्यर्थ—जैसे अग्नि शिखा अग्नि के स्वरूप से भिन्न नहीं होती, उसी प्रकार जिस विद्वान् संयामी ने ज्ञानमयी (अखण्ड ब्रह्माकार वृत्ति) शिखा धारण कर रखी है, वही शिखाधारी कहलाता है; दूसरे लोग (जो लम्बे बाल रखने वाले व जटाजूट रखने वाले) केवल केश धारण करते हैं, वास्तविक शिखाधारी नहीं। वास्तविक शिखाधारी होने के लिये प्रारम्भ में शिखा सूत्र धारण करना वेद विहित है, कि जिससे तदनुसार कर्म-उपासना करके वास्तविक (ज्ञानमयी) शिखा धारण करें।। यथा—

श्रुति—कर्मण्यधिकृता ये तु वैदिके ब्राह्मणादय: ।
तैर्विधार्यमिदं सूत्रं क्रियांग तद्धि वै स्मृतम् ।।
शिखा ज्ञानमयी यस्य उपवीतं च तन्मयम् ।
ब्राह्मण्यं सकलं तस्य इति ब्रह्मविदोविदुरिति ।। (नारद० उ० ३।८४।८५)

श्रुत्यर्थ—जो ब्राह्मण आदि द्विज वैदिक कर्म के अधिकारी माने जाते हैं, उन्हीं को यह वाह्य सूत्र—यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये; क्योंकि वह कर्म का अंग माना गया है। जिसके ज्ञानमयी शिखा और ज्ञानमय ही यज्ञोपवीत है, उसी में पूर्ण रूप से ब्राह्मणत्व प्रतिष्ठित है—ब्रह्मज्ञ पुरुष यही मानते हैं।।

प्रश्न—हे भगवन् ? 'आत्म अनुभव सुख सु प्रकासा। तब भव भूल भेद भ्रम नासा।।' कहने का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—हे प्रिय दर्शन ? 'आतम अनुभव' 'अहं ब्रह्मास्मि' यह वृहदारण० उ० का महावाक्य है। यथा—

श्रुति—ब्रह्म वा इदमग्र आसीत्तदात्मानमेवावेदहंब्रह्मास्मीति।
तस्मात्तत्सर्वमभवत् (वृहदारण्यक० उ० १।४।१०)

श्रुत्यर्थ—पहले यह ब्रह्म ही था; उसने अपने को ही जाना कि 'मैं ब्रह्म हूं' अत: वह सर्व हो गया।।

अथवा—श्रुति—महावाक्यार्थमनुस्मरन् ब्रह्माहमस्मि अहमस्मि ब्रह्माहमस्मि
योऽहमस्मि ब्रह्माहमस्मि अहमेवाहं मां जुहोमि स्वाहा ।।
(त्रिपाद्विभूत महानारायण० उ० ८).

श्रुत्यर्थ—महावाक्यों के अर्थ का बार-बार स्मरण करता हुआ, 'ब्रह्म मैं हूँ' 'मैं ही हूँ' 'ब्रह्म मैं हूँ' 'जो भी मैं हूँ' 'ब्रह्म ही मैं हूं' 'मैं ही मैं हूँ' मैं अहंता (भेद प्रतीति) का हवन करता हूं-स्वाहा (वह भस्म हो जाये) फिर, यथा—

श्रुति—सच्चिदानन्दात्मकोऽहमजोऽहंपरिपूर्णोऽहमस्मीति
प्रविवेश। तत उपासकोनिस्तरंग द्वैतापार निरतिशय
सच्चिदानन्द समुद्रो वभूव। (त्रिपाद्विभूतमहानारायण० उ० ८)

श्रुत्यर्थ—मैं सच्चिदानन्द स्वरूप हूँ, मैं अजन्मा हूं, मैं परिपूर्ण हूं, इस प्रकार (स्वरूप भूत होकर) प्रविष्ट हो जाता है। तव उपासक तरंगहीन (भव मूल भेद-भ्रम रहित) अद्वैत, अपार, निरतिशय सच्चिदानन्द समुद्र हो जाता है। अर्थात् ब्रह्म स्वरूप हो जाता है॥ यही अमर तत्त्व है। इसी को श्रुति निरालम्ब योग कहती है।

प्रश्न—श्रुति—अथ च निरालम्ब योगाधिकारी की दृशो भवति।

श्रुत्यर्थ—तब तो (जब निरालम्ब योग इतना दुरुह है) निरालम्ब योग का अधिकारी किस प्रकार का होता है (त्रिपाद्विभूति महानारायण० उ० ८) श्रुति ही उत्तर देती है यथा—

श्रुति—अमानित्वादि लक्षणोपलक्षितोय: पुरुष:
स एव निरालम्ब योगाधिकारी कार्य: कश्चिदस्ति।
तस्मात्सर्वेषामधिकारिणामनधिकारिणां
भक्ति योग एव प्रशस्यते। (त्रिपाद्विभूति महानारायण० उ० ८)

श्रुत्यर्थ—जो पुरुष अमानित्व आदि (ज्ञान के) लक्षणों से (जो गीता जी के अध्याय १३ में श्लोक ७ से ११ तक २० लक्षण कहे हैं) युक्त हो उसी को निरालम्ब योग का अधिकारी बनाना (मानना) चाहिये ऐसा अधिकारी कोई विरला ही है। इसलिये सभी अधिकारी-अनधिकारियों के लिये भक्ति योग ही (सुगम व) श्रेष्ठ कहा जाता है। इसी आशय से श्रीकाकभुशुण्डी अब भक्ति योग का निरुपण करते हैं। यथा—

मूल चौ०—राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं। अनइच्छित आवइ बरिआईं॥
भगति करत बिनु जतन प्रयासा। संसृति मूल अविद्या नासा॥१००॥

अर्थ—हे गोसाइं? वही अत्यन्त दुर्लभ मुक्ति श्रीरामजी को भजने से बिना इच्छा किये भी बलात् आ जाती है। तथा भक्ति करने से संसृति (जन्म-मृत्यु रूप संसार) की जड़ अविद्या बिना ही यत्न और परिश्रम के (अपने-आप) नष्ट हो जाती है॥१००॥

प्रश्न—हे प्रभो? 'राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं। से...मूल अविद्या नासा।' इस १००वीं पूरी चौपाई का क्या अभिप्राय है?

उत्तर—हे प्रिय वत्स? इसके अभिप्राय को श्रुति इस प्रकार कहती है। यथा—

श्रुति—भक्तियोगो निरुपद्रव:। भक्तियोगान्मुक्ति:।
बुद्धिमतामनायासेनाचिरादेव तत्त्वज्ञानं भवति।

तत्कथमिति । भक्तवत्सल: स्वयमेव सर्वेभ्यो मोक्षविघ्नेभ्यो भक्ति निष्ठान्सर्वान्परिपालयति । सर्वाभीष्टान्प्रयच्छति । मोक्षंदापयति । (त्रिपाद्विभूति महानारायण० उ० ८)

श्रुत्यर्थ – भक्ति योग उपद्रव (विघ्न) रहित है । भक्तियोग से मुक्ति प्राप्त होती है । (श्रुति शका करती है) वह (अनायास अविलम्ब तत्त्व ज्ञान) कैसे होता है ? इस शंका का समाधान श्रुति स्वयं करती है - भक्तवत्सल भगवान् स्वयं ही मोक्ष के सभी विघ्नों से सभी भक्ति निष्ठ लोगों (भक्तों) की रक्षा करते हैं । (उनको) समस्त अभीष्ट प्रदान करते हैं । मोक्ष दिलवाते हैं । भक्त: स्वत मोक्ष नहीं चाहता । भगवान् उसे अपनी ओर से मोक्ष प्रदान करते हैं, इसी से दिलवाते हैं, यह कहा गया)

श्रुति-तद्भक्ता ये लब्धकामाश्चभुक्त्वा तथा पदं परमं यान्ति ते च ॥

(श्रीराम पू० ता० उ० १०।१०)

श्रुत्यर्थ—जो उन श्रीरामजी के भक्त होते हैं, वे मनोवांछित भोगों को पाते हैं । प्राप्त हुए भोगों का उपभोग करते हैं तथा अन्त में वे भी भगवान् के परमपद को प्राप्त करते हैं ॥

मू.चौ०-सिव अज सुक सनकादिक नारद । जे मुनि ब्रह्म विचार बिसारद॥
सब कर मत खगनायक एहा । करिअ राम पद पंकज नेहा ॥१०१॥

अर्थ – श्रीशिवजी, श्रीब्रह्माजी श्रीशुकदेवजी, श्रीसनकादी और नारदजी आदि जो मुनि ब्रह्म विचार में परम निपुण है । हे पक्षिराज गरुड़जी ? उन सबका मत यही है कि श्रीरामजी के चरण कमलों में प्रेम करना चाहिये ॥१०१॥

प्रश्न—श्री गुरुदेव ? 'सिव अज सुक सनकादिक नारद । जे मुनि ब्रह्म विचार बिसारद ॥' कथन का क्या रहस्य है ?

उत्तर– हे सौम्य ? श्रीशिवजी । यथा—

दो० प्रभु समरथ सवग्य सिव, सकल कला गुन धाम ।
जोग जाप वैराग्य निधि, प्रनत कलपतरु नाम ॥१।१०७॥

व० चौ० तुम त्रिभुवन गुरु बेद बखाना ।१।१११।३॥

व० छं० विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपं ॥७।१०८।१

श्रीब्रह्माजी—यथा—

चौ० कठिन करम गति जान विधाता । जो सुभ असुभ सकल फल दाता ॥२।२८॥

श्रीशुकदेवजी गर्भ में ही आत्मज्ञानी हो गये ।

श्रीसनकादि—यथा—चौ० ब्रह्मानन्द सदा लय लीना ।७।३२।२॥

श्रीनारदजी—दो० त्रिकालग्य सर्वग्य तुम, गति सर्वत्र तुम्हारि ॥१॥६६॥

व–लोकपितामह के मानस पुत्र सर्वशास्त्र विशारद और भी मुनीश्वर 'सबकर मत खग नायक एहा ।' अर्थात्–श्रीशिवजी-श्रीब्रह्मादिक तथा समस्त ब्रह्म बिचार बिशारद मुनि

और श्रुति स्मृति और पुराणादि सर्व-सब ग्रन्थोंका यह मत है'करिअ राम पद पंकज नेहा' अर्थात्–'राम पद पंकज' से निर्गुण और सगुण स्वरूप की तरफ संकेत है। यथा—

चौ० जद्यपि ब्रह्म अखंड अनंता। अनुभव गम्य भजहिं जेहि संता॥
अस तव रूप बखानउँ जानउँ फिर फिर सगुन ब्रह्म रति मानउँ॥३।१३।१०७

ज्ञानी मुनि श्रीगस्त्यजी ने कहा, निर्गुण को सन्त भजते हैं। इसी प्रकार श्रुति भी कहती है।

यथा–श्रुति–अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथाऽरसं नित्यमगन्धवच्च यत्।
अनामगोत्रं मम रूपमीदृशं भजस्व नित्यं पवनात्मजार्तिहन्॥
(मुक्तिक० उ० २।७२)

श्रुत्यर्थ—(श्रीरामवचनामृत) जो शब्द रहित, स्पर्श रहित, रूप रहित, रस रहित और गन्ध रहित है जो कभी विकार को प्राप्त नहीं होता, जिसका न कोई नाम है और न कोई गोत्र है, तथा जो सब प्रकार के दुःखों को हरने वाला है–पावन तनय ? इस प्रकार के मेरे स्वरूप का तुम भजन करो अर्थात् ऐसे स्वरूप में प्रेम करो।

अथवा–निर्गुण के पाद–अकार विराट, उकार-हिरण्यगर्भ, मकार–ईश्वर,अर्धमात्र तुरीय ब्रह्म–इनमें प्रेम करो।

सगुण स्वरूप ब्रह्मरामजी के पद-चरण कमलों में प्रेम करो अर्थात्-मन भ्रमर है। श्रीराम जी के चरण कमल हैं। उनमें मनको लगादो, जब मन श्रीरामजी के चरण-कमलों का रसास्वादन करेगा तो फिर वहाँ से हटेगा नहीं। क्योंकि भ्रमर तब तक अन्य पुष्पों पर मंडराता है, जब-तक वह कमल पुष्प नहीं पाता है, कमल पर पहुंचते ही भ्रमण को त्याग कर पुष्प पर बैठ जाता है, इसी प्रकार मन रूपी भौंरा जब श्रीराघवेन्द्र सरकार के चरण-कमलों को पा जायगा तो संकल्प-विकल्प त्यागकर स्थिर हो जायेगा, स्थिर होते ही तद्रूपता को प्राप्त हो जायेगा॥

अथवा–इस चौपाई १०१ पूरी का रहस्य है–इस चौपाई में निष्काम कर्मयोग उपासना, ज्ञानयोग का उपदेश दिया गया है।

'कर्म' अर्थात्–श्रीरामचन्द्रजी के पद कमलों की निष्काम भाव से प्रेम के साथ पूजा करनी, जहाँ सकामना होती है वहाँ प्रेम नहीं होता वहाँ तो केवल व्यापार ही होता है। इसलिये निष्काम होकर प्रेम से पूजा-अर्चा करे-यह कर्म हुआ।

'उपासना' अर्थात्–श्रीरामचन्द्र जी के पद–अर्थात् वाक्य समूहों में प्रेम से उनका श्रवण, मनन और निदिध्यासन करना, श्रीरामजी के पद–अर्थात् वाक्य कैसे हैं, 'पंकज'= कमल के सदृश, जो जल से पैदा होकर–जल में ही रहकर; जल के स्पर्श से रहित अर्थात् जल से विलग रहना है, इसी प्रकार ही श्रीरामजी के वाक्य (पद) जगत् में रहते हुए भी जगत् से विलग रहने का उपदेश देते हैं। यथा—

दो० गुनागार संसार दुख, रहित विगत सन्देह।
तजि मम चरन सरोज प्रिय, तिन्ह कहु देह न गेह ।।३।४५।।
अथवा चौ० एहि तन कर फल विषय न भाई। स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई ।।
नर तनु पाइ विषय मन देहीं। पलट सुधाते सठविष लेहीं ।।७।४४।१
ताहि कवहुं भल कहइ न कोई। गुंजा ग्रहइ परस मनि खोई ।७।४४।२

यह है श्रीरामजी के पद (वाक्य) इनका श्रवण; मनन और निदिध्यासन प्रेम से करना उपासना कही गई।

ज्ञान अर्थात् श्रीराम पद—आकार-उकार-मकार-अर्धमात्रा या अमात्र अथवा निर्वाण पद, निजधाम, मोक्ष में प्रेम करना चाहिये अर्थात् संसृति का अन्त कर दीजिये, इससे ज्ञान योग का उपदेश मिलता है।

अथवा—तत्त्वत: यह है कि राम पद-निर्वाण-पद, स्वरूपभूत प्रकाश अर्थात् मोक्ष की भी (नेहा = ने + ईहा। इच्छा न करिये अर्थात् सहजावस्था में स्थिर हो जाय। श्रुति कहती है। यथा—'केवलं मोक्षापेक्षाकाम संकल्पो वन्धः ।।'

'संकल्प मात्र सम्यवो वन्धः। इति श्रुतेः (निरालम्बोपनिषद्)

सहजावस्था में स्थित हो जाये, यही सतपंचों की चौपाई का आशय व रहस्य है ।।

मूल चौ०-श्रुति पुरान सब ग्रंथ कहाहीं। रघुपति भगति बिना सुख नाहीं।।
श्रुति सिद्धांत इहइ उरगारी। राम भजिअ सब काज बिसारी।।१०२।।

अर्थ—श्रुति पुराण आदि सभी ग्रन्थ कहते हैं कि श्रीरघुनाथजी की भक्ति के विना सुख नहीं है। हे उरगारि गरुड़जी ? श्रुतियों का यही सिद्धान्त है कि सब भुलाकर (छोड़कर) श्रीरामजी का भजन करना चाहिये ।।१०२।।

प्रश्न—हे स्वामिन् ? 'श्रुति पुरान सब ग्रन्थ कहाहीं।' कहने का क्या भाव है ?

उत्तर—हे सुव्रत ? 'श्रुति' स्वतः प्रमाण है, 'पुरान' परतः प्रमाण है, 'सब' से और सभी सद्ग्रन्थों का गृहण है। ये सब एक स्वर से कहते हैं, 'रघुपति भगति बिना सुख नाहीं।' अर्थात्-रघु=जीव, पति=नाथ, स्वामी अर्थात् परब्रह्म परमात्मा श्रीरामजी की भक्ति के बिना सुख नहीं मिल सकता। यथा—

सो० गावहि बेद पुरान, सुख कि लहिअ हरि भगति विनु ।।७।८९।।

यदि परम सुख की इच्छा है तो निर्गुण श्रीरामजी का भजन (अहंग्रह उपासना अथवा—दाशरथी राम जो रघुकुल में अवतीर्ण हुए, वह परब्रह्म परमात्मा ही हैं उनके भजन के विना सुख नहीं मिल सकता।

प्रश्न—हे भगवन् ? भजन का स्वरूप क्या है ?

उत्तर हे प्रिय दर्शन ? भजन में तीन अक्षर 'भ+ज+न' हैं इनमें से 'भ' प्रकाश, 'ज' जन्म और 'न' निरोध अर्थात्—जब प्रकाश पैदा हो जाये तब निवृत्ति का भी निरोध हो

जाये अर्थात्–'सहजावस्था' इसे कहते हैं। 'भजन' अथवा–भजन का स्वरूप चौपाई ७० के अन्तर्गत दो० ३।१५ पृष्ठ १५२ तथा चौपाई ७८ के अन्तर्गत दो० ७।७१ (ख) पृष्ठ १७१ पर अवलोकन करें। 'सुख नाहीं' अर्थात्–अन्य किसी साधन व उपाय से सुख की आशा न करो। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी भी ऐसा ही कहते हैं। यथा—

अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम्।
देवान्देव यजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि ।। (गीता ७:२३)

उन अल्प बुद्धिवालों का वह फल नाशवान् है तथा वे देवताओं को पूजने से देवताओं को प्राप्त होते हैं और मेरे भक्त चाहें जैसे ही भजें शेष में वह मेरे को ही प्राप्त होते हैं।।

अथवा–यान्ति देवव्रता देवान्पितृन्यान्ति पितृव्रताः।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजितोऽपिमाम् ।। (गीता ९।२५)

(नियम है कि) देवताओं को पूजने वाले देवताओं को प्राप्त होते हैं, पितरों को पूजने वाले पितरों को प्राप्त होते हैं, भूतों को पूजने वाले भूतों को प्राप्त होते हैं, और मेरे भक्त मेरे को ही प्राप्त होते हैं, इसलिये मेरे भक्तों का पुनरजन्म नहीं होता।।

दो० बारि मथें घृत होइ बरु, सिकता ते बरु तेल।
बिनु हरि भजन न भव तरिअ, यह सिद्धांत अपेल ।।७।१२२ (क)

प्रश्न—हे प्रभो ? 'श्रुति सिद्धान्त इहइ उरगारी।' कहने का क्या अभिप्राय है ?

उत्तर—श्रुति–भक्तिगम्यं परं तत्त्वमन्तर्लीनेन चेतसा।
भावनामात्रमेवात्र कारणं पद्मसंभव ।।२३।।
यथा देहान्तरप्राप्तेः कारणं भावना नृणाम्।
विषयं ध्यायतः पुंसो विषये रमते मनः ।।२४।।
मामनुस्मरतश्चित्तं मय्येवात्र विलीयते।
सर्वज्ञत्वं परेशत्वं सर्वसम्पूर्णशक्तिता।
अनन्तशक्तिमत्त्वं च मदनुस्मरणाद्भवेत् ।। (यो.शि.उ.३।२३से२५)

श्रुत्यर्थ—(भगवान् श्रीसदाशिवजी ने कहा) हे पद्मसम्भव ब्रह्माजी ? परम तत्त्वअन्तर्लीन चित्त सहित भक्ति से जानने योग्य है, इसमें भावनामात्र ही कारण है। जिस प्रकार देहान्तर प्राप्ति का कारण मनुष्यों की भावना ही है। तैसे ही विषय के ध्यान करने वाले पुरुष का विषयों में मन रमण करता है। वैसे ही मुझको स्मरण करने वाले का चित्त मेरे मे ही विलीन हो जाता है। सर्व सम्पूर्ण शक्तिता, परेशत्व, सर्वज्ञत्व और अनन्तशक्तिमत्त्व मेरे अनुस्मरण से होता है।

'सब काज बिसारी ।।' अर्थात् वेद स्तुति में वेद कहते हैं। यथा—

छं० मन बचन कर्म बिकार तजि तव चरन हम अनुराग हीं ।।७।१३।६।।

अथवा–शतंविहायभोक्तव्यं सहस्रंस्नानमाचरेत्।
लक्षंविहायदातव्यं सर्वंत्यक्त्वा हरिं भजेत् ।।

अर्थात्–भोजन में से सौवाँ भाग त्याकर यानी बलिवैश्वादि करके प्रसाद पावे। सहस्त्रांशु–सूर्य के उदय होने से पहले अर्थात् उदय को त्याग प्रातःकाल में ही स्नान और व्यायामादि कर लेना चाहिये, अपने स्वार्थ तीनों लक्षों (प्रत्युपकार के प्रयोजन से, इसलोक में मान-बड़ाई प्रतिष्ठा तथा रोगादि की निवृत्ति के लिये,और परलोक में स्वर्गादि की प्राप्ति) को त्याग करके अनुपकारी सुपात्र ब्राह्मण को दान देना, और मन, चित्त की सर्वकल्पनाओं अर्थात्–चंचलता, वासना और अर्थों को त्यागकर हरिका, भजन ध्यान करना चाहिये।

अथवा–सौ कामों को त्याग करके भोजन करे, हजार कामों को छोड़कर स्नान करे, लाख कामों को छोड़कर दान दे और सर्व कामों को त्यागकर हरि भजन करे ॥

मूल दो.–बारि मथें घृत होइ बरु, सिकता ते बरु तेल।

बिनु हरि भजन न भव तरिअ, यह सिद्धांत अपेल ॥७।१२२(क)

अर्थ—जल के मथने (बिलोने) से घी भले ही हो जाये (निकल आवे) और बालू (रेत) के पेरने से भले ही तेल निकल आवे, परन्तु श्रीहरि के भजन बिना भवसागर से नहीं तरा जा सकता, यह सिद्धान्त अटल है, कदापि टल नहीं सकता ॥७।१२२ (क)

प्रश्न—श्रीगुरुदेव ? 'बारिमथें घृत होई' से "यह सिद्धांत अपेल ॥' इस पूरे दोहे का क्या रहस्य है ?

उत्तर—हे सौम्य ? जल के मथने से (बिलोने) से घी नहीं निकलता। यथा—

चौ० घृत कि पाव कोइ बारि बिलोंएँ ॥७।४९।३॥ और रेत के पेरने से तेल नहीं निकलता, 'होइ बरु'अर्थात् ये अद्भुत घटनाएँ हो जायें,ये सिद्धान्त चाहें टल जायें परन्तु हरि भजन के विना भव पार नहीं हो सकते, यह अटल सिद्धान्त है। किसी को किसी प्रकार की सामर्थ्य नहीं जो इसे टाल दें। यथा—

चौ० बिनु हरि भजन न भव भय नासा ॥७।९०।४०॥

अथवा–श्रुति–चतुर्मुखादीनां सर्वेषामपि विनाविष्णुभक्त्या
कल्पकोटिभिर्मोक्षो न विद्यते। कारणेन विना कार्यं नोदेति।
भक्त्याविनाब्रह्मज्ञानं कदापि न जायते।
तस्मात्त्वमपि सर्वोपायान्परित्यज्य भक्तिमाश्रय (त्रि०द्वि०म०न०उ० ६)

श्रुत्यर्थ—विष्णु भक्ति बिना ब्रह्मादि समस्त (देवताओं) का भी करोड़ों कल्पों में भी मोक्ष नहीं होता। क्योंकि कारण के बिना कार्य प्रकट नहीं होता, अतः भक्ति (जो कारण है, उस) के बिना (कार्य) ब्रह्मज्ञान कभी उत्पन्न नहीं होता। इसलिये तुम भी समस्त उपायों को छोड़कर भक्ति का आश्रय लो।

प्रश्न—हे स्वामिन् ? भक्ति का स्वरूप क्या है ?

उत्तर–हे सुव्रत ? श्रीमच्छकंर भगवत्पाद प्रणीत श्रीविवेकचूडामणिः के अन्तर्गत भक्ति का स्वरूप इस प्रकार बताया है। यथा—

मोक्ष कारण सामग्र्यां भक्तिरेव गरीयसी ।
स्वस्वरूपानुसन्धानं भक्तिरित्यभिधीयते ।।३२।।

अर्थात्—मुक्त की कारण रूपा सामग्री में भक्ति ही सबसे बढ़कर है। अपने स्वरूप का अनुसन्धान करना 'भक्ति' कहलाती है।

मू. चौ.—जहँ लगि साधन वेद बखानी। सब कर फल हरि भगति भवानी।।
सोइ कबि कोबिद सोइ रन धीरा। जो छल छाड़ि भजइ रघुबीरा।।१०३।।

अर्थ—जहाँ तक वेदों ने साधन बतलाये हैं, हे भवानी? उन सबका फल श्रीहरि की भक्ति ही है। वही कवि, वही विद्वान् तथा वही रणधीर है, जो छल छोड़कर श्रीरघुवीर का भजन करता है ।।१०३।।

प्रश्न—हे भगवन्? जहँ लगि साधन बेद बखानी। सब कर फल हरि भक्ति भवानी ।।' कहने का क्या तात्पर्य है?

उत्तर—हे प्रिय दर्शन? जन्मान्तर सहस्रेषु तपो ज्ञान समाधिभिः ।
नराणां क्षीण पापानां कृष्णे भक्तिः प्रजायते ।।(विष्णु पु०)

अर्थात्—हजारों जन्मों के पीछे तपस्या, ज्ञान और समाधि द्वारा जिनके पाप क्षीण हो गये हैं, उन्हीं लोगों की भगवान कृष्ण में भक्ति होती है ।।

प्रश्न—हे प्रभो? 'सोइ कवि कोविद सोइ रन धीरा। जो छल छाड़ि भजइ रघुबीरा ।।' कहने का क्या प्रभिप्राय है?

उत्तर—हे प्रिय वत्स? 'रन धीरा' काम, क्रोध, लोभ, मद, मत्सर आदि के जीतने में प्रयत्नशील, इनसे लड़ने में पीछे नहीं हटने वाले, या जिन्होंने इनको जीत लिया है और छलरहित भजन करने वाले 'रणधीर' हैं।

अथवा—श्रुति—पराञ्चि खानि व्यतृणत्स्वयंभूस्तस्मात्पराङ् पश्यति नान्तरात्मन् ।
कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्तचक्षुरमृतत्त्वमिच्छन् ।(क०उ०२।१।१)

श्रुत्यर्थ—स्वयं प्रकट होने वाले परमेश्वर ने समस्त इन्द्रियों को बाहर की ओर जाने वाली ही बनाया है; इसलिये (मनुष्य इन्द्रियों के द्वारा प्रायः) बाहर की वस्तुओं को ही देखता है, अन्तरात्मा को नहीं। किसी भाग्यशाली (धीर) बुद्धिमान् मनुष्य ने ही अमर पद को पाने की इच्छा करके चक्षु आदि इन्द्रियों को बाह्य विषयों की ओर से रोककर (लौटा कर) अन्तरात्मा को देखा है।

अथवा—इन्द्रियों का विषयों में जाना ही 'छल' है, और इन्द्रियों का विषयों से रोकना ही 'धीर' का काम है, जो विषयों से मनको हटाकर एकाग्र चित्त से श्रीरघुनाथजी को भजता है (साक्षात्कार करताहै, प्राप्त करता है) वही रणधीर है ।।

मूल चौ.—एहि कलि काल न साधन दूजा। जोग जग्य जप तप ब्रत पूजा।।
रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहि। संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहि।।१०४।।

अर्थ—(श्रीतुलसीदास जी कहते हैं–) इस कलिकाल में योग, यज्ञ, जप, तप, व्रत और पूजन आदि कोई दूसरा साधन नहीं है। बस, श्रीरामजी का ही स्मरण करना, श्रीरामजी का ही गुनगान और निरन्तर श्रीरामजी के गुण-समूह को सुनना चाहिये ॥१०४॥

प्रश्न—श्री गुरुदेव ? 'एहि कलि काल न साधन दूजा। जोग जग्य जप तप व्रत पूजा ॥' कथन का क्या रहस्य है ?

उत्तर—हे सौम्य ? 'योग' कलिकाल में योगाचार्य नहीं मिलते, खान, पान शुद्ध नहीं रहता, इससे प्राणायामादि हो नहीं सकते।

'यज्ञ' कलियुग में धन की कमी, वस्तु की अप्राप्ति, विद्वान् वेदपाठी न मिलने से यज्ञ हो ही नहीं सकता। 'जप' मन स्थिर न रहने के कारण–(अन्नादि शुद्ध नहीं मिलते, भक्ष्या-भक्ष्य सेवन, विषयों में आसक्ति होने से) जप भी नहीं हो सकता।

'तप' 'इन्द्रियनिग्रह परमंतपः' सो कलियुग में वातावरण दूषित होने से इन्द्रिय निग्रह दुस्तर है, इससे तप भी नहीं हो सकता। 'व्रत' अर्थात् शीतोष्ण, क्षुधा-पिपासा, दुःख-सुख, द्वन्दों का सहन करना अल्प सामर्थ्यवान् मनुष्यों से व्रत का पालन नहीं किया जा सकता। 'पूजा' में पहले मूर्ति प्राणप्रतिष्ठा आदि नहीं हो पाते, फिर पूजनादि की सामग्री शुद्ध नहीं मिलती, फिर पूजा में दम्भ ही शेष रहता है इससे पूजा संसार सागर से उद्धार करने में समर्थ नहीं होती, कलियुग में तो केवल नाम का आधार ही श्रेष्ठ और सुलभ है। यथा—

चौ० नहि कलि करम न भगति बिबेकू। राम नाम अवलंबन एकू ॥१।२७।४॥
कलिजुग केवल हरि गुन गाहा। गावत नर पावहिं भव थाहा ॥१।१०३।२॥
कलिजुग जोग न जग्य न ग्याना। एक आधार राम गुन गाना ॥
सब भरोस तजि जो भज रामहि। प्रेम समेत गाव गुनग्रामहि ॥७।१०३।३
सोइ भव तर कछु संसय नाहीं। नाम प्रताप प्रगट कलिमाही ॥७।१०३।४

इसी से कहा–'रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहिं। संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहि ॥'

अथवा-श्रुति–हरिॐ।द्वापरान्ते नारदो ब्रह्माणं जगाम कथं भगवन् !
गां पर्यटन्कलिं संतरेयमिति। स होवाच ब्रह्मा साधुपृष्टोऽस्मि
सर्वश्रुतिरहस्यं गोप्यं तच्छृणु येन कलिसंसारं तरिष्यसि।
भगवत आदिपुरुषस्य नारायणस्य नामोच्चारणमात्रेण–
निर्धूतकलिर्भवति। नारदः पुनः प्रपच्छ तन्नाम किमिति।
स होवाच हिरण्यगर्भः। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥१॥ इति षोडशकं नाम्नां-
कलिकल्मषनाशनम्। नातः परतरोपायः सर्ववेदेषु दृश्यते ॥२॥
(कलिसंतरण० उ० १, २)

श्रुत्यर्थ—हरि ॐ। द्वापर के अन्त में नारदजी-ब्रह्माजी के पास गये, और बोले—भगवन् ? मैं भूलोक में पर्यटन करता हुआ किस प्रकार कलि से त्राण पा सकता हूँ। ब्रह्माजी बोले—वत्स ? तुमने मुझसे आज बहुत अच्छी बात पूछी है। समस्त श्रुतियों का जो गोपीनीय रहस्य है, उसे सुनो—जिससे कलियुग में भवसागर को पार करलोगे। भगवन् आदि पुरुष नारायण के नामोच्चारण मात्र से मनुष्य कलि के दोषों का नाश कर डालता है। नारदजी ने फिर पूछा—वह कौनसा नाम है ? भगवन्, हिरण्यगर्भ ब्रह्माजी ने कहा—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

ये सोलह नाम कलि के पापों का नाश करने वाले हैं। इससे श्रेष्ठ कोई दूसरा उपाय सारे वेदों में भी नहीं देखने में आता यह श्रुति का आदेश है, उपदेश है, भगवन् नाम के समान और कोई साधन कलियुग में नहीं है, क्योंकि—

मूल चौ.-जासु पतित पावन बड़बाना। गावहिं कवि श्रुति संत पुराना॥
ताहि भजहि मन तजि कुटिलाई। राम भजें गति केहिं नहिं पाई॥१०५॥

अर्थ—पतितों को पवित्र करना जिनका महान् (प्रसिद्ध) बाना है—ऐसा कवि, वेद, संत और पुराण गाते हैं। रे मन ? कुटिलता त्यागकर उन्हें ही भज ? श्रीरामजी को भजने से किसने परम गति नहीं पायी ॥१०५॥

प्रश्न हे स्वामिन् ? 'जासु पतित पावन वड़ वाना। गावहिं कवि श्रुति संत पुराना॥' कहने का क्या भाव है ?

उत्तर—हे सुव्रत ? भाव है कि बाने तो बहुत हैं।

यथा—जेहि जन पर ममता अति छोहू।१।१३।३

चौ० गई बहोर गरीब नेवाजू। सरल सबल साहिब रघुराजू॥१।१३।४
एक बानि करुना निधान की। सो प्रिय जाकें गति न आनकी॥३।१०।४
दीन दयाल बिरिदु संभारी॥५।२७।२
सखा नीति तुम्ह नीकि बिचारी। मम पन सरनागत भयहारी॥५।४३।४
कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू। आएँ सरन तजउँ नहिं ताहू॥५।४४।१
जो सभीत आवा सरनाईं। रखिहउँ ताहि प्रानकी नाईं॥५।४४।४
मृषा न कहउँ मोर यह बाना।७।१६।४॥ इत्यादि। परन्तु यह पतित पावन बाना सबसे बड़ा है। ऐसा कवि, श्रुति, संत और पुराण कहते हैं।

'ताहि भजहि मन तजि कुटिलाई।' अर्थात्-भक्ति मार्ग में मन की कुटिलता ही प्रतिबन्ध है। यथा—चौ० सरल सुभाव न मन कुटिलाई। जथा लाभ संतोष सदाई। ७।४६।१॥ 'राम भजहि गति केहि नहिं पाई॥' अर्थात्

श्रुति—भक्तिनिष्ठो भव। भक्तिनिष्ठो भव। भक्त्या सर्वसिद्धयःसिध्यन्ति। भक्त्याऽसाध्यं न किञ्चिदस्ति। (त्रिपाद्विभूति महानारायण० उ० ८)

श्रुत्यर्थ—भक्ति निष्ठ बनो। भक्ति निष्ठ बनो। भक्ति के द्वारा सभी सिद्धियाँ सिद्ध (प्राप्य) होती हैं। भक्ति द्वारा कुछ भी असाध्य नहीं है। इस लिये तू तो भजन कर तेरा इतना ही कर्तव्य है, गति तो प्रभु के हाथ है, वह तो देंगे ही, तू चिन्ता न कर।

मूल छंद–पाई न केहिं गति पतित पावन राम भजि सुनु सठ मना।
गनिका अजामिल ब्याध गीध गजादि खल तारे घना॥
आभीर जमन किरात खस स्वपचादि अति अघरूप जे।
कहि नाम वारक तेपि पावन होहिं राम नमामि ते॥७।१३०।१॥

अर्थ – अरे मूर्ख मन ? सुन, पतित पावन श्रीरामजी को भजकर किसने परम गति नहीं पायी ? गणिका, अजामिल, ब्याध, गीध, गज आदि बहुत से दुष्टों को उन्होंने तार दिया॥ आभीर, यवन, किरात,खस, श्वपच (चाण्डाल) आदि जो अत्यन्त पाप रूप ही है वे भी केवल एक बार जिनका नाम लेकर पवित्र हो जाते हैं, उन श्रीरामजी को मैं नमस्कार करता हूं॥७।१३०।१॥

प्रश्न—हे भगवन् ? 'पाई न केहिं गति पतित पावन राम भजि सुनु सठ मना।' कहने का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—हे प्रिय दर्शन ? मन को शठ कहा, क्योंकि यह अनुनय-विनय एक नहिं सुनता है, न मानता है, उसी से पूछते हैं कि तू किसी महापापी को बता–जिसने भजन किया हो और परम पद न पाया हो ?

'गनिका अजामिल ब्याध गीध गजादि खल तारे घना॥' अर्थात् पाँच खलों के नाम गिनाए जो (दारुन अविद्या पंच जनित विकार अर्थात्-'अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष अभिनिवेश के स्वरूप ही हैं) इनको तार दिया। ये पाँच, इन पचक्लेशों के स्वरूप हैं। जैसे 'गणिका' अविद्या (अज्ञान) की मूर्ति ही है, जो शरीर अति अपवित्र है, जड़ है, दुःख रूप है, अनित्य है, उसे ही सजाती, तेल-फुलेल लगाती और श्रृङ्गार से सुन्दर बनाती, जिससे क्षणिक सुख के कारण, शतकोटि कल्पों के दुःख पर तनिक भी विचार नहीं किया। 'अजामिल' अस्मिता का स्वरूप ही है, जिसका जन्म पाप करने में ही बीता, जिसने चित् और चित्त को एकरूप ही मान रक्खा था, इसी से मरते दम तक भगवान् का नाम नहीं लिया, भय से पुकारा तो लड़के को ही। 'ब्याध' के राग का क्या ठिकाना जो सुत, दारा, कुटुम्ब में राग करने के कारण, उनके भरण पोषण करने के लिये हिंसा ही करता रहा। 'गीध' तो द्वेष रूप ही ठहरा–क्योंकि उसका जीवन ही द्वेष युक्त था। यथा–चौ० गीध अधम खग आमिष भोगी॥३।३३।१॥ 'गज' तो अभिनिवेश का पुतला ही ठहरा, जिसने मरण के भय से ही भगवान् को पुकारा॥ अतः यह पाँचों ही पञ्चक्लेशों से आबृत थे, इससे इन पाँचों को गिनाकर कहा–यह पाँचों ही भजन के प्रताप से संसार से पार होगये।

प्रश्न–हे प्रभो ? 'आभीर-जमन किरात खस स्वपचादि अति अघरूप जे।' कहने का क्या अभिप्राय है ?

उत्तर—हे प्रिय वत्स ? ये जातियाँ अति अघ (पाप) रूप हैं, इन जातियों में जन्म ही पूर्व कृत पापों से होता है, इन जातियों में भी पैदा होकर जिन्होंने भगवत् भजन किया, वह भी संसार से पार हो गये। यथा—

चौ० अपतु अजामिल गजु गनिकाऊ। भए मुकुत हरि नाम प्रभाऊ ॥१।२६।४

दो० स्वपच सबर खस जमन जड़, पावर कोल किरात।
रामु कहत पावन परम, होत भुवन विख्यात ॥२।१९४॥

प्रश्न—श्री गुरुदेव ? 'कहि नाम वारक तेपि पावन होहिं राम नमामि ते ॥' कथन का क्या रहस्य है ?

उत्तर—हे सौम्य ? चौ० वारक राम कहत जग जेऊ। होत तरन तारन नर तेऊ ॥ २।२१७।२

विबसहुँ जासु नाम नर कहहीं। जनम अनेक रचित अघ दहहीं ॥
सादर सुमिरन जे नर करहीं। भव वारिधि गोपद इव तरहीं ॥१।११९।२

अथवा-अहः संहरदखिलं सकृदुदयादेव सकललोकस्य।
तरणिरिव तिमिर जलधिं जयत मंगलहरेर्नाम ॥

अर्थात्-हरि का नाम लेते ही पाप इस प्रकार दूर हो जाते हैं, जिस प्रकार सूर्य के उदय होने से अन्धकार दूर हो जाता है।

अथवा-श्रुति-सदा रामोऽहमस्मीति तत्त्वतः प्रवदन्ति ये।
न ते संसारिणो नूनं राम एव न संशयः ॥
इत्युपनिषद्य एवं वेद स मुक्तो भवतीति।
श्रीरामरहस्य० उ० ५।१७ (श्रीरामोत्तर० ता० उ० ५)

श्रुत्यर्थ—जो लोग सदा यथार्थ रूप से समझकर 'मैं राम हूँ' यों कहते हैं, वे संसारी नहीं हैं। निश्चय ही वे श्रीराम के ही स्वरूप हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। यह उपनिषद् है। जो इस प्रकार जानता है, वह (दारुण अविद्या पंच जनित विकारों से) मुक्त हो जाता है। इस प्रकार 'होहि राम' श्रीगोस्वामीतुलसीदासजी ने संकेत किया व उपदेश दिया। जिन श्रीरामजी का ऐसा प्रभाव है उनको मैं नमस्कार करता हूं।

अथवा-'कहि नाम वारक तेपि पावन होहिं राम नमामि ते।' जो नाम के प्रभाव ते पवित्र राम हो गये हैं, उनको नमस्कार। इसमें 'राम' नाम देहली दीप न्याय है। 'राम नमामि ते' जो राम हो गये हैं, उनको नमस्कार ॥ यहाँ पर जो गति कही गई है, वह उपासक (साधक) के भाव पर निर्भर है, अर्थात् साधक (उपासक) जिस भाव से उपासना करता है, उसी भाव (स्वरूप) को प्राप्त हो जाता है। यथा—

श्रुति-तं यथा यथोपासते तथैव भवति। तस्मात् ब्राह्मणः पुरुषरूपं।
परंब्रह्मैवाहमिति भावयेत्। तद्रूपोभवति। य एवं वेद ॥ (मुग्दलोपनिषद ३)

श्रुत्यर्थ—इसकी जो जिस भाव से उपासना करता है, यह परम तत्त्व उसके लिये उसी रूप का हो जाता है। इसलिये साधक को पुरुषरूप परब्रह्म मैं ही हूँ', यह भावना करनी चाहिये। ऐसी भावना से वह उसी स्वरूप को प्राप्त हो जाता है। और जो इस रहस्य को इस प्रकार जानता है वह भी तद्रूप हो जाता है।

मूल छंद–रघुबंस भूषन चरित यह नर कहहिं सुनहिं जे गावहीं।
कलिमल मनोमल धोइ बिनु श्रम राम धाम सिधाव हीं॥
सतपंच चौपाईं मनोहर जानि जो नर उर धरै।
दारुन अविद्या पंच जनित बिकार श्रीरघुबर हरै॥७।१३०।२

अर्थ—जो मनुष्य रघुवंश-विभूषण श्रीरामजी का यह चरित्र कहते हैं, सुनते हैं, और गाते हैं, वे कलियुग के पाप और मन के मल को धोकर बिना ही परिश्रम श्रीरामजी के परम धाम को चले जाते हैं। अधिक क्या जो मनुष्य सतपंच (१०५) चौपाइयों को मनोहर (जो मन को हरने वाली अर्थात् मन को स्थिर कर अमन बनाने वाली–शुद्ध अद्वैत स्वरूप) जानकर (इनके अर्थ, रहस्य, भाव व तत्त्व का अनुभव कर) हृदय में धारण (मनन, निदिध्यासन) कर लेता है। उसके पाँच प्रकार की अविद्या से उत्पन्न विकारों को श्रीरघुनाथजी हरण कर लेते हैं। अर्थात् सारे (पूरे) राम चरित्र की तो बात ही क्या है, जो सतपंच (१०५) चौपाइयों को भी समझकर उनके अर्थादि हृदय में धारण कर लेता है, उसके भी अविद्या जनित क्लेश श्रीरामचन्द्रजी हर लेते हैं अर्थात् मुक्त कर देते हैं।

प्रश्न—हे स्वामिन्? रघुबंस भूषन चरित यह नर कहहिं सुनहिं जे गावहीं।' कहने का क्या भाव है?

उत्तर—हे सुव्रत? श्रीरामजी रघुकुल भूषण हैं। यथा—

चौ० परमात्मा ब्रह्म नर रूपा। होइहि रघुकुल भूषन भूपा॥७।४८।४

'यह नर' कहकर आदेश दिया कि किसी देश किसी वर्णाश्रम या इनसे बाहर का सब किसी को रामचरित कहने, सुनने और गाने का अधिकार है। यथा—

छंद–जो सुनत गावत कहत समुझत परमपद नर पावई॥४।३०॥

'कलिमल मनोमल धोइ बिनु श्रम राम धाम सिधाव हीं॥' अर्थात्–कलिमल= समय कृत दोष–चौ० कलि केवल मल मूल मलीना॥१।२७।२॥ 'मनोमल' अर्थात्–अन्तःकरण की मलिनता। यह दोनों दोष श्रीरामचरित के कहने, सुनने, व गाने से धुल जाते हैं तब बिना कष्ट के ही राम धाम चले जाते हैं। अथवा–'राम धाम सिधाव हीं' अर्थात्–श्रीराम स्वरूप मोक्ष को प्राप्त होंगे। एवं सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य, इन चारों प्रकार की मोक्षों में से किसी को प्राप्त होंगे, या कैवल्य (निर्वाण पद) मोक्ष को प्राप्त होंगे।

प्रश्न–हे भगवन् ? 'सत पंच चौपाई मनोहर जानि जो नर उर धरै।
दारुन अविद्या पंच जनित विकार श्रीरघुवर हरै॥' कहने का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर– हे प्रिय दर्शन ? सत पंच चौपाइयों के बारे में अनेक विद्वानों के अनेक मत पाये जाते हैं–कोई 'सतपंच' से–सात-पाँच बोल चाल है ऐसा मानते हैं। कोई 'सतपंच' ७+५ =१२, कोई ७×५=३५, कोई पाँच-सात ५७, कोई 'सतपंच' १०५, कोई पाँच सत ५०० और कोई ५१०० मानते हैं। कोई कहते हैं कि ५, ७, १२, ३५, ५७, १०५, ५०० के चुनने से शेष ग्रन्थ का अनादर करते हैं, क्या इन संख्याओं की चौपाई मनोहर है शेष अमनोहर है। ऐसा कहने वालों को विचार करना चाहिये कि किसी ब्रह्मभोज में अनेक पदार्थ षट्रस युक्त ३६ प्रकार के बनाये गये हैं। सभी स्वादिष्ट रुचिकर और मनोहर हैं, परन्तु भोजन करने वालों में से कोई किसी पदार्थ को पसन्द करता है. तो कोई किसी को, क्या इन पसन्द करने वालों की रुचि अन्य पदार्थों को फीका, वे स्वाद और अमनोहर कह सकते हैं। एक जिसे रुचिकर मानता है दूसरा उसे पसन्द नहीं करता, तीसरा अन्य पदार्थों को रुचिकर मानता है, इसी प्रकार किसी संख्याओं को ग्रहण करने से शेष का अनादर या वह मनोहर नहीं है यह प्रश्न ही नहीं उठता यह प्रश्न केवल ना समझी से ही उठाया गया है। इस पर अनेक पुरुषों के विचारों को देखा गया तो बहुमत से १०५ चौपाइयों का ही ग्रहण पाया गया, इस पर भी यह प्रश्न उठाये गये कि ग्रन्थकार को ऐसा ही अभीष्ट होता तो उन चौपाइयों की तरफ कुछ संकेत होता, इस पर विचार किया जाये तो ग्रन्थकार स्पष्ट शब्दों में कह रहे हैं कि जिन चौपाइयों से 'दारुन अविद्या पंच जनित विकार' नाश हो जायें, विकारों का नाश ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान से ही सम्भव है, जिन चौपाइयों से ऐसा ज्ञान हो जाये वह १०५ चौपाई मनोहर हैं। किन्हीं महापुरुषों ने यह कहा है कि पंच तीन प्रकार के होते हैं–सतपंच, पंच और असतपंच। इनमें से जो सतपंच हों, उनका जो निश्चय हो वह मनोहर है। इस प्रसंग पर इस चौपाई को कहा गया है। यथा –

चौ० सिव अज सुक सनकादिक नारद। जे मुनि ब्रह्म विचार बिसारद॥७।१२२।६

ये सत पंच हैं और इनका निश्चय–यथा—

चौ० सब कर मत खग नायक ऐहा। करिअ राम पद पंकज नेहा॥७।१२२।७

यह सतपंचों का निष्कर्ष (फैसला) है। इसके अर्थ, रहस्य भाव और तत्त्व पर बिचार करना है। जैसे स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर, कारण शरीर और तुरीय एवं तुरियातीत होते हैं. वैसे ही शास्त्र लेख स्थूल शरीर, उसका अर्थ सूक्ष्म शरीर, रहस्य-कारण शरीर भाव तुरीय और तत्त्वत: तुरीयातीत माना गया गया है। और 'करिअ राम पद पंकज नेहा।' इसमें कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड और ज्ञानकाण्ड–वेद के त्रय काण्ड भी कहे गये हैं—'कर्म' 'करिअ राम पद पंकज नेहा॥' अर्थात्–श्रीराम जी के कमल रूपी चरणों के प्रेम से पूजा-अर्चा करिये यह कर्म हुआ। उपासना' 'करिअ राम पद पंकज नेहा।' अर्थात्

'रामपद' विराट्, हिरण्यगर्भ, ईश्वर और ब्रह्म में प्रेम करिये। अथवा–'रामपद' अर्थात्–श्रीरामवाक्य (पद कहते हैं वाक्यों को जैसे कबीर के पद, रहीम के पद, श्रीतुलसीदास जी के पद) श्रीरामपद (वाक्य) कैसे हैं, जैसे पंकज=कमल, कमल जल से पैदा होता, जल में रहता परन्तु जल से अलग यानी जल उसे स्पर्श नहीं कर पाता–ऐसे ही श्रीराम पद (वाक्य) हैं, इसका पूरा रहस्य देखिये–चौपाई १०१ पृष्ठ २०७ से २१० पर। सार यह रहा कि जिन चौपाइयों से 'राम पद' मोक्ष प्राप्त हो और अविद्या (अनर्थ) नाश हो जाये। अत: उस दारुण अविद्या (पंच पर्वा अविद्या) का स्वरूप शास्त्रों में ऐसा कहा गया है। यथा—

तमो मोहो महामोहस्तामिस्रोह्यन्ध संज्ञक:।
अविद्यापञ्चपर्वैषा साङ्ख्य योगेषु कीर्तिता ।। (साङ्ख्य १२)

इसी को पात० योग० २।३ में पंचक्लेश कहा है। यथा—

अविद्यास्मिता रागद्वेषाभिनिवेशा: क्लेशा: ।।

भावार्थ—तम: (अविद्या), मोह: (अस्मिता), माहमोह: (राग), तामिस्र) (द्वेष), और अन्धतामिस्र (अभिनिवेश) यह साङ्ख्य और पात=योग में पंचपर्वा अविद्या कही गई है। ये 'तम', आदि अवान्तर (भेद से बासठ ६२) प्रकार के हैं। यथा—

भेदस्तमसोऽष्टविधो मोहस्य च दशविधो महामोह:—
तामिस्रोऽष्टादशधा तथा भवत्यन्ध तामिस्र ।। (सां० का० ४८)

अर्थात्–तम और मोह का आठ-आठ प्रकार का भेद है। महामोह दश प्रकार का है। तामिस्र और अन्धतामिस्र का भेद अठारह-अठारह प्रकार का है। वह इस प्रकार–तम: (अविद्या)–प्रधान, महत्तत्त्व, अहंकार और पञ्चतन्मात्रा इन आठ अनात्म प्रकृतियों में आत्म भ्रान्ति रूप अविद्या संज्ञक तम आठ विषय वाला होने से आठ प्रकार का है।

मोह (अस्मिता) गौण फल रूप–अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति प्राकाम्य, इशित्व और वाशित्व आदि आठ ऐश्वर्यों में जो परम पुरुषार्थ भ्रान्ति रूप ज्ञान है वह अस्मिता संज्ञक मोह आठ प्रकार का कहलाता है।

माहमोह (राग) शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध संज्ञक लौकिक और दिव्य विषयों में जो अनुराग है, वह राग संज्ञक महामोह कहा जाता है–यह दश बिषय वाला होने से दश प्रकार का है।

तामिस्र (द्वेष) उपर्युक्त आठ ऐश्वर्य और दश विषयों के भोगार्थ प्रवृत्त होने पर किसी प्रतिबन्धक से इन विषयों के भोग लाभ में विघ्न पड़ने से जो प्रतिबन्धक विषय दोष होता है, वह तामिस्र कहलाता है–यह १८ भेद वाला होने से १८ प्रकार का है।

अन्धतामिस्र (अभिनिवेश) आठ प्रकार के ऐश्वर्य और दश प्रकार के दिव्य-अदिव्य विषय भोग के उपस्थित होने पर भी जो चित्त में भय रहता है कि यह सब प्रलयकाल में नष्ट हो जायेंगे, यह अभिनिवेश अन्धतमिस्र कहलाता है। अभिनिवेशरूप अन्धतामिस्र भी

उपर्युक्त अठारह के नाश का भय रूप होने से अठारह प्रकार का है। इन पंच क्लेशों की जननी अविद्या ही है। अविद्या के शिथिल होने पर सब क्लेश शिथिल हो जाते हैं। इसलिये अविद्या का स्वरूप कहते हैं। यथा—

अनित्याशुचि दुःखानात्मसु नित्य शुचि सुखात्मख्यातिरविद्या ॥ (पात० यो० २।५)

अर्थात् (१) अनित्य में नित्य बुद्धि, (२) अपवित्र में पवित्र बुद्धि, (३) दुःख में सुख बुद्धि, और अनात्म में आत्म का ज्ञान ऐसे अविद्या चार प्रकार की है। (१) सम्पूर्ण जगत् उसकी सम्पत्ति अनित्य है—उत्पत्ति विनाशी होने से। इसको नित्य मानना। (२) शरीर कफ, रुधिर, मल, मूत्र का स्थान होने से महान् अपवित्र है—यहाँ तक अपवित्र है कि इसके सम्बन्ध से शुद्ध अन्न विष्ठा बन जाता है, जिसे पापनाशिनी, अधमउद्धारणी कहते हैं, वह श्रीगंगाजी का जल इसके अंग-संग से मूत्र हो जाता है। यथा—

चन्दनागुरु कर्पूर प्रमुखा अतिशोभनाः ॥२९॥
मलं भवन्ति यत्स्पर्शात्तच्छरीरं कथं सुखम्।
भक्ष्यभोज्यादयः सर्वे पदार्था अतिशोभनाः ॥३०॥
विष्ठाभवन्ति यत्संगात्तच्छरीरं कथं सुखम्।
सुगन्धि शीतलं तोयं मूत्रं यत्संगमाद् भवेत् ॥३१॥
तत्कथं शोभनं पिण्ड भवेद् ब्रूहि कपेऽधुना।
अतीव धवलाः शुद्धाः पटायत्संगमे न हि ॥३२॥
भवन्ति मलिनाः स्वेदात्तत्कथं शोभनं भवेत्। (स्कं० पु० ब्र० ४५।२९ से ३३)

अर्थ—(श्री रघुनाथजी ने हनुमानजी से कहा—) चन्दन, अगर और कपूर आदि पदार्थ अत्यन्त शोभन हैं; परन्तु जिसके स्पर्श से यह भी मल रूप हो जाते हैं, वह शरीर सुख (पवित्र) रूप कैसे माना जा सकता है। जिसके सम्पर्क से अत्यन्त सुन्दर भक्ष्य-भोज्य आदि सब उत्तम पदार्थ विष्ठा रूप में बदल जाते हैं, वह शरीर सुख रूप कैसे हो सकता है। जिसके संग से सुगन्धित एवं शीतल जल-मूत्र रूप हो जाता है, उस शरीर को शोभन कैसे कहा जा सकता है। कपे ? तुम्ही बताओ, जिसके संसर्ग में आने पर अत्यन्त सफेद एवं धुले हुए वस्त्र भी पसीने आदि के लगने से मैले हो जाते हैं, वह शरीर कैसे शोभन माना जा सकता है। इस शरीर के समान गुणहीन, नीच तथा शोचनीय वस्तु कोई नहीं है, ऐसा श्रुति कहती है। यथा—

नास्ति देह समः शोच्यो नीचो गुण विवर्जितः ॥ (इति श्रुतेः मह० उ० ३।२७)

इस शरीर की अपवित्रता कहाँ तक कही जाये जो शुद्ध, बुद्ध, नित्य, सत्य, मुक्त, आनन्द स्वरूप कूटस्थ तादात्म्य सम्बन्ध से रोता, चिल्लाता, दुःखीसा हो जाता है। ऐसा अपवित्र, तथा अन्याय, चोरी, हिंसा आदि से कमाया धन अपवित्र, अधर्म, पाप, छल, कपट, हिंसा आदि से रंगा हुआ अन्तःकरण अपवित्र होता है, इनको पवित्र मानना।

(३) संसार के समस्त विषय दुःख रूप हैं, उनमें सुख समझना।

(४) शरीर, इन्द्रिय, मन, चित्त आदि ये सब जड़ हैं, इनको चैतन्यात्मा मानना, यही अविद्या का रूप है यही प्रथम क्लेश-तम रूप है।

दृग्दर्शन शक्त्योरेकात्मतेवास्मिता ।। (पात० यो० २।६)

अर्थात् दृक् शक्ति और दर्शशक्ति का एक रूप जैसा भान होना 'अस्मिता' क्लेश है। पुरुष द्रष्टा है-चित्त दिखाने वाला उसका एक करण है। पुरुष चैतन्य है-चित्त जड है। पुरुष अक्रिय है–चित्त प्रसव धर्मी अर्थात् क्रिया वाला है। पुरुष केवल है–चित्त त्रिगुणमय है। पुरुष अपरिणामी चित्त परिणामशील है। पुरुष स्वामी और चित्त उसकी सम्पत्ति है। इस प्रकार दोनों अत्यन्त भिन्न हैं। परन्तु अविद्या के कारण दोनों में भेद की प्रतीती जाती रहती है और अभिन्नता दीखती है यही अस्मिता नाम का दूसरा क्लेश है। इसी को हृदय ग्रन्थि भी कहते हैं। यथा—

चौ० जड़ चेतन हि ग्रंथि परि गई। जदपि मृषा छूटत कठिनई ।।७।११७।२।।

सुखानुशयी रागः। (पात० यो० २।७)

अर्थात् सुख भोग के पीछे जो चित्त में उसके भोग की इच्छा रहती है वह 'राग' है। शरीर इन्द्रिय और मन में आत्माध्यास हो जाने पर जिन वस्तुओं और विषयों में सुख प्रतीत होता है, उनमें और उनके प्राप्त करने के साधनों में जो इच्छा रूप तृष्णा और लोभ पैदा हो जाता है, उनके सस्कार चित्त में पड़ जाते हैं उसी का नाम 'राग' क्लेश है।

दुःखानुशयी द्वेषः ।। (पात० यो० २।८)

अर्थात्–जिन वस्तुओं अथवा जिन साधनों से चित्त में दुःख प्रतीत हो, उससे जो घृणा और क्रोध हो, उसके जो संस्कार चित्त में पड़ते हैं उसको 'द्वेष' क्लेश कहते हैं।

स्वरसवाही विदुषोऽपि तथारूढोऽभिनिवेशः ।। (पा० यो० २।९)

अर्थात्–(जो मरने का भय हर एक प्राणी में) स्वभावतः बह रहा है और विद्वानों के लिए भी ऐसा ही प्रसिद्ध है (जैसा कि मूर्खों के लिए) वह अभिनिवेश क्लेश है। मर्थात् मरण भय के संस्कार जो जन्म-जन्मान्तरों से प्राणीमात्र के चित्त में स्वभाव से ही चले आ रहे हैं। अभिनिवेश क्लेश है। (विदुषः–यह शब्द यहाँ केवल शब्दों के जानने वाले विद्वान् के लिए प्रयुक्त हुआ है) अर्थात्–वह पुरुष जिसने कोरे शास्त्रों को पढ़ा है और क्रियात्म रूप से योग द्वारा अनुभव तथा यथार्थ ज्ञान प्राप्त नहीं किया है। अभिनिवेशका का भाव है—

मा न भूयं भूयासमिति। (पात० यो० २।१०)

अर्थात्–ऐसा न हो कि मैं न होऊँ, किन्तु मैं बना रहूं।

शरीर विषयादिभिः मम वियोग मा भूदिति। (पात० यो० २।११)

अर्थात्–शरीर विषयादि (रूपरसादि) से मेरा वियोग न हो।

क्लेश मूलः कर्माशयो दृष्टादृष्ट जन्यवेदनीयः (पात० यो० २।१२)

अर्थात्–क्लेश जिसकी जड़ है ऐसी कर्म फलों की वासना, वर्तमान और अगले जन्मों में भोगने योग्य है।

सतिमूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः पात० यो० २।१३)

अर्थात्–अविद्या आदि क्लेशों की जड़ के होते हुए उस (कर्माशय) का फल जाति, आयु और भोग होता है। कर्म का फल जाति, आयु, भोग है और इनका स्वाद सुख और दुःख रूप है।

तेह्लाद परितापफला पुण्यापुण्य हेतुत्वम् ॥ (पात-यो० २।१४)

अर्थात्–वे (जाति, आयु और भोग) सुख दुःख रूपी फल देने वाले होते हैं, क्योंकि उनके कारण पुण्य और पाप हैं।

परिणाम ताप संस्कार दुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च–
दुःखमेव सर्वं विवेकिनः ॥ (पात० यो० २।१५)

अर्थात्–क्योंकि (विषय सुख के भोग काल में भी) परिणाम दुःख ताप। दुःख और संस्कार दुःख बना रहता है, और गुणों के स्वभाव में भी विरोध है, इसलिये विवेकी पुरुष के लिये सब कुछ (सुख भी जो विषय जन्य है) दुःख ही है।

ऐसी प्रवल अविद्या जिसमें सुख भी दुःख ही है, उसका नाश केवल तत्त्व (ब्रह्मात्मैक्य) ज्ञान से ही होता है–श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजी का यही निश्चय विचार है। यथा—

तुलसीदास हरि गुरु करुना विनु विमल विवेक न होई।
विनु विवेक संसार-घोर-निधि पार न पावै कोई ॥ (विनय ११५)

हे तुलसीदास ? भगवान और गुरु की दया के बिना संशयशून्य विवेक नहीं होता और विवेक हुए बिना इस घोर संसार सागर से कोई पार नहीं जा सकता ॥ अथवा–

तुलसिदास सव विधि प्रपंच जग जदपि झूठ श्रुति गावै।
रघुपति-भगति-संत-संगति विनु-को भव-त्रास नसावै ॥ (विनय १२१)

हे तुलसीदास ? वेद कह रहे हैं कि यद्यपि संसारिक प्रपंच सब प्रकार से असत्य है, किन्तु रघुनाथजी की भक्ति और संतों की सङ्गति के बिना किसमें सामर्थ्य है जो इस संसार के भीषण भय का नाश कर सके, इस भ्रम से छुड़ा सके ?

अथवा–स्रग महँ सर्प विपुल भय दायक, प्रगट होइ अविचारे।
वहु आयुद्ध धरि, वल अनेक करि हारहिं मरइ न मारे ॥ (वि० १२२)

जैसे अज्ञान के कारण माला में महान् भयावना सर्प का भ्रम हो जाता है, और वह (मिथ्या सर्प का भ्रम न मिटने तक) अनेक हथियारों के द्वारा बल से मारते-मारते थक जाने पर भी नहीं मरता, साँप होता तो हथियारों से मरता; इसी प्रकार यह अज्ञान से नासने वाला संसार भी बिना तत्त्व ज्ञान हुए, बाहरी साधनों से नष्ट नहीं होता ॥

परन्तु तत्त्व ज्ञान केवल पुस्तकीय एवं वाचकीय न हो यथार्थ हो, थोथे शास्त्र ज्ञान से अथवा वाचिक ज्ञान से दुःख दूर नहीं होता, जब तक तत्त्व ज्ञान का हृदय में प्रकाश नहीं होता–यहीं दिखाते हैं। यथा—

वाक्य-ग्यान अत्यन्त निपुन भव पार न पावै कोई।
निसि गृह मध्य दीपकी बातन्ह, तम निवृत्त नहिं होई ।।
जैसे कोई इक दीन दुखित अति असन हीन दुख पावै।
चित्र कलपतरु कामधेनु, गृह लिखे न विपति नसावै ।।
षटरस बहुप्रकार भोजन कोउ, दिन अरु रैन बखानै।
बिनु बोले संतोष-जनित सुख खाइ सोइ पै जानै ।।
जब लगि नहिं निज हृदय प्रकाश, अरु विषय-आस मन माहीं।
तुलसीदास तब लगि जग-जोनि-भ्रमत सपनेहुँ सुख नाहीं ।। (वि० १२३)

जैसे रात के समय घर में केवल दीपक की बातें करने से अंधेरा दूर नहीं होता, वैसे ही कोई वाचिक ज्ञान में कितना ही निपुण क्यों न हो संसार सागर को पार नहीं कर सकता। जैसे कोई एक दीन, दुखिया भोजन के अभाव में भूख के मारे दुख पा रहा हो और कोई उसके घर में कल्पवृक्ष तथा कामधेनु के चित्र लिख-लिख कर उसकी विपत्ति दूर करना चाहे तो कभी दूर नहीं हो सकती। वैसे ही केवल शास्त्रों की बातों से ही मोह (अज्ञान) नहीं मिटता। कोई मनुष्य रात दिन अनेक प्रकार के षट् रस भोजनों पर व्याख्यान देता रहे, (परन्तु भूख नहीं जाती. और जिसने बिना ही कुछ बोले वास्तव में भोजन कर लिया है, भोजन कर लेने पर भूख की निवृत्ति होने से जो संतुष्टि होती है उसके सुख को तो वही जानता है, (इसी प्रकार कोरी व्याख्यानबाजी से कुछ नहीं होता, करने पर ही कार्य सिद्धि होती है) जब तक अपने हृदय में तत्त्व ज्ञान का प्रकाश नहीं हुआ और मन में विषयों की आशा बनी हुई है, तब तक हे तुलसीदास ? इस जगत् की योनियों में भटकना ही पड़ेगा, सुख सपने में भी नहीं मिलेगा। फिर सुख का सम्बन्ध बताते हैं। यथा—

सुभग सेज सोवत सपने, वारिधि बूड़त भय लागै।
कोटिहुं नाव न पार पाव सो, जब लगि आपु न जागै ।। (विनय १२१)

जैसे कोई सुन्दर सेज पर सोया हुआ मनुष्य सपने में समुद्र में डूबने से भयभीत हो रहा हो पर जब तक वह स्वयं जाग नहीं जाता, तब तक करोड़ों नौकाओं द्वारा भी वह पार नहीं जा सकता। उसी प्रकार यह जीव अज्ञान निद्रा में अचेत हुआ संसार सागर में डूब रहा है। परमात्मा के तत्त्वज्ञान में जागे बिना सहस्रों साधनों द्वारा भी यह दुःखों से मुक्त नहीं हो सकता।

अथवा–श्रुति भगवती भी ऐसा ही आदेश देती है। यथा—
श्रुति–अतः सर्वेषां कैवल्यमुक्तिर्ज्ञानमात्रेणोक्ता ।।

न कर्म सांख्य योगोपासनादिभिरित्युपनिषत् । (मुक्तिक० उ० १।६)

श्रुत्यर्थ—अतः सबके लिये केवल ज्ञान द्वारा ही कैवल्य मुक्ति कही गई है, कर्मयोग, साङ्ख्ययोग तथा उपासनादि के द्वारा नहीं। यह उपनिषद् है ।।

मूल दो०—राम चरन रति जो चह, अथवा पद निर्वान ।
भाव सहित सो यह कथा, करउ श्रवन पुटपान ।।७।१२८।।

अर्थ श्रीरामजी के चरणों में रति चाहता हो या मोक्ष पद चाहता हो, वह इस कथा रूपी अमृत को प्रेमपूर्वक अपने कान रूपी दोने से पिये ।।७।१२८।।

प्रश्न—हे प्रभो ? 'राम चरन रति जो चह' कहने का क्या अभिप्राय है ?

उत्तर—हे प्रियवत्स ? चरणरति और भक्ति एक होते हुए भी इनमें कुछ अन्तर है (विशेष जानकारी के लिये देखिये—चौ० ६७ के अन्तर्गत दो० ३।१४ पृष्ठ १४२ से १४४)

प्रश्न—हे श्रीगुरुदेव ? 'अथवा पद निर्वान' कथन का क्या रहस्य है ?

उत्तर—हे सौम्य ? 'सर्व दुःखोपशम लक्षणं परमानन्द रूपं निर्वाणम्' अर्थात्—सब दुःखों से रहित परमानन्द स्वरूप ब्रह्म ही ब्रह्म 'निर्वाण' है । अथवा निः+वाण=निः =नहीं+वाण—पाँच जिसमें पंच क्लेश न हों वह निर्वाण पद (मोक्ष) है—जहाँ कहीं गिनती में संख्या लिखनी होती है, वहाँ संकेताक्षरों में—१ की जगह ब्रह्म, २ के लिये पक्ष, ३ की जगह देव, ४ के लिये वेद और ५ के लिये वाण का प्रयोग किया जाता है । ज्योतिष में वाण ज्ञान पाँच संख्या में आता है । जैसे रोग, वह्नि, नृप, चौर और मृत्यु इन पाँच को वाण कहा गया है । कामदेवजी के पाँच तीर हैं, उनको भी पञ्चवाण कहते हैं । यथा—

चौ० प्रगटेउ विषम वान झक केतू ।।१।८३।४।। अर्थात् तब विषम (पाँच) वाण धारण करने वाला कामदेव प्रकट हो गया । अथवा—

चौ० देखि रसाल त्रिटप वर साखा । तेहि पर चढ़ेउ मदनु मन माखा ।।
सुमन चाप निज सर संधाने । अति रिस ताकि श्रवन लगि ताने ।।१।८७।१।।
छाडे विषम विसिख उर लागे । छूटि समाधि संभु तब जागे ।।१।८७।२।।

कामदेवजी ने तीक्ष्ण पाँच बाण छोड़े, जो शिवजी के हृदय में लगे, तब उनकी समाधि टूट गयी और वे जग गये ।

इस दोहे में बाण का तात्पर्य है पञ्चक्लेश (अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशः क्लेशाः) न हो वही निर्वाणपद कैवल्य मोक्ष है । क्लेशों का विस्तृत विवरण चौपाई १०५ के अन्तर्गत छन्द २ दो० ७ १३० पृष्ठ २१९ से २२२ पर देखिये) ।

प्रश्न—हे स्वामिन ? 'भाव सहित सो यह कथा' कहने का क्या भाव है ?

उत्तर—हे सुव्रत ? भाव के बारे में श्रीभगवान् कहते हैं । यथा—

भाव का भूखा हूँ मैं भाव ही सबका सार है,
भाव से मुझको भजे तो भव से बेड़ा पार है ।
भाव बिनु सब भी दे डाले तो मैं लेता नहीं,
भाव से फूल का एक पत्ता मुझे स्वीकार है ।।

अन्न-धन-वस्त्र-भूषण कुछ न मुझको चाहिए,
आप हो जाये मेरा यही मेरा उपहार है।
जो अभिन्नता के भाव से रहता सदा भरपूर है,
अभेद दर्शन भाव ही करेगा तेरा उद्धार है॥

अथवा—सो० भाव वस्य भगवान, सुख निधान करुणा भवन ।७।९२ (ख)

अर्थात्—सुख के भण्डार, करुणाधाम भगवान् भाव (अनन्यता) के वश है।

सो० तुम्ह परिपूरन काम, जान सिरोमनि भावप्रिय ।।१।३३१।।

अर्थात्—तुम पूर्ण काम हो, सुजान शिरोमणि हो और भावप्रिय हो (तुम्हें अनन्य प्रेम प्यारा है)

अथवा—भाव=प्रेम और श्रद्धा, विश्वास और दृढ़ता तथा हार्दिक तन्मयता के साथ 'सो यह कथा' रामचरितमानस अद्वैतवाद को 'करउ श्रवन पुटपान ।।' अर्थात्—कान रूपी दोने से पियें ॥ यथा—

चौ० जे सुनि सादर नर बड़ भागी। भव तरिहहिं ममता मद त्यागी ।१।१५२।२

दो० सकल सुमंगल दायक, रघुनायक गुन गान।
सादर सुनहिं ते तरहिं भव, सिंधु विना जल जान ।।५।६०।।

चौ० भव सागर चह पार जो पावा। राम कथा ता कहँ दृढ़ नावा ।।७।५३।२।।

अथवा—यः सेवते मामगुणं गुणात्परं, हृदाकदा वा यदिवा गुणात्मकम्।
सोऽहं स्वपादाञ्चितरेणुभिः स्पृशन्, पुनातिलोक त्रितयं यथारविः ।।
विज्ञानमेतदखिल श्रुतिसारमेकं, वेदान्तवेद्य चरणेनमयैव गीतम्।
यः श्रद्धया परिपठेद् गुरुभक्तियुक्तो, मद्रूपमेति यदि मद्वचनेषुभक्तिः ।।
(रामगीता—अध्यात्म रामायण ७।५।६१,६२)

अर्थात्—जो पुरुष अपने चित्त से मुझ गुणातीत निर्गुण का अथवा कभी-कभी मेरे सगुण स्वरूप का भी सेवन करता है वह मेरा ही रूप है, वह अपनी चरण रज के स्पर्श से सूर्य के समान सम्पूर्ण त्रिलोकी को पवित्र कर देता है। यह अद्वितीय ज्ञान समस्त श्रुतियों का एक मात्र सार है। इसे वेदान्तवेद्य भगवत्पाद मैंने ही कहा है। जो गुरु भक्ति सम्पन्न पुरुष इसका श्रद्धापूर्वक पाठ करेगा, उसकी यदि मेरे वचनों में प्रीति होगी तो वह मेरा ही रूप हो जायेगा।

॥ इति श्रीमद्रामचरितमान से सकलकलिकलुष विध्वंसने ॥
* उत्तर काण्डान्तर्गते सप्तमः सोपानः समाप्तः *

परिशिष्ट

॥ प्रसंग प्राप्त षड्लिंग निरूरण ॥ यथा—

उपक्रमोपसंहारावभ्यासोऽपूर्वता फलम् ।
अर्थवादोपपत्ती च लिंगतात्पर्यनिर्णये ॥

तात्पर्य निर्णय के ये षड् (६) लिंग हैं—

(१) उपक्रम और उपसंहार, इन दोनों की एक रूपता, (२) अभ्यास, (३) अपूर्वता, (४) फल, (५) अर्थवाद, (६) उपपत्ति ।

इन षड् विधि लिंगों की उपेक्षा करके यदि केवल मनघड़न्त अर्थ किया जाये तो शास्त्र वाक्यों का वास्तविक अर्थ हाथ नहीं आ सकता । अतः इन लिंगों के आधार पर ही ग्रन्थ का आशय जानना चाहिये । इन शतपंच (१०५) चौपाइयों के उपक्रम उपसंहारादि दिखाये जाते हैं—

(१) उपक्रम–श्रीगुर पद नख मनि गन जोती । सुमिरत दिव्य दृष्टि हियँ होती ॥
उघरहिं विमल विलोचन ही के । मिटहिं दोष दुख भव रजनी के ॥१॥

उपसंहार–छं० दारुन अविद्या पंच जनित विकार श्रीरघुवर हरै ।.७।१३०।२

उपक्रम में श्रीगुरुदेवजी–उपसंहार में श्रीरघुवर में समानता है । उपकम में भवरूपी रात्रि के दोष 'जन्म-मरणादि' मिट जाते हैं अर्थात्–निर्वाण पद मोक्ष हो जाती है और उपसंहार 'दारुण अविद्या पंच जनित' शरीर संघात आदि विकारों का हरना-निर्वाण पद मोक्ष की प्राप्ति दोनों की एक रूपता है ।

(२) अभ्यास-छान्दोग्योपनिषद् अध्याय ६ खण्ड ८ मन्त्र ७ से अध्याय समाप्ति तक नौ (९) बार (तत्त्वमसि) महावाक्य कर अभ्यास कहा गया है । यहाँ पर यथा—

(१) राम सच्चिदानन्द दिनेसा । नहिं तहँ मोह निसा लवलेसा ॥२३॥
सहज प्रकास रूप भगवाना । नहिं तहँ पुनि विग्यान विहाना ॥ (तत्त्वमसि)

(२) नेति नेति जेहि वेद निरूपा । निजानंद निरुपाधि अनूपा॥४०॥
संभु विरंचि विष्नु भगवाना । उपजहिं जासु अंस ते नाना ॥ (तत्त्वमसि)

(३) राम ब्रह्म परमारथ रूपा । अविगत अलख अनादि अनूपा ॥६४॥
सकल विकार रहित गत भेदा । कहि नित नेति निरुपहि वेदा ॥ (तत्त्वमसि)

(४) जामवंत अंगद दुख देखी । कही कथा उपदेस विसेषी ॥७१॥
तात राम कहुं नर जनि मानहु । निर्गुन ब्रह्म अजित अज जानहु ॥ (तत्त्वमसि)

(५) तात राम नहिं नर भूपाला। भुवनेस्वर कालहु कर काला ॥७२॥
ब्रह्म अनामय अज भगवंता। व्यापक अजित अनादि अनंता ॥ (तत्त्वमसि)
(६) तुम्ह समरूप ब्रह्म अविनासी। सदा एक रस सहज उदासी ॥७८॥
अकल अगुन अज अनघ अनामय। अजित अमोघ सक्ति करुनामय ॥ (तत्त्वमसि)
(७) अगुन अदभ्र गिरा गोतीता। सब दरसी अनवद्य अजीता ॥८१॥
निर्मम निराकार निरमोहा। नित्य निरंजन सुख संदोहा ॥ (तत्त्वमसि)
(८) मन गोतीत अमल अविनासी। निर्विकार निरवधि सुख रासी ॥६५॥
सो तैं ताहि तोहि नहिं भेदा। वारि वोचि इव गावहिं बेदा ॥ (तत्त्वमसि)
(९) सोहमस्मिइति बृत्ति अखंडा। दीप सिखा सोइ परम प्रचंडा ॥६६॥
आतम अनुभव सुख सुप्रकासा। तव भव मूल भेद भ्रम नासा ॥ (अहंब्रह्मास्मि)

यह नव (९) बार-अभ्यास कहा गया है।

(३) अपूर्वता—

चौ० बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करम करइ बिधि नाना ॥
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी ॥२८॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा ॥
अस सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी ॥२९॥
मन समेत जेहि जान न बानी। तरकि न सकहिं सकल अनुमानी ॥
महिमा निगम नेति कहि कहई। जो तिहुँ काल एक रस रहई ॥६०॥
सो० राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अबगति अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह ॥२।१२६॥
चौ० जगु पेखन तुम्ह देखनि हारे। बिधि हरि संभु नचावनि हारे।
तेउ न जानहिं मरमु तुम्हारा। और तुम्हहि को जाननि हारा ॥६५॥
दो० जो नहिं देखा नहिं सुना, जो मनहूँ न समाइ।
सो सब अद्‌भुत देखेउँ, बरनि कवनि बिधि जाइ ॥७।८० (क)

(४) फल—

छं० कहि नाम बारक तेपि पावन होहिं राम नमामिते ॥७।१३०।१॥
दो० राम चरन रति जो चह, अथवा पद निर्बान।
भाव सहित सो यह कथा, करउ श्रवन पुट पान ॥७।१२८॥
छं० रघुबंस भूषन चरित यह नर कहहिं सुनहिं जे गाव हीं।
कलिमल मनोमल धोइ बिनु श्रम रामधाम सिधावहीं ॥७।१३०।२॥

(५) अर्थवाद—

चौ० एक दुष्ट अतिसय दुखरूपा। जा बस जीव परा भवकूपा ॥
एक रचइ जग गुन बस जाकें। प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताकें ॥६१॥

ग्यान मान जहँ एकउ नाहीं। देख ब्रह्म समान सब माहीं ॥७०॥

इसमें अज्ञानी द्वैत वादियों की निन्दा और ज्ञानियों की स्तुति की गई है। अथवा—

चौ० जो माया सब जगहि नचावा। जासु चरित लखि काहुं न पावा॥
सोइ प्रभु भ्रू विलास खगराजा। नाच नटी इव सहित समाजा॥७६॥
सोइ सच्चिदानंद घन रामा। अज विग्यान रूप बल धामा॥
व्यापक व्याप्य अखंड अनन्ता। अखिल अमोघ सक्ति भगवंता॥८०॥

इसमें जो माया ऐसी बलवती है सो तुच्छ है, त्याज्य है और ब्रह्म सर्वज्ञ,अनन्त, अद्वितीय ग्राह्य है—यह अर्थवाद है।

(६) उपपत्ति—

चौ० विषय करन सुर जीव समेता। सकल एक तें एक सचेता॥
सब कर परम प्रकासक जोई। राम अनादि अवधपति सोई॥२४॥

दो० नयन विषय मो कहुँ भयउ, सो समस्त सुखमूल।
सबइ लाभ जग जीव कहँ, भए ईसु अनुकूल॥६०-१।३४१॥

यह षड् लिंग निरुपण कर सतपंच (१०५) चौपाइयों की अद्वितीयता, अनुपमता, सद् गाह्यता सूचित की।

श्रीरामजी अद्वितीय हैं उनके नाम, रूप, लीला और धाम भी अद्वितीय हैं। यथा—

रामस्य नामरूपं च लोलाधाम परात्परम्।
एतच्चतुष्टयं नित्यं सच्चिदानन्द विग्रहम्॥ (वसिष्ठ संहितायाम्)

अर्थात्—श्रीरामजीके नाम, रूप, लीला और धाम चारों परात्पर नित्य और सच्चिदानंद स्वरूप हैं, जो नित्य होता है वह सत्य होता है, नित्य और सत्य अद्वैत ब्रह्म ही है, द्वैत तो अनित्य और असत्य है। श्रीरामजी स्वयं ब्रह्म हैं, इसीलिये श्रीरामजी के नाम रूप, लीला और धाम क्यों न अद्वितीय होंगे। और जिस ग्रन्थ में इनका वर्णन हो वह ग्रन्थ भी अद्वितीय ही है. अद्वितीय शास्त्र को ही अद्वैतवाद कहते हैं इसलिये श्रीरामचरितमानस 'अद्वैतवाद-मोक्षशास्त्र' ही है। इन चारों नाम, रूप, लीला और धाम की अद्वितीयता चारों वक्ताओं ने 'मानस' में कही है सो अवलोकन कीजिये —

नाम अद्वितीय यथा -

चौ० एहि महँ रघुपति नाम उदारा। अतिपावन पुरान श्रुति सारा॥
मंगल भवन अमंगल हारी। उमा सहित जेहि जपत पुरारी॥१।१०।१॥

अर्थात्—इस (मानस, में श्रीरघुनाथजी का उदार नाम' है, जो अत्यन्त पवित्र अत्यन्त पवित्र अद्वैत ही है, द्वैत तो पवित्र होता ही नहीं, इसलिये नाम अद्वितीय है)'

चौ० बंदउँ नाम राम रघुवर को। हेतु कृसानु भानु हिमकर को।
बिधि हरिहर मय बेद प्राण सो। अगुन अनूपम गुन निधान सो॥१।१६।१॥

अर्थात्—वह राम 'नाम' अगुन-अनूपम निर्गुण, उपमा रहित-अद्वितीय ही नाम है।

चौ० नाम जीहँ जपि जागहिं जोगी। विरति विरंचि प्रपंच वियोगी॥
ब्रह्म सुखहि अनुभवहिं अनूपा। अकथ अनामल नाम न रूपा॥१।२२।१॥
अर्थात्‌-अनूपा (अद्वितीय) अकथ (अवचनीय) अनामय (द्वैत रहित) नाम को जपकर योगी, नाम तथा रूप रहित ब्रह्म सुख का अनुभव करते हैं।

चौ० नाम काम तरु काल कराला। सुमिरत समन सकल जग जाला॥१।२७।३
अर्थात्‌-जो नाम स्मरण करते ही संसार के सब जाल (जन्म-मरण) को नाश कर देने वाला है। यह अद्वितीय नाम का ही प्रभाव है।

चौ० इनके नाम अनेक अनूपा। मैं नृप कहब स्वमति अनुरूपा॥१।१९७।२॥
हे राजन्! इनके अनेक अनुपम अद्वितीय नाम हैं।

चौ० जो आनन्द सिंधु सुखरासी। सीकर तें त्रैलोक सुपासी॥
सो सुख धाम राम अस नामा। अखिल लोक दायक विश्रामा॥१।१९७।२॥

चौ० कासी मरत जन्तु अवलोकी। जासु नाम वल करउँ विसोकी॥१।११९।१॥
विवसहु जासु नाम नर कहहीं। जनम अनेक रचित अघ दहहीं॥
सादर सुमरन जो नर करहीं। भव वारिध गो पद इव तरहीं॥१।११९।२॥
जासु नाम सुमिरत एक वारा। उतरहिं नर भव सिन्धु अपारा॥२।१०१।२
जिन्ह कर नामु लेत जग माहीं। सकल अमंगल मूल नसाहीं॥
करतल होहिं पदारथ चारी। तेइ सिय रामु कहेउ कामारी॥१।३१५।१॥
जासु नाम पावक अघ तूला। सुमिरत सकल सुमंगल मूला॥२।२४८।१॥
जद्यपि प्रभु के नाम अनेका। श्रुति कह अधिक एक तें एका॥
राम सकल नामन्ह ते अधिका। होउ नाथ अघ खग गन वधिका॥३।४२।४॥
जाकर नाम मरत मुख आवा। अधमउ मुकुत होइ श्रुति गावा॥३।३१।३॥
जासु नाम वल संकर कासी। देत सवहिं समगति अविनासी॥४।१०।३॥
दो० गिरिजा जासु नाप जपि, मुनि काटहिं भव पास।
सो कि बंध तर आवइ ब्यापक विस्व निवास॥६।७३॥

चौ० पापिउ जाकर नाम सुमिरहीं। अति अपार भव सागर तरहीं॥
तासु दूत तुम्ह तजि कदराई। राम हृदयँ धरि करहु उपाई॥४।२९।२॥

सो० सुनहु भानुकुल केतु, जामवंत कर जोरि कह।
नाथ नाम तव सेतु, नर चढ़ि भव सागर तरहि॥६ मं० सो०॥

चौ० कलिमल मथन नाम ममता हन। तुलसिदास प्रभु पाहि प्रनतजन॥७।५१।५
दो० जासु नाम भव भेषज, हरन घोर त्रयसूल।
सो कृपाल मोहि तो पर, सदा रहउ अनुकूल॥७।१२४ (क)
कलिजुग सम जुग आन नहिं, जौं नर कर विस्वास।
गाइ राम गुन गन विमल, भव तर विनहिं प्रयास॥७।१०३ (क)

छं० आभीर जमन किरात खस स्वपचादि अति अघरूप जे।
कहि नाम वारक तेपि पावन होहिं राम नमामि ते ॥७।१३०।१

देखिये खर दूषणादि शत्रुओं की सम (अद्वैत) दृष्टि करदी, वे एक दूसरे को रामरूप देखने लगे और आपस में ही युद्ध करके लड़ मरे। और

दो० राम राम कहि तनु तजहिं, पावहिं पद निर्वान ॥३।२०॥

वह सब (यही राम है, इसे मारो, इस प्रकार) राम राम कह कर शरीर छोड़ते हैं और निर्वाण (मोक्ष) पद पाते हैं। श्रीराम के 'अद्वितीय' नाम ने निर्वाण पद सबको सुलभ कर दिया, निर्वाण ही प्रभु का धाम है, यह अद्वैत स्वरूप ही है, आपके नाम की ब्रह्म तारक संज्ञा है जो और किसी के नाम को नहीं प्राप्त है।

श्रुति–राम एव परं ब्रह्म राम एव परं तपः।
राम एव परं तत्त्वं श्रीरामो ब्रह्म तारकम ॥ (रामरहस्योपनिषद् १।६)

श्रुत्यर्थ—श्रीराम ही परब्रह्म हैं वे ही परमतप हैं, वे ही परम तत्त्व हैं तथा वे श्रीराम तारक ब्रह्म हैं॥ यह अद्वितीय 'नाम' का ही माहात्म्य है।

श्रीरामजी का रूप भी अद्वितीय है। यथा—

चौ० चितवहिं सादर रूप अनूपा। तृप्ति न मानहिं मनु सतरूपा ॥१।१४८।२॥

श्रीमनु–शतरूपा जी उस अनुपम 'अद्वितीय' रूप को देखते अघाते ही न थे।

चौ० रूप सकहिं नहिं कहि श्रुति सेषा। सो जानइ सपनेहु जिहिं देखा ॥१।११९।६
राम देखि मुनि देह बिसारी ॥१।२०७।३॥
भए मगन देखत मुख सोभा ॥१।२०७।३॥
मूरति मधुर मनोहर देखा। भयउ विदेहु विदेह विसेषी ॥१।२१५।१४॥
सुन्दर स्याम गौर दोउ भ्राता। आनंदहू के आनन्द दाता ॥१।१२७।४॥
सुर नर असुर नाग मुनि माहीं। सोभा असि कहुँ सुनि अति नाहीं ॥१।१२०।३

दो० वयकिसोर सुषमा सदन, स्याम गौर सुख धाम।
अंग अंग पर वारिअहिं, कोटि कोटि सत काम ॥१।२२०॥

चौ० कहहु सखी अस को तनुधारी। जोन मोह यह रूप निहारी ॥१।२२१।१॥

यह अद्वितीय रूप जड-चेतन सबको मोहित करने वाला है—

चौ० देखन बागु कुअँर दुइ आए। वय किसोर सब भाँति सुहाए॥
स्याम गौर किमि कहौ बखानी। गिरा अनयन नयन बिनु बानी ॥१।२२९।१

अद्वितीय रूप का वर्णन कैसे हो सके।

चौ० जिन्ह निज रूप मोहनी डारी। कीन्हे स्ववस नगर नर नारी।
वरनत छवि जहँ तहँ सब लोगू। अवसि देखिअहि देखन जोगू ॥१।२२९।३

श्रीरामजी अद्वितीय सुन्दर हों ऐसी बात नहीं, श्रीजनकनन्दिनी की भी शोभा अद्वितीय है, जिसे देखकर श्रीरामजी भी एकटक देखते रह जाते हैं। यथा—

चौ० ... ... । सिय मुख ससि भए नयन चकोरा ॥
भए विलोचन चारु अचंचल । मनहुं सकुचि निमि तजे दिगंचल ॥१।२३०।२
देखि सीय सोभा सुख पावा । हृदय सराहत वचनु न आवा ॥
जनु विरंचि सव निज निपुनाई । विरचि विस्व कहँ प्रगटि देखाई ॥१।२३०।३
सव उपमा कवि रहे जुठारी । केहिं पटतरौं विदेह कुमारी ॥१।२३०।४
बस यह शोभा तो अद्वितीय ही है ।

दो० सिय सोभा हियँ वरनि प्रभु आपनि दसा विचारि ॥१।२३०
चौ० जासु विलोकि अलौकिक सोभा । सहज पुनीत मोर मनु छोभा ॥१।२३१।२
ऐसी अद्वितीय सुन्दरता की वलिहारी जिसने प्रभु के मनको भी क्षुब्ध कर दिया ।
चौ० जगत पिता रघुपतिहि विचारी । भरि लोचन छवि लेहु निहारी ॥१।२४६।२
अस कहि भले भूप अनुरागे । रूप अनूप विलोकन लागे ॥१।२४६।४
सोह नवल तनु सुन्दर सारी । जगत जननि अतुलित छवि भारी ॥१।२४०।१
रंगभूमि जव सिय पगु धारी । देखि रूप मोहे नर नारी ॥१।२४०।२
राम रूप अरु सिय छवि देखें । नर नारिन्ह परि हरीं निमेषें ॥१।२४६।१
सखिन्ह मध्य सिय सोहति कैसें । छविगन मध्य महाछवि जैसें ॥१।२६४।१
सोहति सीय राम कै जोरी । छवि सिंगारु मनहुं एक ठोरी ॥१।२६५।४
रामहि चितइ रहे थकि लोचन । रूप अपार मार मद मोचन ॥१।२६६।४
देव देखि तव वालक दोऊ । अव न आखि तर आवत कोऊ ॥१।२६३।३
कहा एक मैं आजु निहारे । जनु विरंचि निज हाथ सँवारे ॥
मन भावनि मुख वरनि न जाहीं । उपमा कहुँ त्रिभुवन कोउ नाहीं ॥१।३११।४
मुख से उनका वर्णन नहीं हो सकता (अद्वितीय में वाणी की गति नहीं) उनकी उपमा के योग्य तीनों लोकों में कोई नहीं—क्योंकि वह अद्वितीय हैं ।

छं० उपमा न कोउ कह दास तुलसी कतहुं कवि कोविद कहैं ।
वल विनय विद्या सील सोभा सिंधु इन्ह से एइ अहैं ॥१।३११
चौ० सरद विमल विधु वदनु सुहावन । नयन नवल राजीव लजावन ॥
सकल अलौकिक सुन्दर ताई । कहि न जाइ मन ही मन भाई ॥१ ३१६।२
...। वदनु सकल सौंदर्ज निधाना । १।३२७।४
मुदित नारि नर देखहिं सोभा । रूप अनूप नयन मनु लोभा ॥२।११५।२
जहँ लगि बेद कहो विधि करना । श्रवन नयन मन गोचर बरनी ॥
देखहु खोजि भवन दसचारी । कहँ अस पुरुष कहाँ असि नारी ॥२।१२०।२
दो० जिन्ह जिन्ह देखे पथिक प्रिय, सिय समेत दोउ भाइ ।
भव मगु अगमु अनंद तेइ, विनुश्रम रहे सिराइ ॥२।१२३

सो० राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
　अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह ॥२।१२६
छं० अनूप रूप भूपतिं। न तोऽहमुर्विजा पतिं ॥३।४।११
चौ० होइ हैं सुफल आजु मम लोचन। देखि वदन पंकज भव मोचन ॥३।१०।५
　निर्गुन सगुण विषम सम रूपं। ज्ञान गिरा गोतीति अनूपं ॥
　अमलमखिलमनवद्यम पारं। नौमि राम भंजन महि भारं ॥३।११।६
　नाग असुर सुर नर मुनि जेते। देखे जिते हते हम केते ॥
　हम भरि जन्म सुनहु सव भाई। देखी नहिं असि सुन्दरताई ॥३।१९।२
　जद्यपि भगिनी कीन्ह कुरूपा। वध लायक नहिं पुरुष अनपा ॥३।१९।३
छं० जय राम रूप अनूप निर्गुण सगुन गुन प्रेरक सही ॥३।३२।१
चौ० प्रभुहि विलोकहिं टरहिं न टारे। मन हरषित सव भए सुखारे ॥
　तिन्ह की ओट न देखिअ वारी। मगन भए हरि रूप निहारी ॥६।४।४
छं० तन काम अनेक अनूप छवी। गुन गावत सिद्ध मुनींद्र कवी ॥६।१११।२
　विनु कारन दीन दयाल हितं। छविधाम नमामि रमा सहितं ॥
　भव तारन कारन काज परं। मन संभव दारुन दोष हरं ॥६।१११।६
　अनवद्य अखंड न गोचरगो। सव रूप सदा सव होइ न गो ॥६।१११।८
छं० जय सगुन निर्गुन रूप रूप अनूप भूप सिरोमने ॥७।१३।१॥
चौ० मुनि रघुपति छवि अतुल विलोकी। भए मगन मन सके न रोकी ॥७।३३।१
　स्यामल गात सरोरुह लोचन। सुन्दरता मन्दिर भव मोचन ॥
　एक टक रहे निमेष न लावहिं। ॥७ ३३।२

सनकादि मुनि श्रीरघुनाथजी की अतुलनीय 'अद्वितीय' छवि (सुन्दरता) को देखकर उसी में मग्न हो गये। वे मन को रोक न सके। वे (मुनि) भव (जन्म मृत्यु के चक्र) से छुडाने वाले (यह इन मुनियों का भी विशेषण है और श्रीरामजी का भी। क्योंकि 'ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति' इति श्रुति (मुण्डक० उ० ३।२।९ के अनुसार मुनि भी ब्रह्म स्वरूप हैं और श्रीरामजी स्वयं ब्रह्म हैं हं) वे मुनि। श्याम शरीर कमल नयन, सुन्दरता के धाम श्रीरामजी को टकटकी लगाये देखते रह गये पलक नहीं मारते ॥ ऐसी अद्वितीय छवि की बलिहारी ॥

श्रीरामजी के चरित्र (लीला) भी अद्वितीय हैं। यथा -

चौ० गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन। नयन अमिय दृग दोष विभंजन ॥
　तेहिं करि विमल विवेक विलोचन। वरनउँ राम चरित भव मोचन ॥१।२।१

मैं संसार (जन्म-मृत्यु रूप बन्धन) को छुड़ाने वाले श्रीराम चरित्र का वर्णन करता हूँ।

चौ० जे एहि कथहि सनेह समेता। कहिहहिं सुनिहहिं समुझि सचेता ॥
　होइहहिं राम चरन अनुरागी। कलिमल रहित सुमंगल भागी। १।१५।६

चौ० ... ...। करउँ कथा भव सरिता तरनी ।१।३१।२।। यह अद्वितीय कथा रचता हूँ, जो संसार रूपी नदी के (पार जाने के) लिए नाव है।

चौ० ... ...। जीवन मुकुति हेतु जनु कासी ।।१।३१।६।।

जग मंगल गुन ग्राम राम के। दानि मुकुति धन धरम धाम के ।।१।३२।१

कथा अलौकिक सुनहि जे ग्यानी। नहिं आचरजु करहिं अस जानी ।।१।३३।२

राम कथा कै मिति जग माहीं। अस प्रतीति जिनके मन माही ।।१।३३।३

अलौकिक कथा = अद्वैतवाद, ज्ञानी सुनहिं जे=जो अद्वैतवादी हैं, वे सुनते हैं, और यह जानकर आश्चर्य नहीं करते, कि संसार में राम कथा की कोई सीमा नहीं है, क्योंकि यह अद्वितीय है।

चौ० विमल कथा कर कीन्ह अरंभा। सुनत नसाहिं काम मद दंभा ।।१।३५।३

श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं, विमल=मलरहित, द्वैतरहित अर्थात् अद्वैत कथा =अद्वैतवाद का आरम्भ किया, जिसके श्रवण मात्र से काम, मद और दम्भ नष्ट हो जाते हैं। इनका नाश अद्वैत कथा से ही होता है-द्वैत कथा से तो ये और पनपते (बढ़ते) हैं।

दो० सुठि सुन्दर सम्वाद वर, विरचे बुद्धि विचारि।

तेइ एहि पावन सुभगसर, घाट मनोहर चारि ।।१।३६ ।।

चौ० सप्त प्रवन्ध सुभग सोपाना। ग्यान नयन निरखत मन माना।।

रघुपति महिमा अगुन अवाधा। वरनव सोइ वर वारि अगाधा ।।१।३७।१

अरथ अनूप सुभाव सुभासा ।१।३७।३

ऊँचे भाव सुन्दर भाषा और अरथ भी अद्वितीय हो है। अर्थात् अद्वैतवाद ही है।

चौ० भगति निरूपन विविध विधाना। छमा दयादम लता विताना ।।

सम जम नियम फूल फल ग्याना। हरि पद रति रस वेद वखाना ।।१।३७।७

नाना प्रकार से भक्ति का निरुपण और क्षमा, दया तथा दम (इन्द्रिय निग्रह) लता पता हैं। मन का निग्रह, यम (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह), नियम (शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्राणिधान) ही उनके फूल हैं, ज्ञान फल है और श्रीहरि के पद (विराट् हिरण्यगर्भ, ईश्वर और ब्रह्म) में दृढ़ निष्ठा-संलग्नता (इस ज्ञान रूपी फल का) रस है। ऐसा वेदों ने कहा है। 'रसो वै सः' श्रुति (तैत्तिरीय० उ० २।७)

दो० अति विचित्र रघुपति चरित, जानहिं परम सुजान।

जे मति मंद विमोह वस, हृदय धरहिं कछु आन ।।१४९

अर्थात्-श्रीरघुनाथ जी का चरित्र बड़ा ही बिचित्र 'अद्वितीय' है, उसको पहूंचे हुए ज्ञानी जन 'अद्वैतवादी' ही जानते हैं। जो मन्द बुद्धि 'द्वैतवादी' हैं, वे तो विशेष रूप से मोह (अज्ञान) के वश होकर हृदय में कुछ दूसरी ही बात समझ बैठते हैं। अर्थात् श्रीरामजी को सामान्य मनुष्य ही समझते हैं। अथवा-श्रीरामजी ब्रह्म से भी बढ़कर हैं व राम ब्रह्म नहीं हैं इत्यादि।

चौ० राम चरित अति अमित मुनीसा। कहि न सकहिं सत कोटि अहीसा।१।१०५।२

हे मुनीश्वर ? राम चरित्र अत्यन्त अपार है क्योंकि यह अद्वितीय है। सौ करोड़ शेषजी भी उसे नहीं कह सकते। क्योंकि अद्वैत वाणी का विषय नहीं हैं।

चौ० राम कथा सुन्दर करतारी। संसय बिहग उड़ावनि हारी।।१।११४।१

सुनि गिरजा हरि चरित सुहाए। विपुल विसद निगमागम गाए।।१।१२।१।१

सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं।।८।१२२।१।। अर्थात् उसी अद्वैत दश को गा-गा कर भक्तजन भवसागर (जन्म-मरण) से तर जाते हैं मुक्त हो जाते हैं।

दो० राम कथा कलिमल हरनि, मंगल करनि सुहाइ।।१।१४१।।

चौ० अंसन्ह सहित देह धरि ताता। करिहउँ चरित भगत सुखदाता।।१।१५२।१

जे सुनि सादर नर वड़ भागी। भव तरहिं ममता मद त्यागी।।१५२।२

दो० यह इतिहास पुनीत अति। उमहि कही वृषकेतु।१।१५२

छं० यह चरित जे गावहिं हरि पद पावहिं तेन परहिं भव कूपा।।१।१६२।४

दो० सुख संदोह मोह पर, ग्यान गिरा गोतीत।

दंपति परम प्रेम वस, कर सिसु चरित पुनीत।।१।१९९।।

चौ० परम मनोहर चरित अपारा। करत फिरत चारिउ सुकुमारा।।१।२०३।२।।

दो० व्यापक अकल अनीह अज, निर्गुन नाम न रूप।

भगत हेतु नाना विधि, करत चरित्र अनूप।।१।२०५।।

चौ० सकल अमानुष करम तुम्हारे।।१।३५७।३।। (श्रीमाताओं का विचार) तुम्हारे सभी कर्म (चरित्र-लीला) अमानुषी 'अद्वितीय' हैं।

दो० सुद्ध सच्चिदानंद मय, कंद भानु कुल केतु।

चरित करत नर अनुहरत, संसृति सागर सेतु।।२।८७।।

भगत भूमि भूसर सुरभि, सुर हित लागि कृपाल।

करत चरित धरि मनुज तन, सुनत मिटहिं जग जाल।।२।९३।।

दो० राम देखि सुनि चरित तुम्हारे। जड़ मोहहिं बुध होहिं सुखारे।।२।११७।४।।

छं० जो सुनत गावत कहत समझत परम पद नर पावई।

रघुवीर पद पाथोज मधुकर दास तुलसी गावई।।४।३०।।

चौ० जानत हूँ अस स्वामि बिसारी। फिर हिं ते काहे न होहिं दुखारी।

एहि विधि कहत राम गुन ग्रामा। पावा अनिर्वाच्य विश्रामा।।५।८।१।।

चौ० चरित राम के सगुन भवानी। तर्कि न जाहिं बुद्धि वल वानी।

अस विचारि जे तग्य विरागी। रामहि भजहिं तर्क सब त्यागी।।६।७४।१।।

छं० मोहि सहित सुभ कीरति तुम्हारी परम प्रीति जो गाइ हैं।

संसार सिन्धु अपार पार प्रयास विनु नर पाइ हैं।।६।१०६।।

छं० यह रावनारि चरित्र पावन राम पद रतिप्रद सदा।
कामादिहर विग्यानकर सुर सिद्ध मुनि गावहिं मुदा ॥६।१२१।२॥
चौ० सुनु खगपति यह कथा पावनी। त्रिविध ताप भव भय दावनी।
महाराज कर सुभ अभिषेका। सुनत लहहिं नर विरत विबेका ॥७।१५।१॥
जेसकाम नर सुनहिं जे गावहिं। सुख संपति नाना विधि पावहिं।
सुर दुर्लभ सुख करि जग माहीं। अंतकाल रघुपति पुर जाहीं ॥७।१५।२॥
सुनहिं विमुक्त विरत अरु विषई। लहहिं भगति गति संपति नई ॥
खगपति राम कथा मैं वरनी। स्वमति विलास त्रास दुखहरनी ॥७।१५।३
विरति विबेक भगति दृढ़ करनी। मोह नदी कहँ सुन्दर तरनी ॥७।१५।४
दो० चारु चित्रसाला गृह, गृह प्रति लिखे वनाइ।
राम चरित जे निरख मुनि, ते मन लेहिं चोराइ ॥७।२७॥
जीवन मुक्त ब्रह्म पर, चरित सुनहिं तजि ध्यान।
जे हरि कथाँ न करहिं रति, तिन्ह के हिय पाषान ॥७।४२॥
चौ० गिरिजा सुनहु विसद यह कथा, मैं सब कही मोरि मति जथा ॥७।५२।१
विमल कथा हरिपद दायनी। भगति होइ सुनि अनपायनी ॥७।५२।३
सुनि सुभ कथा उमा हरषानी। वोली अति विनीत मृदु बानी ॥७।५२।४
धन्य धन्य मैं धन्य पुरारी। सुनेउँ राम गुन भव भय हारी ॥७।५२।५

'धन्य धन्य मैं' श्री पार्वतीजी ने अपने को दो बार 'धन्य' कहा और 'धन्य पुरारी' श्रीशिवजी को एक बार 'धन्य' कहा। इससे यह भाव ध्वनित होता है कि जो वक्ता अद्वैत कथा कहते (सुनाते) हैं वे धन्यवाद के पात्र हैं और दो बार धन्यवाद के वे श्रोता पात्र हैं, जो अद्वैत कथा को मन, बुद्धि और चित्त लगाकर श्रवण करते हैं।

चौ० भव सागर चह पार जो पावा। राम कथा ता कहँ दृढ़ नावा ॥७।५३।२
सुनहु परम पुनीत इतिहासा। जो सुनि सकल लोक भ्रम नासा ॥७।५५।४
उपजइ रामचरन विस्वासा। भव निधि नर तर बिनहिं प्रयासा ॥७।५५।५
कहेउँ नाथ हरि चरित अनूपा। व्यास समास स्वमति अनुरूपा ॥७।१२३।१
कहेउँ परम पुनीत इतिहासा। सुनत श्रवण छूटहिं भव पासा ॥७।१२६।१
मन क्रम वचन जनित अघ जाई। सुनहिं जे कथा श्रवन मन लाई ॥७।१२६।२
दो० राम चरन रति जो चह, अथवा पद निर्वान।
भाव सहित सो यह कथा करउ श्रवन पुट पान ॥७।१२८॥
चौ० राम कथा गिरिजा मैं वरनी। कलिमल समनि मनोमल हरनी।
संसृति रोग सजीवन मूरी। राम कथा गावहिं श्रुति सूरी ॥७।१२९।१
एहि महँ रुचिर सप्त सोपाना। रघुपति भगति केर पंथाना।
अति हरि कृपा जाहि पर होई। पाउँ देह एहिं मारग सोई ॥७।१२९।२

इसमें सात सुन्दर सीढ़िया हैं (अर्थात् सप्त ज्ञान भूमि का ही सात सीढ़ियाँ हैं) जो श्रीरामजी की पराभक्ति (ज्ञान, को प्राप्त करने के साधन हैं। जो इन ज्ञान साधनों पर पैर रखता है उसी पर श्रीहरि (आत्मा) की अत्यन्त कृपा होती है, साधनहीन (द्वैतवादी) पर नहीं ॥

चौ० मन कामना सिद्धि नर पावा। जे यह कथा कपट तजि गावा।
कहहिं सुनहिं अनुमोदन करहीं। ते गोपद इव भवनिधि तरहीं ॥७।१२९।३
यह सुभ संभु उमा संवादा। सुख संपादन समन विषादा ॥
भव भंजन गंजन संदोहा। जन रंजन सज्जन प्रिय ऐहा ॥७।१३०।१
छं० रघुबंस भूषन चरित यह नर कहहिं सुनहिं जे गावहीं।
कलिमल मनोमल धोइ विनु श्रम राम धाम सिधावहीं ॥७।१३०।२

अर्थात्—जो मनुष्य रघुवंश-विभूषण श्रीरामजी का यह (अद्वितीय) चरित्र कहते हैं, सुनते हैं और गाते हैं, वे कलियुग के पाप और मन के मल (मल, विक्षेप और आवरण) को धोकर बिना ही परिश्रम श्रीराम के परम धाम (निर्वाण पद) को चले जाते हैं, अर्थात् मुक्त हो जाते हैं ॥

श्रीरामजी का धाम भी अद्वितीय है। यथा—

चौ० रामधामदा पुरी सुहावनि। लोक समस्त विदित अति पावनि।
चारि खानि जग जीव अपारा। अवध तजे तनु नहिं संसारा ॥१।३५।२
सब विधि पुरी मनोहर जानी। सकल सिद्धि प्रद मंगल खानी ॥१।३५।३

अर्थात् श्रीराम का 'धाम' अयोध्यापुरी सुन्दर, समस्त लोकों में विख्यात अति पावन (अद्वितीय) है। चारि खानि (उद्भिज्ज, स्वेदज, अण्डज और जरायुज) चार प्रकार के अपार जीव-अवधपुरी में शरीर त्यागने से फिर संसार में नहीं लौटते मुक्ति हो जाते हैं, यह अद्वितीय पुरी का प्रभाव है। सब प्रकार से अवध मनोहर-अर्थात्-मन-हरण (अमन) मोक्ष करने वाली जानों, और समस्त सिद्धियों को देने वाली, मंगल खाति (अद्वितीय) है।

दो० सोभा दसरथ भवन कइ, को कवि वरनै पार।
जहाँ सकल सुर सीस मनि, राम लीन्ह अवतार ॥१।२९७
चौ०पुनि देखु अवधपुरी अति पावनि। त्रिविध ताप भव रोग नसावनि ॥६।१२०।५
दो० सीता सहित अवध कहुं, कीन्ह कृपाल प्रनाम।
सजल नयन तन पुलकित, पुनि पुनि हरषित राम ॥६।१२० (क)
चौ० जन्म भूमि मम पुरी सुहावनि। उत्तर दिसि वह सरजू पावनि।
जा मज्जन ते विनहिं प्रयासा। मम समीप नर पावहिं वासा ॥७।४।३
अति प्रिय मोहि इहाँ के वासी। मम धामदा पुरी सुखरासी।
हरषे सब कपि सुनि प्रभु वानी। धन्य अवध जो राम बखानी ॥७।४।४

जदपि रहउँ रघुपति रजधानी। तदपि न कछु महिमा तब जानी ॥७।९७।२
अब जाना मैं अवध प्रभावा। निगमागम पुरान अस गावा।
कवनेहुँ जन्म अवध बस जोई। राम परायन सो परि होई ॥७।९७।३
पुरसोभा कछु बरनि न जाई। बाहेर नगर परम रुचिराई।
देखन पुरी अखिल अध भागा। ... ... ॥७।२९।४
छं० वापीं तडाग अनूप कूप मनोहरायत सोहहीं।
दो० रमानाथ जहँ राजा, सो पुर बरनि कि जाइ।
अनिमादिक सुख संपदा, रहो अवध सब छाइ ॥७।२९॥

जहाँ के राजा सीता पति रामचन्द्र जो हों उस पुरी की शोभा कैसे वर्णन की जाये, वह तो अवर्णनीय 'अद्वितीय' है, अद्वितीय में वाणी की पहुंच नहीं ॥

विविध प्रसंग अद्वितीय

छं० निरुपम न उपमा आन राम समान रामु निगम कहै ॥७।९२॥
चौ० ... ...। निरवधि निरुपम प्रभु जगदीसा ॥७।९२।४
नाम रूप दुइ ईस उपाधी। अकथ अनादि सुसामुझि साधी ॥१।२१।१
नाम रूप गति अकथ कहानी। समुझत सुखद न परति बखानी ॥१।२१।४
दो० मिटिहहि पाप प्रपंच सब, अखिल अमंगल भार।
लोक सुजसु परलोक सुख, सुमिरत नाम तुम्हार ॥२।२६३॥
चौ० जो मुख मुकुर मुकुरु निज पानी। गहि न जाइ अस अदभुत बानी ॥२।२९४।२

जैसे मुख का प्रतिविम्ब दर्पण में दीखता है और दर्पण अपने हाथ में है, फिर भी वह (मुख का प्रतिविम्ब) पकड़ा नहीं जाता, इसी प्रकार भरतजी की अद्भुत (अद्वितीय) वाणी भी पकड़ में नहीं आती ॥

दो० निरवधि गुन निरुपम पुरुष, भरत भरत सम जानि ॥२।२८८॥
चौ० अगम सबहि बरनत बर बरनी। जिमि जलहीन मीन गमु धरनी ॥
भरत अमित महिमा सुनु रानी। जानहिं रामु न सकहिं बखानी ॥२।२८९।१
दो० करम वचन मानस विमल, तुम्ह समान तुम्ह तात ॥२।३०४॥
सो० भरत चरित करि नेमु, तुलसी जो सादर सुनहिं।
सीय राम पद प्रेमु, अवसि होइ भव रस विरति ॥२।३२६॥

श्रीलक्ष्मणजी का प्रभाव अद्वितीय। यथा

चौ० तात प्रताप प्रभाउ तुम्हारा। को कहि सकइ को जाननि हारा ॥-।२३१।१॥

श्रीलक्ष्मणजी और शत्रुघ्न के रूप की अद्वितीयता—

चौ० लखुन सत्रसूदनु एक रूपा। नख सिख ते सब अंग अनूपा ॥
मन भावहिं मुख बरनि न जाहीं। उपमा कहुं त्रिभुवन कोउ नाहीं ॥१।३११।४

" उनकी उपमा के योग्य तीनों लोकों में कोई नहीं है। क्योंकि वह अद्वितीय हैं।

छं० उपमा न कोउ कह दास तुलसी कतहुं कोविद कहैं।
बल विनय विद्या सील सोभा सिंधु इन्ह से एइ अहैं ॥१।३११॥
चौ० अनुपम बालक देखेन्हि जाई। रूपरासि गुन कहि न सिराई ॥१।१९३।४॥
मन क्रम वचन अगोचर जाई। दसरथ अजिर बिचर प्रभु सोई ॥१।२०३।३॥
देखि मनोहर चारउ जोरीं। सारद उपमा सकल ढँढोरीं॥
देत न वनहिं निपट लघु लागीं। एकटक रहीं रूप अनुरागीं ॥१।२३९।४॥

सीताजी की प्रीति अद्वितीय—

दो० मन बिहसे रघुबंसमनि, प्रीति अलौकिक जानि ॥१।२६५॥

भरतजी का अद्वितीय प्रेम—

चौ०अगम सनेह भरत रघुवर को। जहँ न जाइ मनु बिधि हरिहर को॥२।२४१।३
'अगम सनेह भरत' श्रीभरतजी का प्रेम अद्वितीय है—
'रघुवर को जहँ न जाइ मनु' वहाँ रघुनाथजी का भी मन नहीं पहुंच पाता —
'बिधि हरि हर को॥' फिर ब्रह्माजी, विष्णुजी और शिवजी कौन अर्थात् इनकी तो बात ही क्या।

श्रीरामजी का प्रेम अद्वितीय—

चौ० भेंटत भुज भरि भाइ भरत सो। राम प्रेम रसु कहि न परत सो॥२।३१७।२
तन मन वचन उमग अनुरागा। धीर धुरंधर धीरजु त्यागा॥२।३१७।३
मुनिगन गुरधुर धीर जनक से। ग्यान अनल मन कसें कनक से॥
जे बिरंचि निरलेप उपाए। पदुम पत्र जिमि जग जल जाए॥२।३१७ ४
दो० तेउ बिलोकि रघुवर भरत, प्रीति अनूप अपार।
भए मगन मन तन वचन, सहित विराग विचार॥२।३१७॥
चौ० जहाँ जनक गुर गति मति भोरी। प्राकृत प्रीति कहत बडि खोरी॥२।३१८।१
पुर नर भरत प्रीति मैं गाई। मति अनुरूप अनूप सुहाई॥३।१।१

वीरों में अद्वितीय—

चौ० हा जग एक बीर रघुराया। केहिं अपराध विसारेहु दाया॥३।२९।१
पति रघुपतिहि नृपति जनिमानहु। अग जग नाथ अतुल वल जानहु॥६।३६।४
छं० सुन्दर सुजान कृपानिधान अनाथ पर कर प्रीति जो।
सो एक राम अकाम हित निर्वानप्रद सम आन को॥
जाकी कृपा लवलेस ते मतिमंद तुलसीदास हूं।
पायो परम विश्राम राम समान प्रभु नाहीं कहूँ॥७।१३०।३॥

रूप की अद्वितीयता से रामचरितमानस भरा पड़ा है—

चौ० चिदानंदमय देह तुम्हारी। बिगत विकार जान अधिकारी॥२।१२७।३॥

(श्री वाल्मीकिजी ने कहा—) आपकी देह चिदानन्दमय है (यह प्रकृतिजन्य पंचमहाभूतों की बनी हुई, कर्मबन्धनयुक्त, त्रिदेह विशिष्ट मायक नहीं है) और जन्म-मरणादि सब विकारों से रहित है इस अद्वितीय रहस्य को अधिकारी (चतुःसाधन सम्पन्न) अद्वैतवादी पुरुष ही जानते हैं। श्री विश्वामित्र महामुनि, ब्रह्मनिष्ठ श्री जनक महाराज जी, सनकादिजी तथा ग्रामों के नर-नारी इत्यादि की दशा जो श्रीरामचन्द्रजी को देखते ही हो गई, ऐसा सौन्दर्य किसी का नहीं, यही रूप की अद्वितीयता है। जिसका विस्तृत वर्णन रूप की अद्वितीयता पृष्ठ २३० से २३२ तक अवलोकन करें।

सुजानों में अद्वितीय—

चौ० नीति प्रीति परमारथ स्वारथु। कोउ न राम सम जान जथारथ ॥२।२५४।३

... ...। जान सिरो मनि कोसल राउ ॥१।२८।५

सती कपट जानेउ सुर स्वामी। सब दरसी सब अंतरजामी ॥१।५३।२

प्रभु तन चितइ प्रेम तन ठाना। कृपानिधान राम सबु जाना ॥१।२५६।४

कृपानिधानों में अद्वितीय—

चौ० महा महा मुखिआ जे पावहिं। ते पद गहि प्रभु पास चलावहिं॥

कहइ विभीषनु तिन्ह के नामा। देहिं रामतिन्हहू निजधामा ॥६।४५।१

खल मनुजाद द्विजामिष भोगी। पावहिं गति जो जाचत जोगी॥

उमा राम मृदुचित करुनाकर। बयर भाव सुमिरत मोहि निसिचर ॥६।४५।२

देहि परमगति सो जियँ जानी। अस कृपाल को कहहु भवानी ॥६।४५।३

दीनों का हित करने में—अनाथों पर प्रेम करने में अद्वितीय—

चौ० जो अनाथ हित हम पर नेहू। तो प्रसन्न होइ यह वर देहू ॥१।१४६।२॥

राम सरिस को दीन हितकारी। कीन्हे मुकुत निसाचर झारी ॥६।११४।५॥

श्रीरामजी ने अपने अद्वितीय-नाम, रूप, लीला और धाम, सभी के द्वारा निर्वाण पद (कैवल्य मोक्ष) सबको सुलभ कर दिया—इत्यादि अद्वितीय प्रसंगों से रामचरितमानस पूर्ण अद्वैतवाद ही है, परन्तु कुछ मतिमन्दों ने जो प्रसंग प्रत्यक्ष अद्वैत परक हैं, उनको भी मिथ्या कल्पनाओं से यह अद्वैतवाद नहीं हैं कह डाला है, वह अपने को रामभक्त शिरोमणि घोषित करते हैं। वास्तव में देखा जाये तो वे हैं राम द्रोही और रामायण द्रोही, उनकी दशा श्रुति वर्णन करती है यथा—

श्रुति—अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयंधीराः पण्डितंमन्यमानाः।

जंघन्यमानाः परियन्ति मूढ़ा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः॥ (मु०उ० १।२।८)

श्रुत्यर्थ—अविद्या (द्वैत) के भीतर स्थित होकर भी अपने आप बुद्धिमान बनने वाले और अपने को विद्वान मानने वाले; वे मूर्ख लोग, बार-बार आघात कष्ट। सहन करते हुए, ठीक वैसे ही भटकते रहते हैं; जैसे अन्धे के द्वारा ही चलाये जाने वाले अन्धे अपने लक्ष्य तक न पहुंच कर बीच में ही इधर-उधर भटकते और कष्ट भोगते रहते हैं।

श्रुति–अविद्यायां वहुधा वर्तमाना वयं कृतार्था इत्यभिमन्यन्ति वालाः ।
यत्कर्मिणो न प्रवेदयन्ति रागात्तेनातुराः क्षीणलोकाश्च्यवन्ते ॥
(मुण्डक उ० १।२।६)

श्रुत्यर्थ–वे मूर्ख लोग द्वैतरूप सकाम कर्मों में वहुत प्रकार से वरतते हुए हम कृतार्थ हो गये, ऐसा अभिमान कर लेते हैं, क्योंकि वे सकाम कर्म करने वाले द्वैतवादी लोग विषयों की आसक्ति के कारण कल्याण के अद्वैतमार्ग को नहीं जान पाते, इस कारण वारम्वार दुःख से आतुर हो पुण्योपार्जित लोकों से हटाये जाकर नीचे गिर जाते हैं। अर्थात्–पशु-पक्षी, कीट, पतंगादि विविध दुःख पूर्ण योनियों में एवं नरकादि में प्रवेश करके अनन्त जन्मो तक अनन्त यन्त्राणाओं का भोग करना पड़ता है। यह श्रुतियों वताती हैं कि महान् मूर्ख अपने को बुद्धिमान् मानकर जिन श्रीरामजी के नाम, रूप, लीला और धाम को श्रुतियाँ, स्मृतियाँ, पुराणादि अद्वितीय बताती हैं उनको अद्वितीय नहीं मानते, इसी लिये रामचरितमानस को अद्वैतवाद नहीं जानते, मानस में श्रीरामजी की ही अद्वितीयता हो ऐसी बात नहीं है और प्रसंग भी अद्वितीय पाये जाते हैं, अवलोकन कीजिये। यथा—

चौ० विविध प्रसंग अनूप वखाने। करहिं न सुनि आचरजु सयाने ॥१।१४०।२॥

(हे उमा–) भाँति-भाँति के अनुपम (अद्वितीय) प्रसंगों का वर्णन किया है, जिन को सुनकर सयाने (विवेकी-अद्वैतवादी) लोग आश्चर्य नहीं करते।

दो० उपजे जदपि पुलस्त्यकुल, पावन अमल अनूप।
तदपि महीसुर श्राप बस, भए सकल अघरूप ॥१।१७६॥

चौ० देखि अनूप एक अवँराई। सव सुवास सव भाँति सुहाई ॥
कौसिक कहेउ मोर मनु माना। इहाँ रहिअ रघुबीर सुजाना ॥१।२१४।३॥
अति अनूप जहँ जनक निवासू। विथकहि विबुध विलोकि विलासू ॥१।२१३।४
तव रिषि निज नाथहि जियँ चीन्हीं। विद्या निधि कहुँ विद्या दीन्हीं ॥
जाते लगे न छुधा पिपासा। अतुलित वल तनु तेज प्रकासा ॥१।२०६।४॥
चले राम त्यागा वन सोऊ। अतुलित वल नर केहरि दोउ ॥३।३७।१
देखि अमित वल वाढ़ी प्रीती। बालि वधव इन्ह भइ परतीती ॥४।७।७
चला इंद्रजित अतुलित जोधा ।५।१६।२॥
खर दूषन त्रिसरा अरु वाली। वधे सकल अतुलित वलसाली ॥५।२१।५॥
वाजहिं ताल मृदंग अनूपा। सोइ रव मधुर सुनहु सुरभूपा ॥६।१३।४॥
भागत भट पटकहिं धरि धरनी। करहिं भालु कपि अद्भुत करनी ॥६।४७।४

दो० कपिपति बेगि वोलाए, आए जूथप जूथ।
नाना वरन अतुल वल, वानर भालु वरूथ ।।

छं० वलमप्रमेयमनादिमजमव्यक्तमेकमगोचरं ।३।३२।३

दो० दीख जाइ उपवन बर, सर बिगसित बहु कंज।
मंदिर एक रुचिर तहँ, बैठि नारि तप पुंज ॥
चौ० अकथ अलौकिक तीरथराऊ। देइ सद्य फल प्रगट प्रभाऊ ॥१।२।७॥
ध्रुवँ सगलानि जपेउ हरि नाऊँ। पायउ अचल अनूपम ठाऊँ ॥१।२६।३॥
मिलत महा दोउ राज बिराजे। उपमा खोजि-खोजि कवि लाजे ॥१।३२०।१
लही न कतहुँ हारि हियँ मानी। इन्ह सम एइ उपमा उर आनी ।१।३२०।२
देव गिरा सुनि सुन्दर साँचो। प्रीति अलौकिक दुहु दिसि माची ।।१।३२०।४
मनहुं मदन रति धरि बहु रूपा। देखत राम बिआहु अनूपा ॥१।३२५।२
नयनवंत रघुबरहि बिलोकी। पाइ जनम फल होहिं बिसोकी ॥
परस चरन रज अचर सुखारी। भए परम पद के अधिकारी ॥२।१३९।१

भगवान् श्रीराजी के हाथ से मारे गये मुक्त हो गये–

चौ० समर मरन हरि हथि तुम्हारा। होइहहु मुकुत न पुनि संसारा ॥१।१३९ ४

भगवान् श्रीरामजी का क्रोध भी मोक्षदाता है—

छं० निर्वान दायक क्रोध जाकर भगति अवसहि वस करी ॥३।२६॥
चौ० मातु बिबेक अलौकिक तोरें। कबहुँ न मिटिहि अनुग्रह मोरें ॥१।१५१।२
तत्त्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा ॥५।१५।३
अस सुभाउ कहुँ सुनउँ न देखउँ। केहि खगेस रघुपति सम लखउँ ॥७।१२४।२

किसी का ऐसा (अद्वितीय) स्वभाव कहीं न सुनता हूँ, न देखता हूँ, अतः हे गरुड़जी ? मैं श्रीरघुनाथजी के समान किसे गिनूँ (समझू वह तो अद्वितीय हैं)।

इस प्रकार श्रीरामचरितमानस अद्वैतवाद ही है, कहीं-कहीं बीच-बीच में कुछ कथायें अध्यारोप रूप में आई हैं। यथा—

चौ० बिच बिच कथा बिचित्र बिभागा। जनु सरि तीर तीर बन बागा ॥१।४०।३

इस (मानस) के बीच-बीच में जो भिन्न-भिन्न प्रकार की विचित्र कथाएँ हैं वे ही मानो नदी तट के आस-पास के वन और बाग हैं। यह अध्यारोप हुआ।

चौ० नदी नाव पटु प्रस्न अनेका। केवट कुसल उतर सबिबेका ॥१।४१।१॥

अनेकों सुन्दर विचार पूर्ण प्रश्न ही इस नदी की नावें हैं ओर उनके विवेक युक्त उत्तर ही चतुर केवट हैं। और उनका फल अद्वितीय रूप वे, यह अपवाद है, सिद्धान्त तो मानस का अद्वैतवाद ही है इसी लिये कहा है। यथा—

श्लोक–पुण्यं पापहरं सदा शिवकरं विज्ञानभक्तिप्रदं
माया मोहमलापहं सुविमलं प्रेमाम्बुपूरं शुभम्।
श्रीमद्रामचरितमानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये
ते संसार पतंगघोरकिरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः ॥२॥ (मा० उ० पूर्ण)

अर्थ—यह रामचरितमानस पुण्य (अद्वैत) रूप है, पाप (जन्म-मृत्यु) का हरण
वाला, सदा कल्याणकारी, विज्ञान और भक्ति को देने वाला, माया (द्वैत) मोह (अ
और मल (द्वैत) के नाश करने वाला परम निर्मल (अद्वैत स्वरूप) प्रेम जल से परिपूर्ण
मंगलमय (मोक्षप्रद) है। जो मनुष्य भक्ति पूर्वक इस मानस सरोवर में गोता लगाते
संसार (द्वैत) रूपी सूर्य की अति प्रखर किरणों से नहीं जलते अर्थात् मुक्त हो जाते हैं,
माता के गर्भ में नहीं आते।

कुछ विद्वान् रामचरितमानस को अद्वैतवाद नहीं मानते उनको विचारना चाहि
अद्वैतस्वरूप श्रीरामजी के चरित्र भी अद्वैत स्वरूप ही है। क्योंकि श्रीरामजी के नाम,
लीला चरित्र) और धाम के लिये तथा और अनेक प्रसंगों के लिये मानस में अनेक
पर आता है। यथा—अकथ, अकल, अकाम, अखण्ड, अखिल, अगम, अगुन, अ
अचंचल; अतिअमित, अतिविचित्र, अतिपावन, अद्भुत, अतिपुनीत, अतुलित, अज,
अनघ, अनवद्य, अनादि, अनामय, अनिर्वाच्य, अनीह, अनूपा, अनुपम अपार, अप्रमेय, अ
अवचनीय, अवद्य, अव्यक्त, अमल, अविगत, अमित, अमोघ, अरूप, अलौकिक, ए
गिरातीत, गोतीत, गोपार, निरवधि, निर्वान, निर्गुन, निर्मल, निरुपम, निरुपाधि, नि
पावन, पुनीत, वचन, अगोचर, विमल, व्यापक, बुद्धिपर, विस्वनिवास, मनोहर, ज्ञा
गोतीत इत्यादि शब्द पर्यायवाची अद्वितीय ही हैं। +इसी प्रकार वर्णन, गाथा, इ
चरित्र और कथा यह सब पर्यायवाची वाद ही हैं, इन्हीं का प्रयोग देखने में आता है
रामचरितमानस अद्वैतवाद ही है।

यदि रामचरितमानस को द्वैतवाद माना जाय तो 'द्वितीया द्वै भयं भवति' इति
(बृहदारण्यक० उ० १।४।२) फिर तो रामचरित प्रेमियों को भी भय (जन्म-मरण) व
रहेगा। जब जन्म-मरण ही नहीं छूटा तो फिर रामचरित पढ़ने, सुनने, समझने क
ही क्या ?

वे विद्वान् तो श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजी, ज्ञानी मुनि श्री याज्ञवल्क्यजी
भुशुण्डिजी, भगवान् श्रीरामचन्द्रजी, माता श्रीपार्वतीजी, भगवान् श्रीशंकरजी आदि के
मृत का भी मान (आदर) नहीं करते अपनी मनमानी चलाते हैं। ऊपर बताये वक्त
क्रम से वचनामृत श्रवण करें। यथा—श्रीतुलसीदासजी।

चौ० ... ...। बरनउँ राम चरित भव मोचन ॥१

चौ० जे एहि कथहि सनेह समेता। कहिहहि सुनिहहि समुझ सचेता ॥१

होइहहि राम चरन अनुरागी। कलिमल रहित सुमंगल भागी ॥१

छं० यह चरित जे गावहि हरिपद पावहि ते न परहि भवकूपा ॥१।१६२।४

छं० जो सुनत गावत कहत समुझत परमपद नर पावई ॥४।३०

दो० सकल सुमंगल दायक, रघुनायक गुन गान।

सादर सुनहिं तेतरहिं भव, सिंधु बिना जल जान ॥५।६०॥

वल्क्यजी—

यह सुभ संभु उमा संबादा। सुख संपादन समन विषादा॥
व भंजन गंजन संदेहा। जन रंजन सज्जन प्रिय एहा॥७।१३०।१॥

कभुशुण्डिजी—

कलिजुग सम जुग आन नहिं, जौं नर कर बिस्वास।
गाय राम गुन गन बिमल, भव तर बिनहि प्रयास॥७।१०३ (क)

चन्द्रजी—

ोहि सहित सुभ कीरति तुम्हारी परम प्रीति जो गाइ हैं।
ंसार सिंधु अपार पार प्रयास बिनु नर पाइ हैं॥६।१०६।

वान्–मनु-शतरूपाजी के प्रति—

अंसन्ह सहित देह धरि ताता। करिहउँ चरित भगत सुख दाता।
े सुनि सादर नर बड़ भागी। भव तरिहहिं ममता मद त्यागी॥१।१५२।२॥

ता पार्वतीजी—

भवसागर चह पार जो पावा। राम कथा ता कहँ दृढ़ नावा॥७।५३।२॥

वजी महाराज—

सुनहु परम पुनीत इतिहासा। जो सुनि सकल लोक भ्रम नासा॥७।५५।४॥
उपजइ राम चरन बिस्वासा। भवनिधि तर नर बिनहिं प्रयासा॥७।५५।५॥
राम चरन रति जो चह, अथवा पद निर्बान।
भाव सहित सो यह कथा, करउ श्रवन पुट पान॥७।१२८॥

ऐसे और भी अनेक वचन हैं। भव सागर पार होना एवं निर्वाण (मोक्ष) पद प्राप्त 'ब्रह्मात्मैक्य' ज्ञान से सम्भव वे अन्य साधन से नहीं ऐसा श्रुति कहती है। यथा—

श्रुति–अतः सर्वेषां कैवल्य मुक्तिर्ज्ञानमात्रेणोक्ता।
न कर्मसांख्ययोगोपासनादिभिरित्युपनिषत्॥ (मुक्तिकोपनिषत् १।६)

श्रुत्यर्थ—अतः सबके लिये केवल ज्ञान द्वारा ही कैवल्य मुक्ति कही गई है–कर्म योग, योग, तथा उपासनादि के द्वारा नहीं। यह उपनिषद वाक्य है।

मुक्तिदाता होने से रामचरितमानस ज्ञानशास्त्र अद्वैतवाद ही है। जो रामचरितमानस अद्वैतवाद नहीं मानते ऐसे महाविद्वानों के बहकावे में नहीं आना चाहिए। भगवत् प्रेमी तथा श्रीरामचरितमानस प्रेमियों को रामचरितमानस अद्वैत शास्त्र है, मानकर अपवर्ग प्राप्त करना चाहिये।

यदि श्रीरामजी के नाम, रूप, लीला और धाम को जो ऊपर श्लोक वसिष्ठ संहिता में सदानन्द–अद्वैत स्वरूप कहे गये हैं–तथा मानस में अनेक प्रसंगों से अद्वितीय बताये गये सा नहीं मानोगे तो संसृत एवं गर्भवासादि दुःखों से त्राण न पाओगे, इसलिये कल्याण

कांक्षियों को श्रीरामचरितमानस अद्वैतवाद है, ऐसा दृढ़ निश्चय करके श्रद्धा पूर्वक श्रीरामायण का पूजन, पाठ, श्रवण, मनन, निदिध्यासन करके मानव जीवन सफल बनाकर भवसागर पार हो जाना चाहिये।

अब नमस्कार के पश्चात् शुभ कामना के साथ विराम लेते हैं।

तमेकमद्भुत प्रभुं। निरीहमीश्वरं विभुं॥
जगद्गुरुं च शाश्वतं। तुरीयमेव केवलं॥
नमामि इंदिरा पतिं। सुखाकरं सतां गतिं॥

उन (आप) को जो एक (अद्वितीय) अद्भुत (मायिक जगत् से विलक्षण), प्रभु (सर्व समर्थ) इच्छा रहित, ईश्वर (सबके स्वामी) व्यापक, जगद्गुरु, सनातन (नित्य) तुरीय (तीनों गुणों से सर्वथा परे और केवल अपने स्वरूप में स्थित हैं हे लक्ष्मीपते ? हे सुखों की खान और सत्पुरुषों की एकमात्र गति ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। शुभ कामना

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्व सन्तु निरामयाः।
सर्वेंभद्राणिपश्यन्तुमाकश्चिद् दुःख भाग्भवेत्॥

सब लोग सुखी हों, सब निरोग हों, सब शुभ का दर्शन करें और किसी को भी दुःख न भोगना पड़े।

हरिः ॐ तत्सत्

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

अनन्त श्रीविभूषित परमहंस पारिव्राजकाचार्य श्रोत्रियब्रह्मनिष्ठ
योगीन्द्र भक्त वाञ्छाकल्पतरु आशुतोष
श्रीमद्दण्डो स्वामी सच्चिदानन्दाश्रमजी महाराज के
एक निष्ठ शिष्य
श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य मानस राजहंस
श्रीमद् दण्डीस्वामी सदाशिवाश्रमजी महाराज
द्वारा संगृहीत
मानस सिद्धान्त सार संग्रहः (शतपंच (१०५ चौपाइयों का अन्वेषण)
अद्वैतामृतवर्षिणी भाषा टीका सहित सम्पूर्णम्।
शुभं भूयात्॥

———

मुद्रक—श्री लक्ष्मी मुद्रणालय, सहारनपुर

...प्रदेश

...न में दरार की नहीं बनूंगा

...ट की जानकारी : कल्याण

...ध्यक्ष व ...कहा कि ...बनाने में ...बनाने में ...। उनकी इच्छा ...चलता रहे। उनकी ओर ... नहीं होगा जिससे गठबंधन ... पैदा हो। अन्य साथियों की वजह से गठबंधन में दरार पड़ती है तो उनकी कोई जिम्मेदारी नहीं है। उन्होंने खुलासा किया कि प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी से उनकी भेंट के बारे में सिर्फ लालजी टंडन व प्रधानमंत्री के निजी सचिव शिव कुमार को

किसी तरह की बातचीत से उन्होंने इनकार किया। क्या आपने भाजपा में लौटना तय कर लिया है? कल्याण ने कहा कि अभी किसी प्रकार के निर्णय की परिस्थिति पैदा नहीं हुई है। उनका सिद्धांत है कि आड़े वक्त में साथ देने वालों के मान-सम्मान को ठेस न पहुंचे। 4 जनवरी को यहां बुलाई गई राक्रांपा पदाधिकारियों व कार्यकर्ताओं की बैठक को 24 दिसंबर को उनकी प्रधानमंत्री से हुई मुलाकात से नहीं जोड़ा जाना चाहिए। यह बैठक पहले से तय थी जिसमें आगामी लोकसभा व विधानसभा चुनाव की तैयारियों की रणनीति बनाई जानी है। जब वह भाजपा में थे उन्होंने 'वन बूथ टेन यूथ' का फार्मूला तैयार किया था।

...विष्णुकांत शास्त्री।

मिलिट्री इंटेलीजेंस ने एक ... पिछले एक माह से रेलबाजार थानाक्षेत्र के जीटी रोड पर स्थित साइको ट्रेडर्स की गतिविधियों पर नजर रखे हुए थी। कल

कुछ हुआ नहीं। अब सरकार ने सहारा को प्रस्ताव भेजा है। उन्होंने बताया कि वाहनों में सीएनजी के प्रयोग के लिए गैस अथारिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड (गेल) व उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम ने संयुक्त रूप से प्रयास शुरू किया है। लखनऊ, कानपुर, बरेली व आगरा में गेल ने प्रारंभिक सर्वेक्षण करके घरेलू, व्यावसायिक, औद्योगिक व परिवहन क्षेत्र में गैस की आवश्यकता का चिह्नीकरण कर लिया है। उन्होंने बताया कि पहले चरण में लखनऊ में 20, कानपुर में 11, बरेली में दो तथा आगरा में सात सीएनजी स्टेशनों का निर्माण किया जाएगा। इसके लिए परिवहन निगम भूमि उपलब्ध कराएगा। लखनऊ में 43.34 करोड़ रुपए, कानपुर में 82.13 करोड़, बरेली में 12.31 करोड़ तथा आगरा में 49.29 करोड़ रुपए खर्च किए जाएंगे।

कल्याण सिंह ने कहा कि 24 दिसंबर को वह टंडन के आग्रहपूर्ण आमंत्रण पर अटल से मिलने गए थे। इसके राजनीतिक निहितार्थ नहीं निकाले जाने चाहिए। उन्हें देखकर कार्यकर्ता जोश से भर गए थे। सम्मान पाकर वह भी अभिभूत थे। उन्होंने कहा कि प्रधानमंत्री का भाषण संक्षिप्त किंतु महत्वपूर्ण था। इसके क्या निहितार्थ हैं? कल्याण ने कहा कि निहितार्थ हम नहीं तलाश सकते। आप लोग ही तलाश सकते हैं। अटल से भेंट के बाद क्या दूसरे भाजपा नेताओं से भी बात हुई? उन्होंने कहा कि कई नेताओं से सकारात्मक व सद्भावपूर्ण बात हुई लेकिन वह इसका खुलासा करना नहीं चाहते। संघ प्रमुख के.सी. सुदर्शन से

लखनऊ। पूर्व मुख्यमंत्री कल्याण सिंह के पुत्र एवं स्वास्थ्य मंत्री राजवीर सिंह का कहना है कि 'बाबू जी' भाजपा में नहीं जा रहे हैं। कल्याण सिंह की प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी से मुलाकात को लेकर वह कुछ भी कहने से कन्नी काट रहे हैं कल्याण सिंह के भाजपा में लौटने की चर्चाओं की तरफ ध्यान आकृष्ट कराए जाने पर उन्होंने कहा कि चरचा, परचा व खरचा तो राजनीति का हिस्सा ही है। अपने जन्मदिन पर 5 जनवरी को क्या कल्याण कोई धमाका करने जा रहे हैं? राजवीर ने कहा कि उस दिन उनका जन्मदिन है, इससे बड़ा धमाका और क्या हो सकता है।

की बुला लिया। सबसे पहले दल ने गाइको ट्रेडर्स कंपनी के संचालक मो. जमील खान को पकड़ा। इसके बाद मालरोड पर खरीददार के आने का इंतजार कर रहे अशोक अग्रवाल को भी दबोचा। दो लोगों के पकड़े जाने के बाद कमलाटावर इलाके में छापा मारा। वहां से स्टांप वेंडर परमेंद कौशिक और हरिजन बस्ती शिवकटरा निवासी जितेंद्र बहादुर यादव को पकड़ा। जमील को छोड़ तीनों आरोपियों के पास स्टांप वेंडर का लाइसेंस भी है। जमील के 12 बैंकों के अफसरों से संपर्क था। जमील को देश भर की बैंकों की बिकने वाली रद्दी का ठेका फोन से मिलता था। ब्यूरो

आश्वासन दिया। जिलाधिकारी ओंकारनाथ मिश्र ने भी जायसवाल परिवार के सगे-संबंधियों को ढांढस बंधाया और कालीन निर्यातकों को घटना का पर्दाफाश कराने का आश्वासन दिया। पुलिस अधीक्षक अशोक कुमार सिंह ने बताया कि छह लोगों की हत्या की यह घटना लूटपाट के चक्कर में की गई है। बदमाशों ने वेदप्रकाश जायसवाल और अन्य पांच सदस्यों के सिर पर ईंट और भारी वस्तु से प्रहार कर हत्या की। बदमाशों ने आलमारी और बक्सों को तोड़कर लूटपाट की है। अभी यह नहीं पता चल सका है कि कितने की लूट हुई है। उन्होंने कहा कि जिस

Bata Bata Bata

वाणिज्यिक